(6) मछली पकड़ने का धन्धा—नदियों के निकट रहने में मानव को मछली पकड़ने के धन्धे में भी सुविधा मिली। नदियों से मानव को पर्याप्त मात्रा में मछलियां मिलने लगीं जिससे उसकी खाद्य समस्या का समाधान हो गया और नदी घाटियों में आर्थिक समृद्धता प्राप्त हुई। इसकी पुष्टि सिन्धु घाटी तथा नील नदी की घाटी की सभ्यता के केन्द्रों से प्राप्त सामग्री के आधार पर की जाती है।

(7) व्यापारिक कारण—नदियों के किनारे ही सभी सभ्यताओं के विकसित होने का एक अन्य कारण व्यापारिक सुविधा थी। धीरे-धीरे मानव ने नाव बनाना सीख लिया। इन नावों के द्वारा वह मछलियों का शिकार तो करता ही था साथ ही अन्य स्थानों के निवासियों से सम्पर्क भी स्थापित करता था। इस प्रकार विभिन्न देशों के बीच व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुए।

(8) कला की अभिव्यक्ति—नदियों की घाटियां ही मानव-सभ्यता का सर्वप्रथम केन्द्र इसलिए बनीं कि नदियों के किनारे मानव को अपनी कला की अभिव्यक्ति में सुविधा मिली। मानव नदियों की गीली मिट्टी के द्वारा पक्की ईंटों के मकान बनाने ही लगा था, साथ ही उसने ईंटों पर नेजे के कलमों द्वारा लिखना भी प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार लेखन-कला का विकास हुआ। बेबिलोनिया और सुमेरिया में इस प्रकार के सैकड़ों लेख पाये गये। सिन्धु-घाटी की सभ्यता में भी इस प्रकार के लेख मिले हैं।

(9) आविष्कार के साधन—उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि नदी घाटियों में जीवन यापन की दशाएँ सुविधापूर्ण एवं सरल थीं। यही कारण है कि नदी घाटियों के निवासियों ने अनेक नवीन आविष्कार किये जैसे लिपि एवं लेखन प्रणाली का, नाप तौल के विभिन्न सोपानों का, हिसाब किताब रखने के लिए गिनतियों का, जल के प्रयोग द्वारा घड़ी का तथा पेपिरस द्वारा निर्मित कागज का।

कालांतर में सभ्यता के विकास के साथ मानव ने नदियों की घाटियों को पत्र-कला, काव्यकला आदि की अभिव्यक्ति के लिए अधिक उचित समझा। ऋग्वेद आदि ग्रन्थों की रचनाएँ नदियों के किनारे बने आश्रमों में हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा, साहित्य, कला, संगीत, धर्म तथा दर्शन का विकास भी नदियों की घटियों में ही हुआ। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ मानव संस्कृति का समुचित विकास इन्हीं घाटियों में हुआ। इन घाटियों में मानव की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी अतः मानव ने इन्हें ही अपनी सभ्यता के विकास में क्रीड़ास्थल बनाया।

मानव-सभ्यता का विकास

मानव का जन्म कैसे हुआ यह एक अत्यन्त पेचीदा प्रश्न है और इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वान अपने विभिन्न मत व्यक्त करते हैं। हमारा इस विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है। हम तो केवल इस बात का विवेचन करेंगे कि संसार में आने के पश्चात् मानव ने अपनी सभ्यता का विकास किस प्रकार किया? मनुष्य ने अपने हथियारों के निर्माण में जिन चीजों का उपयोग किया उनके आधार पर विद्वानों ने प्राचीन मानव-सभ्यता के इतिहास को दो भागों में विभाजित किया है:—पाषाण

युग और धातु युग। पाषाण युग को पुनः तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) पूर्व-पाषाण युग (Paleolithic Age)
(2) मध्य-पाषाण युग (Mesolithic Age)
(3) उत्तर-पाषाण युग (Neolithic Age)

(1) पूर्व-पाषाण युग (Paleolithic Age)

पूर्व पाषाण युग को भी विद्वानों ने तीन कोटियों में विभाजित किया है—

(1) प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाण युग।
(ख) मध्य-पूर्व-पाषाण युग।
(ग) परवर्ती-पूर्व-पाषाण युग।

(क) प्रारम्भिक पूर्व-पाषाण युग—आरम्भ में मानव जंगली अवस्था में रहता था। यह पूर्ण रूप से असभ्य था और जंगलों एवं कंदराओं में रहकर, जंगली जानवरों का शिकार कर अपना जीवन निर्वाह करता था। जंगली जानवरों की खाल ही उसका वस्त्र था और कंद-मूल उसका मुख्य आहार। वह कृषि-कर्म और पशु-पालन से बिल्कुल अनभिज्ञ था। पूर्व-पाषाण काल में मानव औजार और हथियार बनाने के लिए प्रस्तर खंडों, लकड़ियों और अस्थियों का प्रयोग करता था। इनमें से अधिकतर हथियार पत्थर के ही होते थे। प्रारम्भिक पूर्व-पाषाण काल में जिसका काल मानव के जन्म से लेकर लगभग 35,000 वर्ष तक माना जाता है, हथियार अत्यन्त भद्दे और बेडौल होते थे। कुछ स्थानों पर पत्थर के टुकड़ों के ऊपर से छिलके का फलक को उतार कर आन्तरिक भाग को नुकीला कर दिया जाता था और बादाम जैसी आकृति का एक हथियार बनाया जाता था जिसे मुष्ठि-छुरा (Coup-de Poing) के नाम से पुकारा जाता था। वास्तव में यह एक हाथ की कुल्हाड़ी थी। यह एक ओर से नुकीली और दूसरी ओर से गोलाकार होती थी तथा हथौड़े, छेनी, चाकू, आदि सभी का कार्य करती थी।

प्रारम्भिक पूर्व-पाषाण युगीन मानव जीवन—प्रारम्भिक पूर्व-पाषाण काल के मानव-जीवन पर प्रकाश डालने वाले बहुत कम तथ्य प्राप्त हुये हैं। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उस युग में मनुष्य खुले आकाश के नीचे रहते थे तथा नदियों तथा झीलों के किनारे विचरण करते थे। सम्भवतः आग से भी वे परिचित न थे। आजीविका का मुख्य साधन शिकार था। शिकार के हेतु बर्छियों और लकड़ियों का प्रयोग किया जाता था। इटली और स्पेन से प्राप्त अस्थियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस युग में बड़े जानवरों का शिकार गड्ढे खोद कर किया जाता था और घोड़े तथा हाथी आदि को शिकार करने में प्रारम्भिक पूर्व-पाषाण युगीन मानव को विशेष रुचि थी।

(ख) मध्य-पूर्व-पाषाण-युग—मध्य-पूर्व-पाषाण काल में मानव प्रारम्भिक पूर्व-पाषाण काल की अपेक्षा अधिक सभ्य हो गया था। उसने परतदार प्रस्तर खण्डों को छीलकर चिकना बनाना प्रारम्भ कर दिया। वह जानवरों आदि से अपनी रक्षा के

लिये गुफाओं में रहने लगा और इस काल में उसे अग्नि का भी ज्ञान हो गया। जानवरों और शीत से रक्षा में अग्नि ने भी उसे सहायता पहुँचाई।

मध्य-पूर्व पाषाण काल में मानव पूर्ण रूप से प्रकृतिजीवी था। उसका भोजन या तो जंगली फल थे या शिकार किये गये पशुओं का मांस। इस युग में मानव बड़े पशुओं का शिकार करता था अतः ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य-पूर्व-पाषाण काल में मानव समूहों में रहने लगा था। समूह में अधिकतर संख्या स्त्रियों और बच्चों की होती थी। यह भी ज्ञात होता है कि प्रत्येक समूह का एक मुखिया होता था और मुखिया पद के लिये अक्सर आपस में संघर्ष हो जाया करता था।

मध्य-पूर्व-पाषाण काल में मानव ने मृतकों का आदर करना भी सीख लिया था। अब वह मृतकों को बड़े सम्मान के साथ दफना देता था। ये समाधियाँ निवास करने वाली गुफाओं के समीप उन स्थानों पर बनाई जाती थी जहाँ वे आग जलाते थे। मृतकों को विशेष मुद्राओं में लिटाया जाता था और उसके साथ खाद्य-सामग्री और हथियार भी रख दिये जाते थे। सम्भवतः वे इस बात पर विश्वास करते थे कि मरने के बाद भी मनुष्य को हथियारों वगैरह की आवश्यकता पड़ सकती है।

(ग) परवर्ती-पूर्व-पाषाण काल—परवर्ती-पूर्व पाषाण काल में मानव मध्य-पूर्व-पाषाण काल की अपेक्षा अधिक सभ्य हो गया था और यह काल पूर्व पाषाण की चरम उन्नति का काल माना जाता है। यहाँ हम परवर्ती-पूर्व-पाषाण काल के मानव को विभिन्न बातों का चित्रण संक्षेप में कर रहे हैं—

(I) नवीन उपकरण—मध्य-पूर्व-पाषाण काल नियण्डर्थल जाति की उन्नति का काल था। परन्तु परवर्ती पूर्व-पाषाण काल में योरप की कुछ नवीन जातियों ने उनकी अपेक्षा अधिक उन्नति कर ली थी। योरप की इन जातियों का जीवन नियण्डर्थलों से अधिक जटिल था और इसलिये उन्होंने अपने हथियार बनाने के लिए पत्थरों के साथ ही हाथी दाँत, सींग और अस्थियों का भी प्रयोग किया।

(II) आवास, वस्त्र और भोजन—परवर्ती-पूर्व-पाषाण काल में मानव गुफाओं में रहता था। जहाँ गुफाएँ उपलब्ध नहीं होती थीं वहाँ वे शीत से बचने के लिये खाल का तम्बू तान देते थे। घरों को गर्म रखने के लिये अस्थियाँ भी जलाई जाती थी। खाल के बने हुये वस्त्रों को सीकर पहनते थे। आग में वे अपना भोजन भी पकाने लगे थे। उनका आहार मांस ही था। साथ ही वे फलों आदि का सेवन करते थे।

(III) कला—ऐसा प्रतीत होता है कि परवर्ती पूर्व-पाषाण काल में मानव में कलात्मकता भी आ गई थी। वह भित्ति चित्र तो बनाता ही था साथ ही सींगों से निर्मित औजारों तथा हथियारों पर नक्काशी भी करता था। परवर्ती-पूर्व-पाषाण काल में नारी मूर्तियों को बनाने की परम्परा भी चल गई थी। शरीर को लाल रंग से रंग दिया जाता था। लाल रंग रक्त का प्रतीक है। शायद उनका यह विश्वास था कि मृतक के शरीर को लाल रंग से रंग देने पर उसमें जीवन की लालिमा पुनः वापस आ जायगी।

(IV) ज्ञान-विज्ञान—परवर्ती-पूर्व-पाषाण कालीन मानव ने अप्रत्यक्ष रूप से काफी ज्ञान अर्जित कर लिया था। अग्नि के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि वैज्ञानिक

प्रगति का बीजारोपण इसी युग में हुआ। पशुओं के चित्र बनाने से यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन मानव शरीर रचना का भी प्रयत्न करता था। कौन पदार्थ खाने योग्य है और कौन पदार्थ विषाक्त है, खाद्य पदार्थ किस स्थान पर और किस रूप में मिलता है और कौन से खाने योग्य पशु कहाँ पाये जाते हैं, यही तत्कालीन मानव का ज्ञान-विज्ञान था और इन्हीं में कालान्तर में प्राणि-शास्त्र, वनस्पति विज्ञान, ऋतु विज्ञान, रसायन विज्ञान और भौतिक विज्ञान आदि विज्ञानों का जन्म हुआ। गार्डेन एण्ड चाइल्ड ने ठीक ही लिखा है—

"In jungle lore the roots of botany and zoology, of astronomy and climatology, while the control of fire and the manufacture of tools initiate the traditions that emerge as physics and chemistry." —Gorden and Childe

(2) मध्य-पाषाण काल (Mesolithic Age)

पूर्व-पाषाण काल और उत्तर-पाषाण काल के बीच के युग को मध्य-पाषाण काल के नाम से पुकारा जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि पाषाण काल के दो ही युग थे—प्रारम्भिक पूर्व-पाषाण काल तथा उत्तर-पाषाण काल। इस सम्बन्ध में उसका कहना है कि इन दोनों युगों के मध्य एक अन्तराल है। किन्तु कार्नूल एवं बम्बई में जो उत्खनन कार्य बर्किट एवं टाड ने किये हैं उसके द्वारा पूर्व पाषाण-काल एवं उत्तर पाषाण-काल के मध्य युग पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है अतः विद्वानों ने इसका नाम मध्य पाषाण-काल रखा है। यह काल विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों का काल था। दूसरे शब्दों में इसे संक्रान्ति काल के नाम से पुकार सकते हैं। इस काल में छोटे-छोटे पत्थरों के हथियार बनाये जाते थे। इसके साथ ही बड़े हथियार बनाने मे पत्थर के टुकड़ों में लकड़ी या हड्डी के डण्डे लगाये जाते थे। मध्य-पाषाण काल के मानव का आहार भी मांस और कन्द-मूल था। परन्तु इस काल में शिकार की प्रणाली में अन्तर हो गया था। पूर्व-पाषाण काल में मानव विशालकाय पशुओं का शिकार करता था और फलस्वरूप वह बड़े-बड़े समूहों में रहता था। मध्य-पाषाण काल में वे छोटे-छोटे पशुओं जैसे खरगोश, बारहसिंहा, हिरन आदि का शिकार अकेले या छोटे-छोटे समूहों में करते थे। मध्य-पाषाण काल में हम मानव को छोटे-छोटे विभिन्न समूहों में बिखरा हुआ पाते हैं। इस काल के शिकार की एक बहुत बड़ी विशेषता यह थी कि इस काल का मानव, शिकार में कुत्तों का सहयोग प्राप्त करता था और मानव कृषि कर्म और पशुपालन से अनभिज्ञ था। इस काल के मानव की सामाजिक भावना पहले की अपेक्षा अधिक प्रबल हो चुकी थी और सामूहिक जीवन यापन की विशेषता को मानव अब पूर्व की अपेक्षा अधिक महत्व देने लगा था।

(3) उत्तर-पाषाण काल (Neolithic Age)

इस युग को नव-पाषाण काल के नाम से भी पुकारा जा सकता है। उत्तर पाषाण काल में पूर्व-पाषाण काल की असभ्यता के स्थान पर उच्चतर सभ्यता का विकास हुआ। पूर्व-पाषाण काल के मानव बहुत हद तक जानवरों का सा जीवन ही व्यतीत करते थे। वे कच्चे मांस का सेवन करते थे और कृषि-कर्म से अनभिज्ञ थे। वे पशुओं की खाल ही धारण करते थे और अधिकांशतः खुले आकाश में अपना जीवन

व्यतीत करते थे। मध्य-पाषाण काल में भी उनकी स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन न हुआ। परन्तु उत्तर-पाषाण काल का मानव अत्यधिक सभ्य प्रतीत होता है।

पूर्व-पाषाण कालीन असभ्यता के स्थान पर उत्तर पाषाण काल की उच्चतर सभ्यता के विकसित होने के विभिन्न कारण थे। यहाँ हम इन कारणों की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं—

(I) खाद्य पदार्थ प्राप्त होने में कठिनाई—जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि पूर्व-पाषाण काल का मानव अधिकतर मांस का सेवन करता था। शनैः-शनैः उसे शिकार मे कठिनाई का अनुभव होने लगा और उसने मांस के अतिरिक्त कुछ अन्य वस्तुओं को अपनी खाद्य सामग्री बनाना चाहा।

(II) असुरक्षा—पूर्व-पाषाण काल का मानव पूर्णतः असुरक्षित था। उसके रहने के लिये कोई ठीक स्थान नहीं था और फलस्वरूप उसे जंगली पशुओं और विरोधियों का हर समय भय बना रहता था। इस असुरक्षा को दूर करना भी उसके लिये आवश्यक था।

(III) जल की कठिनाई—जल मानव के लिये अत्यन्त आवश्यक है। पूर्व-पाषाण काल का मानव कभी-कभी पशुओं का शिकार करते हुये ऐसे स्थानों पर पहुँच जाता था जहाँ उसे जल की बहुत अधिक कठिनाई पड़ती थी। इस हेतु उसने आवश्यक समझा कि अपने को नदियों के आसपास सीमित रखे और यही कारण था कि पूर्व-पाषाण कालीन असभ्यता के स्थान पर उत्तर-पाषाण की उच्चतर सभ्यता का विकास हुआ।

(IV) बड़े-बड़े समूहों में रहने में कठिनाई—पूर्व-पाषाण काल का मानव जंगली जानवरों से भय के कारण और उनके शिकार के लिये बड़े-बड़े समूह बनाकर रहता था। इन बड़े-बड़े समूहों के फलस्वरूप अक्सर आपसी झगड़े भी उत्पन्न हो जाते थे और मुखिया बननें की इच्छा प्रत्येक व्यक्ति में रहती थी। इस कठिनाई को दूर करने के लिये मानव के लिये यह आवश्यक था कि वह छोटे-छोटे समूह बनाकर रहे। उत्तर पाषाण काल में हम पूर्व-पाषाण काल के इन बड़े-बड़े समूहों के स्थान पर छोटे-छोटे समूह ही पाते हैं।

(V) मानव-मस्तिष्क का स्वाभाविक विकास—मानव मस्तिष्क का स्वाभाविक विकास ने भी मानव को पूर्व-पाषाण कालीन असभ्यतामय जीवन को छोड़कर सभ्य जीवन व्यतीत करने के लिये प्रेषित किया। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया मानव मस्तिष्क का विकास होता गया और वह अपनी सुख-सुविधाओं को खोजने के लिये प्रयत्नशील होने लगा। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप ही उत्तर-पाषाण कालीन सभ्यता का विकास हुआ।

(VI) उत्तर-पाषाण कालीन प्रगति—जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है कि उत्तर-पाषाण काल में बहुत अधिक प्रगति हुई और मानव के रहन-सहन में अत्यधिक अन्तर आ गया। यहाँ हम उत्तर-पाषाण कालीन उपलब्धियों और इस युग में विभिन्न क्षेत्रों में हुई प्रगति की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं—

(क) कृषि-कर्म—पूर्व-पाषाण कालीन मनुष्य प्रकृतिजीवी था; परन्तु उत्तर-पाषाण युग में मानव ने अपने बौद्धिक विकास के द्वारा कृषि-कार्य प्रारम्भ किया।

रूसी विद्वान वेविलोव के मतानुसार सर्वप्रथम अफगानिस्तान और चीन में कृषि-कर्म का श्री गणेश हुआ। उत्तर-पाषाणकालीन मानव गेहूँ, जौ, मक्का, बाजरा और अनेक प्रकार के फल और साक उत्पन्न करता था। खेती में वह हल का प्रयोग भी करता था। हल काठ के बने होते थे। पौधे काटने के लिये हँसिये का प्रयोग किया जाता था। अनाज पीसने की चक्की का निर्माण भी हो चुका था।

(ख) पशु-पालन—पूर्व-पाषाण काल में मानव पशुओं से परिचित था, परन्तु अधिकतर वह पशुओं का आखेट ही करता था। उत्तर-पाषाण काल में पशु-पालन की प्रथा का विकास हुआ। पालतू पशुओं में गाय, बैल, भैंस, बिल्ली, भेड़, बकरी, कुत्ता और घोड़ा आदि प्रमुख थे।

(ग) मृण्भाण्ड कला—पूर्व-पाषाणकालीन मनुष्य प्रस्तर सामग्री तो बनाता था, परन्तु वह मिट्टी की सामग्री नहीं बनाता था। उत्तर-पाषाण काल में ही सर्व-प्रथम इस कला को अपनाया गया। इस युग में चाक का निर्माण नहीं हुआ था बल्कि अनेक प्रकार के भाण्ड और पात्र मनुष्य अपने हाथ ही से बनाता था और उन्हें तरह-तरह से अलंकृत करता था। इस युग के बने हुये अनेक प्रकार के मिट्टी के बर्तन मिले हैं। इस कला के सम्बन्ध में विल ड्यूराण्ट महोदय लिखते हैं "उन लोगों ने मिट्टी को सौन्दर्य प्रदान किया, बर्तनों को कलात्मक ढंग से सजाया, अत: प्राय: आरम्भ से ही वस्तु निर्माण एक उद्योग नहीं वरन कला रही।"

"..........he fashioned clay into forms of beauty as well as decorated it with simple designs and made pottery, almost at the outset, not only an industry but an art." —Will Durrant.

(घ) गृह-निर्माण कला—उत्तर-पाषण काल में गृह-निर्माण कला का भी श्रीगणेश हो चुका था। पूर्व-पाषाणकालीन मानव कन्दराओं और पशु-चर्मों के बने हुए तम्बुओं में रहता था। उत्तर-पाषाण काल में मनुष्य झोपड़ियों में रहने लगा। इन झोपड़ियों की दीवालें लट्ठे और नरकुल बनी होती थीं और उन पर मिट्टी का लेप किया जाता था। झोपड़ियों का फर्श कच्चा होता था तथा छतें पत्तों, लकड़ी और छालों की बनी होती थीं।

(ङ) वस्त्र निर्माण—पूर्व-पाषाण काल ही में मनुष्य वस्त्रों का प्रयोग करने लग गया था। यह वस्त्र तृण-पत्रों तथा पशु-चर्म के होते थे। उत्तर-पाषाण काल में पौधों के रेशों और ऊन के धागों द्वारा वस्त्र निर्माण किया गया। धातु रसों की सहायता से इन वस्त्रों को रंगा भी जाता था। कताई, बुनाई और रंगाई तीनों कार्य इस युग में प्रारम्भ हो चुके थे।

(च) अस्त्र-शस्त्र आदि का निर्माण—पूर्व-पाषाण काल के अस्त्र बेडौल, खुरदरे और असुन्दर होते थे। इस युग में पाषाण-खण्डों को रगड़-रगड़ कर चिकना और सुन्दर बनाया गया। केवल आखेट-सम्बन्धी ही औजार इस युग में नहीं बनते थे; बल्कि जीवनोपयोगी अन्य औजारों का निर्माण किया जाता था। बरछी भाले, तलवार, चाकू, कुल्हाड़ी आदि के साथ ही हल, हँसिया, पहिया, घिरनी, डोंगी, तकली, करघे आदि भी इस युग में बनाये गये। यह समस्त सामग्री जीवनोपयोगी के साथ ही सुन्दर भी थी।

(छ) व्यापार एवं आवागमन—व्यापार एवं आवागमन के क्षेत्र में भी उत्तर-पाषाण युग में बहुत अधिक परिवर्तन हुये। इस युग में सर्वप्रथम डोंगियों का निर्माण किया गया जिनसे व्यापारिक आयात-निर्यात में बहुत अधिक सुविधा मिली। इस युग में इन्हीं डोंगियों की सहायता से अन्त: प्रादेशिक गमनागमन भी होता था। सीढ़ी का निर्माण भी इसी युग में हुआ।

(ज) पालिशदार उपकरण—पूर्व-पाषाणकालीन मानव के औजार और हथियार अत्यन्त बेडौल और खुरदरे होते थे। उत्तर-पाषाण काल में मानव ने उनके स्थान पर चिकने और चमकदार औजार और हथियार बनाये। इनमें कठोर पत्थर के एक टुकड़े को घिस कर धारदार बनाया जाता था और दूसरी ओर लकड़ी या सींग की मूठ लगा दिया जाता था। उत्तर-पाषाण काल में काष्ठ-कला भी प्रकाश में आई।

नवीन आविष्कारों का प्रभाव—उत्तर-पाषाण काल में मानव के प्रगति कर लेने और नवीन आविष्कारों के फलस्वरूप अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। यहाँ इन परिवर्तनों की चर्चा हम संक्षेप में कर रहे हैं—

(1) जनसंख्या में वृद्धि—पूर्व-पाषाण काल एक लम्बे समय तक चला। किन्तु इस युग में मनुष्य सदैव प्रकृति पर निर्भर रहा और उसे सदैव उदरपूर्ति की ही चिन्ता रही। फलस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि न हुई। कृषि-कार्य और पशुपालन के फलस्वरूप मानव ने इधर-उधर भटकना बन्द कर दिया और इसलिये जनसंख्या में अधिक वृद्धि हुई। मानव की जनसंख्या के साथ ही पशुओं की जनसंख्या में भी तेजी से वृद्धि हुई। खेती के लिये पशुओं की जनसंख्या बढ़ाना मनुष्य के लिये आवश्यक था। परिणाम यह हुआ कि पूर्व-पाषाण काल में जिन स्थानों पर मानव का अस्तित्व बिल्कुल न था वहाँ भी वह रहने लगा।

(2) स्थायी जीवन को प्रोत्साहन—कृषि-कार्य के फलस्वरूप एक स्थान पर घर बनाकर वहाँ स्थायी रूप से रहने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला। सीढ़ी, घिरनी और चूल आदि के फलस्वरूप स्थायी मकानों के निर्माण में सहायता मिली। स्विटजरलैण्ड में झीलों पर बनाये गए मकान विशेष रूप में वर्णनीय हैं। इन मकानों का निर्माण लकड़ी के लट्ठों को झील में गाड़कर किया गया था और इनमें सीढ़ियों का भी प्रबन्ध किया गया था।

सामाजिक व्यवस्था में सुधार—उत्तर-पाषाण काल में सामाजिक व्यवस्था में बहुत अधिक सुधार हुआ। इस काल में अधिकांश आविष्कार स्त्रियों ने किये। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर-पाषाण काल में पूर्व-पाषाण काल की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक सम्मान दिया गया और वे सूत कातने, कपड़ा बनने, आभूषण और बर्तन बनाने आदि का कार्य करती थीं। पुरुषों का कार्य शिकार करना और औजार एवं हथियार बनाना था। श्रम-विभाजन के फलस्वरूप स्त्रियों और पुरुषों दोनों की दशा में सुधार हुआ। उत्तर-पाषाण युग के विषय में यह भी उल्लेखनीय है कि इस युग का सामाजिक जीवन अत्यन्त व्यवस्थित हो गया था। सामाजिक जीवन को व्यवस्थापित करने वाली शक्ति कौन थी इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सम्भवत: उत्तर-पाषाण युग में सामाजिक संगठन की इकाई कबील।

थी और प्रत्येक कबीले का एक चिन्ह होता था। कुछ विद्वानों का मत है कि इस युग में राजा भी अस्तित्व में आने लगा था।

(4) कला, धर्म और ज्ञान-विज्ञान की उन्नति—विभिन्न आविष्कारों के फलस्वरूप उत्तर-पाषाण काल में कला, धर्म और ज्ञान-विज्ञान की बहुत अधिक उन्नति हुई। उत्तर-पाषाण की कलाकृतियां बहुत थोड़ी थीं परन्तु वे अतीव सुन्दर थीं। उस युग की मूर्तियों में कुछ नारी मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। अधिकांश उत्तर-पाषाण कालीन समूह अपने मृतकों को घेरों या कब्रिस्तानों में गाड़ते थे और उनके साथ हथियार, बर्तन और खाद्य सामग्री भी रखते थे। विभिन्न संस्कारों के पालन में भी वे पूर्व-पाषाण-कालीन मानव से अधिक सावधानी बरतते थे। उत्तर-पाषाण काल में पूर्व-पाषाण-काल की अपेक्षा ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भी मानव बहुत अधिक उन्नति कर गया था। मिट्टी पकाने के लिये रसायन शास्त्र, खाना पकाने के लिये जीवशास्त्र और विभिन्न प्रकार के अनाज आदि उत्पन्न करने के लिये कृषि-शास्त्र से मानव का परिचय हो गया था। कदाचित् जलवायु आदि का पता लगाने के लिये वे सूर्य, चांद, सितारों की गति-विधि भी देखने लगे थे। मानव में धर्म अनुष्ठान एवं अन्ध विश्वास का जन्म हो चुका था। मृतक के दाह संस्कार करना भी प्रारम्भ कर दिया था और पुनर्जन्म में विश्वास करते थे और डा० राजबली पाण्डेय ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारतीय इतिहास' की भूमिका में लिखा है कि—"उत्तर-पाषाण काल में मृतकों की हड्डियां रखने के लिए अस्थि-पात्रों तथा शव के ऊपर बनी हुई समाधियों से स्पष्ट मालूम होता है कि उत्तर-पाषाण-काल में लोग जीवन शृंखला एवं पुनर्जन्म में विश्वास रखते थे और अपने पितृों की पूजा करते थे। भूतों से आविष्ट प्रस्तर-खण्डों की पूजा शुरू हुई जो क्रमशः लिंग-पूजा के रूप में विकसित हुई। चढ़ावे में अन्न, दूध, मांस आदि पदार्थ अर्पित किये जाते थे। निम्नस्तर के लोगों में धार्मिक विश्वास और पूजा-पद्धति का ढांचा इस समय लगभग तैयार हो चुका था।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तर-पाषाण काल मानव-सभ्यता के विकास का अत्यन्त महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारी युग है। मानव-सभ्यता के महल की नींव इस युग में ही परिलक्षित होती है।

ताम्र युग
(Copper Age)

उत्तर-पाषाण काल में मानव-सभ्यता का बहुत अधिक विकास हुआ, परन्तु धातु-प्रयोग ने सभ्यता के विकास की ओर अधिक गति प्रदान की। नवीन धातुओं का प्रयोग मानव बुद्धि के विकास का परिचायक है। धातुओं के प्रयोग ने पाषाण के घिसने आदि की कठिनाई को बहुत हद तक दूर किया। मानव ने दूरस्थ प्रदेशों में जाकर धातुओं की खोज की और इन धातुओं को पिघलाकर जीवनपयोगी सामग्री का निर्माण किया।

धातुओं में सर्वप्रथम मानव ने जिस धातु को खोज निकाला वह तांबा था इसीलिए सर्वप्रथम प्रयोग तांबे का हुआ। मेसापोटामिया में तांबे का प्रयोग 4500 ई० पू० और मिस्र में 4000 ई० पू० में हुआ। भारत में इसका प्रयोग कब हुआ इसके बारे में कोई भी निश्चित मत नहीं है। इस तांबे को पिघलाने के लिये उच्च-

तापमयी भट्टियों और धातु को विभिन्न आकार देने के लिए विभिन्न प्रकार के सांचों की आवश्यकता पड़ी। इस कार्य को पूर्ण करके मानव ने अपनी बौद्धिक विकास का परिचय दिया। ताँबे की चद्दरें बनाई गईं और अनेक छोटी-बड़ी वस्तुओं का निर्माण किया गया। यह वस्तुएँ पाषाण की बनी हुई वस्तुओं की अपेक्षा अधिक सुडौल और सुन्दर थीं। परन्तु इसके यह अर्थ नहीं हैं कि इस युग में पत्थर का प्रयोग बन्द हो गया। नवीन धातु के आविष्कार के पश्चात भी बहुसंख्यक वस्तुएँ पाषाण की बनाई जाती थीं।

ताम्र युग की विशेषताएँ या उपलब्धियाँ

उत्तर-पाषाण युग ने यदि मानव-सभ्यता के विकास की नींव डाली तो ताम्र युग ने उसे और अधिक विकसित किया। इस युग की अनेक विशेषताएँ हैं जिनकी चर्चा हम संक्षेप में कर रहे हैं—

(क) ताम्र की बनी हुई घरेलू वस्तुओं का निर्माण—जैसा पहले कहा जा चुका है कि इस युग में पाषाण के साथ ही ताम्र की बनी हुई घरेलू वस्तुओं का निर्माण किया गया। यह वस्तुएँ अपेक्षाकृत अधिक सुदृढ़, सुडौल और सुन्दर होती थीं।

(ख) पशुओं और गाड़ियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग—इस युग का सबसे क्रान्तिकारी आविष्कार पहिया (Wheel) था। इससे गाड़ियाँ अस्तित्व में आईं और यही कारण है कि ताम्र-युग में पशुओं और गाड़ियों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया। ताम्र की खानें कुछ निश्चित स्थानों पर ही थीं। इन स्थानों से ताम्र निकालकर दूर-दूर तक पहुँचाया जाता था। इन कार्य के लिए पशुओं व गाड़ियों की आवश्यकता होती थी। पशुओं में सर्वप्रथम मानव ने बैल का प्रयोग किया। इस सम्बन्ध में गार्डन और चाइल्ड ने लिखा है, "बैल को भाप के इंजन और पेट्रोल के मोटर-कार का आरम्भिक पग कहा जा सकता है।"

"The ox was the first step to the steam engine and petrol motor." — Gorden and Childe.

बैल के साथ ही गधा, घोड़ा, ऊँट आदि जानवर भी प्रयोग में लाये जाते थे। उत्तर-पाषाण काल में ही पहियेदार गाड़ियों और नावों का निर्माण हो चुका था। इस युग में इनसे बहुत अधिक लाभ उठाया गया।

(ग) कृषि क्षेत्र में अपूर्व उन्नति—उत्तर-पाषाण काल में हलों का प्रयोग होता था या नहीं इस विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि पूर्व-पाषाण काल में खेती की जुताई का कार्य स्त्रियाँ अपने हाथों से ही करती थीं। ताम्र काल में हलों का प्रयोग होने लगा इसमें किसी को भी संदेह नहीं। हल में बैलों को जोता जाता था और उनके खाने के लिए घास, कर्बी, मोट अनाज आदि की खेती की जाती थीं। गोबर के प्रयोग ने खाद्य समस्या का समाधान कर दिया था। इस प्रकार इस युग में कृषि क्षेत्र में महान परिवर्तन हुए।

(घ) व्यावसायिक विशेषज्ञों और समष्टिगत भावना का उदय ताम्र का व्यापार करने के लिए व्यवसायियों का दक्ष होना अनिवार्य था। उनका सम्पूर्ण

समय इसी काय में व्यतीत होता था। अतः व्यावसायिक विशेषज्ञों का उदय इसी युग में हुआ शिल्प समुदाय भी इसी युग में निर्मित हो चुके थे। उनके पास मोहरें होती थीं। वे कृषकों और व्यवसायियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे और उनसे जीवनोपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति करते थे। इस प्रकार मनुष्य का जीवन समष्टिगत हो गया। आदान-प्रदान के कारण मानव में सहयोग की भावना का उदय हुआ।

(ङ) शासक और शासित की भावना का उदय—ज्यों-ज्यों मानव का जीवन समष्टिगत होता गया समाज में शासक और शासित की भावना अंकुरित होती गई बलवान की सहायता के लिए समाज के अन्य व्यक्ति उपस्थित होने लगे। कदाचित यही भावना आगे चलकर राजा और प्रजा के रूप में विकसित हुई।

(च) यातायात के साधनों का विकास—इस युग में यातायात के साधनों का बहुत अधिक विकास हुआ। भार ढोने के लिये बैलों के साथ ही गधों का प्रयोग भी किया जाता था। यातायात के क्षेत्र में सबसे अधिक क्रान्तिकारी आविष्कार पहिए का था। इस काल में बैलगाड़ियों का प्रयोग होता था। नाव की विधि का आविष्कार नव-पाषाण काल में ही हो चुका था। इस युग में मानव ने पाल का आविष्कार किया।

(छ) गृह-निर्माण कला का विकास—ताम्र काल में गृह-निर्माण कला का भी विकास हुआ। धूप और आग में पकी हुई ईंटों का प्रयोग इसी युग में किया गया। पक्के मकान भी इसी युग में सबसे पहले बने। अन्न संग्रह के लिए बड़े-बड़े मृभाण्ड भी इसी युग में बने।

(ज) अन्य कलाओं का विकास—ताम्र-युग में कताई और बुनाई का कार्य भी और अधिक विकसित रूप में होने लगा। अपनी सौंदर्य भावना की तुष्टि के लिए मानव ने तांबे और पत्थर के बने हुए आभूषणों का निर्माण किया। रंगीन वस्त्रों आदि का भी प्रयोग भी इसी युग में प्रचुर मात्रा में होने लगा। समाज के संगठन के साथ धार्मिक भावना भी विकसित हुई। ताम्रकालीन तावीजें और मोहरें आदि भी मिली हैं जिन पर पशुओं के चित्र अंकित हैं। कदाचित इसका प्रयोग टोना-टोटका के लिए किया जाता था।

ताम्रकालीन सभ्यता एलाम, मेसोपोटामिया और मिस्र में विकसित हुई है। समस्त भूमध्य सागरीय देशों में इस सभ्यता का प्रसार हुआ।

कांस्य युग

शनैः-शनैः मानव को यह प्रतीत हुआ कि तांबा एक निर्बल धातु है। उसने किसी कठोर धातु की खोज प्रारम्भ की और ताम्र काल के अंत में 3000 ई० पू० के लगभग मनुष्य ने कांस्य का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिए प्रयोग करने की विधि का आविष्कार किया। ताम्र और कांस्य में केवल इतना अन्तर होता है कि ताम्र लचीला होता है और कांस्य कठोर, क्योंकि कांस्य बनाने से ताँबे और टिन का सम्मिश्रण होता है। अतः उस युग में इस कांसे का ही जीवनोपयोगी वस्तुओं के निर्माण के लिए अपनाया गया। इसका प्रयोग मिस्र में 2800 ई० पू० और ट्राय में

2000 ई० पू० में किया गया। मध्य अफ्रीका और दक्षिणी भारत आदि में कांस्य का प्रयोग 3000 ई० पू० में कुछ पहले या कुछ बाद में प्रारम्भ हुआ। यहाँ लोगों ने आगे चलकर लोहे को ही अपनाया।

कांस्य युगीन नागरिक जीवन और सभ्यता—इस युग में व्यापारिक गति-विधियों का श्री गणेश हो चुका था और व्यापारिक केन्द्रों की भी स्थापना हो चुकी थी। व्यापारिक संस्थानों की सुरक्षा हेतु सेना का भी गठन किया जा चुका था। व्यापारिक वादों के हल के लिए न्यायालयों की भी स्थापना होने लगी थी।

ज्योतिष एवं खगोल विद्या का भी जन्म इसी युग में हुआ। व्यावसायिक क्षेत्र में प्रगति लाने हेतु मुद्रा कला का विकास हुआ। मानव ने जीवन में स्थिरता लाने हेतु भवन निर्माण भी प्रारम्भ कर दिया था क्योंकि ईंट का निर्माण 3000 ई० पू० हो चुका था।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कांस्य-युग में मानव की जीवन-शैली में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुका था और यही कारण है कि इस युग में सभ्यता का पर्याप्त विकास हुआ। कुछ विद्वान इस युग को ही सभ्यता के जन्म का युग मानते हैं।

लौह युग

धीरे-धीरे मानव ने अपने बुद्धि कौशल से एक ऐसी धातु का प्रयोग करना सीखा जिसने मानव संस्कृति के विकास में एक नया मोड़ ला दिया। 1300 ई० पू० में हिट्टाइट जाति ने लौह का सर्वप्रथम प्रयोग किया। मिस्र में इसका प्रयोग रेमेजज द्वितीय के शासन काल में हुआ। इस लौह प्रयोग के साथ ही कांसे का प्रयोग भी प्रचलित रहा। इसका कारण यह था कि कांसा लोहे की अपेक्षा अधिक सुन्दर था। भारत में लौह प्रयोग कब प्रारम्भ हुआ इस विषय में भी विद्वान एक मत नहीं हैं। परन्तु इसमें किंचित मात्र भी संदेह नहीं कि भारतीय सभ्यता का इस युग में बहुत अधिक विकास हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि असभ्य और जंगली की तरह जीवन व्यतीत करने वाला मानव धीरे-धीरे सभ्य और सुसंस्कृत होने लगा। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् जब वह सामाजिक उन्नति की ओर अग्रसर हुआ तो उसका सांस्कृतिक विकास हुआ। नदियों की घाटियाँ ही उसकी सभ्यता और संस्कृति के विकास की कहानी प्रदर्शित कर रही हैं। इन घाटियों में ही मानव की प्राचीनतम सभ्यता विकसित हुई।

साराँश

मानव-सभ्यता के विकास का प्रथम युग पूर्व-पाषाण-युग के नाम से पुकारा जाता है। इस युग में मानव जंगली जीवन व्यतीत करता था। उत्तर-पाषाण-युग में मानव धीरे-धीरे सभ्य हुआ। सबसे पहले चरवाहा युग आया। इसी युग में नदियों के काठों को मानव अपने निवास के लिए उपयुक्त समझा। नदियों के किनारे रहने में मानव को निम्नलिखित सुविधा उपलब्ध हुई—

(1) चरागाहों की सुविधा
(2) जल की सुविधा
(3) कृषि-कार्य में सुगमता
(4) बर्तन आदि का प्रबन्ध
(5) रहने की सुविधा
(6) मछली पकड़ने की सुविधा
(7) व्यापारिक सुविधा
(8) मानसिक सन्तोष

उत्तर-पाषाण-युग में मानव ने विभिन्न प्रकार के धन्धों और कलाओं को सीखा।

इसके पश्चात ताम्र युग आया। इस युग में मानव-सभ्यता का और अधिक विकास हुआ। कृषि-कार्य में अब मानव को और अधिक सुगमता हुई। इसके पश्चात् कांस्य और लौह युग आये। भारतीय सभ्यता का विकास लौह युग में बहुत अधिक हुआ। इन्हीं युगों में मानव सभ्यता का विकास हुआ। इस सम्बन्ध में यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि समस्त सभ्यताएँ नदियों के किनारे विकसित हुई हैं। नदियों के काठे ही विश्व को प्राचीन सभ्यताओं के लिए विशेषकर उपयुक्त रहे हैं।

●

2

सुमेरीय सभ्यता एवं संस्कृति
(Sumerian Civilization and Culture)

प्रश्न—आप सुमेरीय लेखन-कला और साहित्य के बारे में क्या जानते हैं—लिखिए।

अथवा

प्रश्न—इतिहास हमें सुमेर जाति के बारे में क्या बताता है ? उनकी शासन प्रणाली किस प्रकार की थी ?

अथवा

प्रश्न—सुमेरियन धर्म तथा साहित्य का वर्णन कीजिए।

अथवा

प्रश्न—"मेसोपोटामिया की सभ्यता किसी अन्य जाति की अपेक्षा सुमेरियन जाति की अधिक ऋणी है" इस कथन पर प्रकाश डालिये।

'मेसोपोटेसिया' शब्द का अर्थ है—दो नदियों के बीच का प्रदेश अर्थात् दो नदियों के मध्य में बसा हुआ भू-भाग। इसी से लगभग 3000 वर्ष पूर्व दजला और फरात नदियों के बीच एक सभ्यता का विकास हुआ जिसे हम मेसोपोटेमिया की सभ्यता के नाम से पुकारते हैं। इस भू-भाग में चार प्रकार की सभ्यताएँ पायी जाती हैं, जिन्हें सुमेरियन, बेबिलोनियभ, असीरियन तथा कैल्डियन के नाम से जाना जाता है। यह सभ्यता प्राचीनकाल की उन्नतम सभ्यताओं में से एक थी। मेसोपोटेमिया के उत्तर में अरामी पर्वत; पूर्व में इलाम की पहाड़ियाँ; पश्चिम में अरब का रेगिस्तान और दक्षिण में ईरान की खाड़ी थी। यह प्रदेश कृषि के लिए बहुत अच्छा था। यहीं की पृथ्वी सोना उगलती थी। स्टेबो के अनुसार, "जौ की उपज वहाँ तीन सौ गुनी होती थी। स्वादिष्ट और अच्छे प्रकार के खजूर अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध होते थे।" प्लीनी का मत है —"गेहूँ की खेती वहाँ 150 गुनी अधिक होती थी।" लाप्तू ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है,

"वहां की पृथ्वी नील के किनारे की मिस्र की पृथ्वी की तरह अधिक उपजाऊ थी। विभिन्न प्रकार के साग तरकारियों, सेब, अंजीर, खुबानी, पिस्ता, अंगूर, बादाम और अन्य मेवे अत्यधिक मात्रा में पाये जाते थे। विभिन्न प्रकार के सुन्दर और खुशबूदार फूल होते थे। नदियां मछलियों से परिपूर्ण रहती थीं। गाय, बैल, गधे, बकरी, भेड़, सुअर, ऊँट इत्यादि पशु पाले जाते थे।"

इस प्रकार खेती के लिए यह प्रदेश बहुत अच्छा था। साथ ही इस प्रदेश में विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। सभ्यताओं का विकास नदियों के किनारे ही होता है क्योंकि वहां मानव-जीवन के लिये सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। 'मेसोपोटेमिया' की सभ्यता भी दजला और फरात नदियों के बीच की सभ्यता है। इस सभ्यता के अन्तर्गत सुमेरियन; बेबिलोनियन; असीरियन तथा कैल्डियन चार सभ्यताएँ आती हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि यह चारों सभ्यताएँ एक ही सभ्यता के विभिन्न रूप हैं। 'खाल्दी सभ्यता' का अध्ययन 'बेबिलोनियन सभ्यता' के अन्तर्गत ही किया जा सकता है। मेसोपोटेमिया की सभ्यता का वास्तविक प्रतिनिधित्व सुमेरियन सभ्यता ही करती है। मेसोपोटेमिया की सभ्यता को सुमेर जाति की महान देन है। एक विद्वान ने ठीक ही लिखा है; "मेसोपोटमिया की सभ्यता किसी अन्य जाति की अपेक्षा सुमेर जाति की अधिक ऋणी है।"

समेर की स्थिति और उसकी सभ्यता की प्राचीनता

प्राचीनकाल में सुमेर और अक्काद के मध्य कोई सीमा निर्धारित नहीं थी। साधारणत: लोग निप्पुर नगर के दक्षिण भाग को सुमेर और उत्तरी प्रदेश को अक्काद कहते थे। प्राचीन काल में सुमेर का क्षेत्रफल बहुत कम था। सुमेर के निवासी नाटे कद के होते थे।

सुमेर की सभ्यता कितनी प्राचीन है इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस सभ्यता का काल वही है जो नील नदी के किनारे की मिस्र की सभ्यता का और सिन्धु नदी के किनारे सिन्धुघाटी की सभ्यता का था। परन्तु कुछ अन्य विद्वान इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते। मिस्र की सभ्यता और

सुमेर की सभ्यता में काफी अन्तर था। सुमेर की सभ्यता अनेक जातियों की सभ्यता है। मिस्र के लोग एकेश्वरवाद के मानने वाले थे परन्तु सुमेर के लोग एकेश्वरवाद में विश्वास नहीं करते थे। सुमेर और सिन्धु घाटी की सभ्यताएँ बहुत निकट आती हैं। ईराक में उर के पास 'अल-उवेद' के एक गाँव में भारत की अवरख मिट्टी के बने हुये बर्तन मिले हैं। मोहनजोदड़ो में एक मूर्ति प्राप्त हुई जिसका रूप सुमेरियनों के 'पवित्र वृषभ' से मिलता। हड़प्पा में एक सिंगारदान मिला है जिसकी बनावट वैसी ही है जैसी कि उर में प्राप्त हुए एक सिंगारदान की है। मोहनजोदड़ो और सुमेर की लिपि भी एक दूसरे से मिलती है। कुछ घड़े एवं अन्य वस्तुएँ भी ऐसी प्राप्त हुई हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि सिन्धु-घाटी की सभ्यता और सुमेर की सभ्यता का समय एक ही है। इस सम्बन्ध में सर जान मार्शल (Sir John Marshall) ने लिखा है—"इस प्रकार की मिलती-जुलती वस्तुओं की सूची बहुत बढ़ाई जा सकती है और यह वस्तुएँ इस बात को प्रमाणित करने के लिए यथेष्ट हैं, कि उस जमाने में अर्थात् सम्राट सारगोन के पूर्व या सारगोन के समय में भारत और सुमेर में आना-जाना, लेना-देना और सभ्यता का अन्य बातों में घनिष्ठ सम्पर्क था।"

सर जान मार्शल यह भी लिखता है कि—'इन पुराने देशों में मिट्टी के बरतनों के जो नमूने मिले हैं उनसे सिद्ध होता है कि सिन्ध, बलूचिस्तान, और ईराक की संस्कृतियों का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध था।'

इन समस्त तथ्यों के आधार पर हम सुमेर की सभ्यता का आरम्भ लगभग 3500 ई० पू० मान सकते हैं।

सुमेरियन जाति

सुमेरियन जाति के विषय में पर्याप्त जानकारी नहीं है। केवल इतना ही ज्ञात है कि अति प्राचीन काल में बेबिलोनिया में दो जातियाँ निवास करती थीं। अक्काद में सेमेटिक और सुमेर में सुमेरियन। सुमेरियनों का सम्बन्ध किस जाति से था इस विषय में कुछ कहीं कहा जा सकता। ये लोग मूल रूप से सुमेर के ही रहने वाले थे अथवा अन्य कहीं से आकर बस गए थे इस सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं।

कहना कठिन है कि प्राचीनतम सुमेरियन जाति और एलम निवासियों का क्या सम्बन्ध था। 'द मोर्गा' नामक विद्वान् का मत है कि एलमियों और सुमेरियनों की एक ही जाति थी। ऐसा मालूम पड़ता है कि अपने स्थानान्तरण के समय सुमेरिया ने कुछ काल तक एलम मे निवास किया और वहाँ अपनी सभ्यता की छाप छोड़ी। पुरानी बाइबिल में एक जाति के पूर्व से आकर 'शिन्नार' (सुमेर) में बसने का उल्लेख है। सम्भवतः यह संकेत सुमेरियनों की ओर ही है। हॉल तथा कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि सुमेरियन लोगों का सम्बन्ध भारतवर्ष की द्राविड़ जाति से था। इधर कुछ विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि सुमेरियन मूलतः भारत में सिन्धु की घाटी में रहते थे और वे जलमार्ग या स्थल मार्ग से यहाँ आकर बस गये थे। बेडेल ने सुमेरियनों को आर्य जाति का माना है। साइक्स भी उनका सम्बन्ध इण्डो-यूरोपियन परिवार से मानता है। पिजॉन तथा वॉल के मतानुसार वे मंगो-

लॉयड परिवार के थे। प्रोफेसर इलियट स्मिथ का मत है कि ये लोग सुमेर के ही मूल निवासी थे। परन्तु उनका मत भी समीचीन प्रतीत नहीं होता। अतः इस सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि पहले सुमेर में भी सेमाइट जाति के लोग निवास करते थे। बाहर से आई हुई एक जाति ने इनको आकर पराजित किया और कालान्तर में यही विजित सुमेरियन के नाम से पुकारी जाने लगी।

सुमेर का राजनीतिक इतिहास

पौराणिक युग—3200 ई० पू० के पहले के सुमेर के राजनीतिक इतिहास के विषय में अधिक जानकारी नहीं है। बेरोसांस के पौराणिक ग्रन्थ एवं कुछ अभिलेखों से उस समय का इतिहास अवश्य ज्ञात होता है। परन्तु यह जानकारी भी प्रामाणिक नहीं कही जा सकती। बेरोसांस के ग्रन्थ के अनुसार बेबिलोनिया के निवासियों को ओआनिज नाम के एक देवता ने सबसे पहले खेती करना, लिखना और अन्य कलाएँ सिखाईं। उस देवता ने ही सबसे पहले सुमेर पर शासन किया। उसके पश्चात् आलारोस उसका उत्तराधिकारी बना। इस वंश के अन्तिम शासक एक्सीयूथ्रास के शासनकाल में जलप्रलय हुआ।

बेरोसॉस के ग्रन्थ के अतिरिक्त कुछ अभिलेखों से जो कि कीलाक्षर लिपि में लिखे हुये हैं सुमेर और अक्काद के पौराणिक इतिहास की जानकारी होती है। इन अभिलेखों के अनुसार 'जिसद' के शासन-काल में जलप्रलय हुआ।

ऐतिहासिक युग—सुमेर के नगर-राज्य—3200 ई० पू० से सुमेर के इतिहास की विधिवत जानकारी प्राप्त होती है। कुछ अभिलेखों के अनुसार जलप्रलय के बाद सुमेर में किश, एरेक और उर नगर-राज्यों का शासन हुआ। कहा जाता है कि किश और एरेक का प्रभुत्व काफी समय तक चला। परन्तु यह सब इतिहास कल्पना से युक्त प्रतीत होता है और इसे पूर्ण रूप से प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। उर के इतिहास का अवश्य ही ऐतिहासिक महत्व है। उर के चार राजाओं ने 177 वर्ष तक शासन किया और उर के प्रथम वंश को ही सुमेर का प्रथम ऐतिहासिक वंश माना जाता है, इसका समय 3200 ई० पू० था। उर के पहले राजकुल के पश्चात् अवनि के पटेसियों ने आसपास के इलाके पर अधिकार कर लिया। परन्तु वे लोग भी शासन को बहुत दिनों तक अपने हाथ में न रख सके। उनमें 9 राजकुल हुये और सबने थोड़े-थोड़े समय तक शासन किया। इसके पश्चात् उरु-कगिना और लूगल जग्गिसी का काल आया। तत्पश्चात् सुमेर पर किश और अक्काद के सेमाइटों का प्रभुत्व स्थापित हुआ।

सारगोन प्रथम—सारगोन प्रथम सुमेर का सबसे पहला शक्तिशाली सम्राट माना जाता है। उसकी गणना विश्व के महानतम् विजेताओं में की जाती है। सारगोन प्रथम के माता-पिता के विषय में कोई जानकारी नहीं है। वह राज-परिवार से सम्बन्धित नहीं था। उसके विषय में विल डयूराण्ट ने लिखा है—

'His origin was not royal, history could find no father to him and no other mother tham a temple prostitute.'

—Will Durrant.

सबसे पहले सारगोन अगादे शहर का पटेसी बना। तत्पश्चात् उसने समस्त सुमेर पर अपना अधिकार जमा लिया और वहाँ दृढ़तापूर्वक शासन करना प्रारम्भ किया। उसका राज्य पूर्व में इलाम की पूर्वी सीमा तक तथा उत्तर और पश्चिम में रुम सागर के किनारे तक फैला था। समस्त शाम भी उसके राज्य के अन्तर्गत आता था।

सारगोन के शासन-काल में सुमेर की बहुत अधिक सांस्कृतिक उन्नति हुई। उसने अनेक महल और मन्दिर बनवाये। इन मन्दिरों में निप्पर नगर में 'बेल' देवता का मन्दिर और अगादे में 'अनुलिल' देवता का मन्दिर प्रसिद्ध हैं। सारगोन के प्रयासों के फलस्वरूप ही सुमेरियन कानूनों और धार्मिक-पुस्तकों को संगृहीत व सेमेटिक भाषा में अनूदित किया गया। उसने समस्त साम्राज्य में संदेश संचार-प्रणाली को भी व्यवस्थित किया। सारगोन की सफलताओं के कारण ही सुमेर पर अक्काद वंश के काल को 'सारगोन युग' के नाम से पुकारा जाता है। सारगोन ने 55 वर्ष तक राज्य किया। उसका एक अभिलेख भी मिलता है, जिस पर लिखा है—

'मैं अगादे का बहादुर सम्राट सारगोन हूँ। मेरी माँ बहुत ही गरीब थी और मुझे अपने बाप का पता नहीं। मेरे चाचा पहाड़ पर भेड़े चराया करते थे। मैंने फिरात नदी के किनारे अजुरपिरानी गाँव में जन्म लिया। मेरी माँ ने जो बहुत गरीब थी मुझे चुपचाप पैदा किया और एक नरकुल की टोकरी में रखकर नदी में प्रवाहित कर लिया। नदी मुझे बहाकर अक्की नाम के माली के पास ले आई। अक्की ने मुझे पालकर बड़ा किया और मुझे माली बनाया।''

सारगेन की सांस्कृतिक सफलता—सुमेर के मन्दिरों में जो धार्मिक पुस्तकें पायी जाती हैं वे सारगोन के शासन काल में संगृहीत की गई थीं और सेमेटिक भाषा में उनका अनुवाद किया गया था तथा लगभग 2000 वर्ष पश्चात् असीरियन सम्राट असुरबनिपाल की आज्ञा से इनकी प्रतिलिपियाँ बनाई गयी थीं।

सम्राट नरामसिन—सारगोन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र नरामसिन गद्दी पर बैठा। उसने भी अपने पिता की भाँति 55 वर्ष तक राज्य किया। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसने लुल्लुबी के शासक सतुनी पर विजय प्राप्त की थी और इस विजय के उपलक्ष में उसने 'नरामसिन-पाषाण' नामक स्मारक बनवाया। निप्पर में उसने शहर की चहारदीवारी बनवाई। उसने अपनी राजधानी उर से हटाकर अगादे रखी परन्तु उर भी व्यापार और धर्म का केन्द्र बना रहा।

इस वंश का अन्तिम सम्राट शारगलेश्वर था जिसने 24 वर्ष तक राज्य किया।

गुटियम का राजकुल—अगादे के पश्चात् 'शिरपुरला' सुमेर की राजधानी बनी। इस पर गुटियम वंश के शासकों ने शासन किया। इनका शासन 155 वर्ष तक रहा। इस वंश का सबसे प्रतापी सम्राट गुडीअ था। उसकी तुलना सारगोन महान से की जाती है। उसके शासन-काल में कला कौशल और वाणिज्य की बहुत अधिक उन्नति हुई। इसके शासन-काल की 18 मूर्तियाँ प्राप्ति हुई हैं। गुटियम राजकुल को समाप्त करने का श्रेय एरेक के एक राजा को है।

उर का तृतीय राजवंश—निरन्तर संघर्षों के पश्चात् उर एक बार पुन

सुमेर की राजधानी बना। इस कुल में उर-नाम्मु नाम का एक प्रसिद्ध राजा हुआ। शिला लेखों में उसे सुमेर और अक्काद का राजा कहा गया है। उसने उर में 'चन्द्र-देव का मन्दिर', एरेक में 'विना देवी का मन्दिर', लारसा में 'सूर्यदेव का मन्दिर' और निप्पर में 'सिग्गुरात मन्दिर' बनवाया।

उर-नाम्मु के पश्चात् उसका पुत्र दुङ्गी गद्दी पर बैठा। वह भी अपने पिता की भाँति एक सुयोग शासक था। उसने सुसा में 'शुशिनाग' देव का मन्दिर बनवाया। इसके अतिरिक्त उसने सुमेर में अनेक मन्दिर बनवाये। उसके शासन-काल में एक 'विधि-संहिता' भी बनी। पहले कुछ विद्वानों का मत था कि यह विश्व की प्राचीनतम विधि-संहिता है परन्तु सुमेर में इससे भी अधिक प्राचीन विधि संहिताएँ प्राप्त हुई हैं। हाँ, यह अवश्य है कि परवर्ती वैबिलोनियन शासक हम्मूरबी की विश्व-विख्यात 'विधि-संहिता' दुङ्गी की 'विधि-संहिता' का परिवर्तित और संशोधित संस्करण मात्र थी।

सुमेर का पतन—दुङ्गी के बाद उसके पुत्र बरसेन ने थोड़े समय तक राज्य किया परन्तु दुङ्गी की मृत्यु के लगभग 43 वर्ष बाद उर के नेतृत्व का अन्त हो गया। एलमी के शासक ने उर पर आक्रमण किया और दुङ्गी के उत्तराधिकारी को बन्दी बनाकर एलम ले गया। इसके पश्चात् सुमेर पर एलम के आक्रमण निरन्तर होते रहे। इस युद्ध का वर्णन निप्पर के एक शिलालेख में इस प्रकार मिलता है—

'उन्होंने देश को बरबाद कर दिया और शासन-प्रबन्ध को नष्ट कर दिया। वे तूफान की भाँति आये और समस्त दिशाओं में तबाही फैला गये। मेरे प्यारे सुमेर? उन्होंने तुम्हें क्या से क्या बना दिया। पवित्र राजकुल के उत्तराधिकारी को उन्होंने निर्वासित कर दिया। शहर को धूल में मिला दिया और मन्दिरों को गिरा दिया।

इसके पश्चात् इसित् नगर में एक नये राजवंश की स्थापना हुई जिसने एलम के आक्रमणों को रोकने का प्रयास किया और 225 वर्ष तक शासन किया। इसी बीच पश्चिम सेमेटिक अथवा अमोराइट जातियों ने भी सुमेर पर आक्रमण कर दिया। इन निरन्तर आक्रमणों के फलस्वरूप सुमेर का पतन हुआ और 21 वीं शताब्दी ई० पू० में मोसेपोटामिया में एक नई सभ्यता का आरम्भ हुआ जिसे हम वेबिलोनिया की सभ्यता के नाम से पुकारते हैं।

राजनीतिक संगठन एवं प्रशासन

(1) नगर-राज्य—3000 ई० पू० में सुमेर छोटी-छोटी राजनीतिक इकाइयों में बँटा हुआ था। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि सुमेर में छोटे-छोटे नगर राज्य थे। हर राज्य में एक नगर होता था तथा दो-तीन कस्बे या गाँव होते थे। प्रधान नगर के चारों ओर खेती करने के लिये भूमि होती थी। इस युग के अनेक राजाओं ने अनेक बार नगर-राज्यों को संगठित करके एक संयुक्त राष्ट्र-राज्य की स्थापना का प्रयास किया परन्तु केन्द्रीय सत्ता के दुर्बल होते ही पुनः नगर-राज्य बन गए।

इन नगर-राज्यों में शासन का भार नागरिकों पर होता था। हर नगर में एक संसद होती थी जिसके दो सदन होते थे। एक सदन में नगर के सभी वयस्क

नागरिक रहते थे और दूसरे में कुछ इने-गिने अनुभवी वृद्ध पुरुष रहते थे। रा
कोमस संसद के परामर्शानुसार ही शासन करना होता था। इस प्रकार आरम्भ
सुमेर में प्रजातान्त्रिक प्रणाली को अपनाया गया था। अतएव सुमेरियनों को प्रजात
का जनक कहा जाना चाहिये। यूनान के नगर-राज्यों की प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्
के लगभग 2500 वर्ष सुमेर में इस प्रकार की व्यवस्था मिलना निसन्देह आश्चर
जनक है।

3000 ई० पू० के बाद सुमेर से प्रजातन्त्र की भावना समाप्त होने लगी
इस प्रजातान्त्रिक प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह था कि किसी बात का निर्ण
बहुत देर में होता था। अतः संकटकालीन अवसर के लिये एक अधिकारी
नियुक्ति की गई जिसे 'पटेसी' या 'लूगल' कहते थे। आरम्भ में यह पद अस्थाय
रखा गया था, परन्तु बाद में स्थायी हो गया। कुछ नगरों में मन्दिरों के पुरोहि
'लूगल' बन बैठे। ये लोग जनता को सताने भी लगे। उनको कालान्तर में 'एनसी
के नाम से पुकारा गया। ये राज्य की सैनिक शक्ति का प्रयोग अपने हित के लि
करने लगे और इन्होंने कर आदि बढ़ा दिये। इन सब बातों के फलस्वरूप नग
सभाओं की शक्ति बहुत कम हो गई, अतएव लगश के तत्कालीन शासक उरु कगि
ने इस व्यवस्था को समाप्त कर दिया। जब उम्मा के शासक लूगल जगिगसी ने उ
कगिना को परास्त कर दिया तो सुमेर के लोगों ने राजनीतिक एकता की आवश्यकत
महसूस की। राजनीतिक एकता के लिये आवश्यक था कि किसी एक ही व्यक्ति
हाथ में शासन की सत्ता हो। अतएव प्रजातान्त्रिक प्रणाली के स्थान पर राजतन
की स्थापना हुई। सरगोनी राजाओं ने इस प्रणाली का पूर्ण लाभ उठाया और दे
में राजनीतिक एकता स्थापित की। इस प्रकार सुमेर की प्रशासन-प्रणाली
साम्राज्यवादी रूप धारण किया।

(2) **युद्ध-कला**—पटेसी युद्ध-काल में सेना का संचालन करते थे। नगर
राज्य के सभी व्यक्ति पटेसी के नेतृत्व में युद्ध करने को तत्पर रहते थे। ये लोग पंक्ति
बद्ध होकर शत्रुओं पर आक्रमण करते थे। युद्ध में अपनी रक्षा के लिये यह लोग ढा
और शिरस्त्राणों का प्रयोग करते थे। रथों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया जात
था जिनमें गधे जोते जाते थे। घोड़े और धनुष बाण का प्रयोग शायद सुमेरिय
आरम्भ में नहीं करते थे। धनुष का प्रयोग उन्होंने अक्कादी सेमाइटों से सीखा
आरम्भ में इनका प्रमुख अस्त्र तलवार ही था। कालान्तर में साम्राज्यवादी व्यवस्थ
के अन्तर्गत सेना का सम्पूर्ण नेतृत्व सम्राट ही करने लगा।

(3) **न्याय एवं दण्ड-व्यवस्था**—प्रारम्भ में सुमेर में न्याय के लिये रीति
रिवाजों और परम्पराओं का आश्रय लिया जाता था। परन्तु ज्यों-ज्यों साम्राज
की शक्ति बढ़ती गई रीति-रिवाजों और परम्पराओं के अनुसार न्याय करना दुष्कर
हो गया। अतः एक विधि-संहिता की आवश्यकता महसूस हुई। उर के तृतीय
राजवंश के संस्थापक उर-नम्मु ने एक विधि संहिता की रचना करवाई जो बड़ी
खण्डितावस्था में प्राप्त हुई है। अतएव उसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता।
उर-नम्मु के पुत्र डुङ्गी की विधि-संहिता अपेक्षाकृत अच्छी अवस्था में मिली है। इस
संहिता में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। ऐस

विश्वास किया जाता है कि आगे चलकर बैबिलोनियन शासक हम्मूराबी ने दुङ्गी की विधि-संहिता को ही परिवर्तित एवं संशोधित कराकर उसे ही एक नवीन रूप में प्रस्तुत किया।

(क) न्यायालय और उसका संगठन—सुमेरियन कानून-व्यवस्था में न्यायालय का वही स्थान था जो आजकल के न्यायालयों का है। इस न्याय-व्यवस्था का मन्दिरों में बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध था और पुजारी वर्ग ही मुख्यत: न्यायाधीश होता था। अदालतें दो प्रकार की होती थीं—(1) साधारण, (2) धार्मिक।

इन न्यायालयों के न्यायाधीश पुरोहित ही होते थे। साथ ही राजा को भी न्यायाधीश नियुक्त करने का अधिकार था। नगर के नगरपति, पटेसी और गवर्नर भी मुकदमों का निर्णय करने के अधिकारी थे। मुकदमेवाजी की प्रथा को कम करने के लिये पंचों की भी नियुक्ति की गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग में वकीलों की प्रथा नहीं थी। वादी और प्रतिवादी अपने आप अपनी वकालत करते थे। अदालत में मुकदमा ले जाने के पहले वादी का एक सरकारी पंच 'मशकिम' के सामने मुकदमा पेश करना होता था जो उसका निर्णय करने का प्रयास करता था। अगर वह इस कार्य में असफल होता है तो मुकदमा (जज) के सामने जाता था। वादी और प्रतिवादी राजा के नाम पर शपथ लेकर अपना बयान देते थे। छोटी अदालत के बाद मुकदमा ऊपर की अदालत में भी ले जाया जा सकता था। ऊँची अदालत के नीचे की अदालत का निर्णय रद्द कर सकती थी।

प्राचीन सुमेर में न्याय-व्यवस्था बहुत सस्ती थी। किसी भी प्रकार की कोर्ट फीस नहीं ली जाती थी। अत: गरीब से गरीब आदमी न्यायालय की शरण ले सकता था। झूठी गवाही या साक्षी देने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था।

(ख) दण्ड-व्यवस्था—सुमेर की दण्ड-व्यवस्था बड़ी उदार थी। जायदाद के बेचने, खरीदने, ऋण, तलाक, शादी आदि के लिये विधिवत कानून बने हुये थे। जिसका पालन प्रत्येक व्यक्ति को करना पड़ता था। यहाँ की दण्ड नीति 'शठे शाठ्यं समाचरेत' सिद्धान्त पर आधारित थी। यदि कोई व्यक्ति किसी का दाँत तोड़ देता तो उसका भी दाँत तुड़वा दिया जाता था। यह कार्य उसी व्यक्ति के द्वारा किया जाता था जिसका दाँत तोड़ा गया था। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वादी द्वारा प्रतिवादी को दण्ड दिया जाता था।

सुमेरियन कानून में बच्चे को पिता की और पत्नी को पति की सम्पत्ति माना गया था। पति व्यभिचारिणी स्त्री को तलाक नहीं दे सकता था परन्तु उसे पुनर्विवाह करने की अनुमति प्रदान की जा सकती थी। निकाले हुये दासों को शरण देने पर जुर्माना किया जाता था। यदि कोई दास अपने स्वामी की आज्ञा न माने तो उसे बेच दिया जाता था।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कुछ बातों को छोड़कर सुमेर की दण्ड-व्यवस्था उदारवादी दृष्टिकोण को लेकर चली थी। यदि कोई व्यक्ति अनजाने में दूसरे व्यक्ति की हत्या कर देता था तो उसे उस व्यक्ति के परिवार वालों को धन देना होता था, जिसकी हत्या वह करता था।

सामाजिक संगठन

(1) वर्ग-व्यवस्था—सुमेरियन समाज को तीन वर्गों में विभाजित किया गया था—

1. उच्च
2. मध्यम
3. निम्न

राजपुरुषों, पुरोहितों और राज्य के अन्य उच्च कर्मचारियों को उच्च श्रेणी में रक्खा जाता था। मध्यम श्रेणी के अन्तर्गत सामन्त, व्यापारी एवं अन्य स्वतन्त्र नागरिक आते थे। दासों और सर्फों को निम्न वर्ग के अन्तर्गत रखा गया। उच्च वर्ग के लोग बड़े सम्मान से देखे जाते थे। दण्ड देते समय अपराधी की सामाजिक प्रतिष्ठा का ध्यान रखा जाता था। सुमेरियन समाज की सबसे सुन्दर व्यवस्था यह थी कि दासों की अवस्था अपेक्षाकृत अच्छी थी। इन दासों को दूसरों के हाथ बेचा जा सकता था परन्तु इनके साथ बुरा व्यवहार नहीं किया जा सकता था। सुमेरियन का यह विश्वास था कि मनुष्य परिस्थितियों का दास है। एक ऐसा समय आ सकता है जब कोई भी व्यक्ति गुलाम बन सकता है। यह गुलामी सबसे अधिक निकृष्ट चीज है। प्रसिद्ध इतिहास लेखक वूली ने ठीक ही लिखा है—

'अमरीका के लोग अपने हब्शी गुलामों को समाज से बाहर समझते थे और यूनानी समस्त असभ्य जातियों को जन्म से गुलाम मानते थे। लेकिन सुमेरियनों के अनुसार गुलामी एक मुसीबत थी, एक दुर्भाग्य थी जिसमें कोई भी व्यक्ति किसी समय फँस सकता था।

सुमेर की समाज-व्यवस्था में कोई गुलाम कभी भी मध्यम श्रेणी का व्यक्ति बन सकता था। उदाहरण के लिये यदि कोई व्यक्ति किसी दासी को रख ले और उसकी मृत्यु हो जाय तो वह दासी और उसके बच्चे स्वतन्त्र नागरिक माने जाते थे। यह ठीक है कि सुमेर में निरन्तर संघर्ष हुआ करते थे और परतन्त्र व्यक्तियों को दास बना लिया जाता था परन्तु दासों के साथ अभद्र व्यवहार करने का अधिकार किसी को नहीं था। दासों की दशा के विषय में ग्राउट महोदय ने लिखा है, "सुमेर में दासों की दशा रोम से उत्तम थी।"

"The condition of slaves in Sumair was much better than in Rome."

उच्च वर्ग के लोगों की हत्या करना जघन्य अपराध माना जाता था और साधारण नागरिकों की हत्या करना दासों की हत्या से बड़ा अपराध माना जाता था। इतना होते हुए भी उच्च वर्ग से यह आशा की जाती थी कि वह अधिक नैतिकता का व्यवहार करेगा। अतः किसी उच्च वर्ग के व्यक्ति को कोई अनैतिक कार्य करने पर निम्न वर्ग के व्यक्ति की अपेक्षा अधिक दण्ड दिया जाता था।

(2) स्त्रियों की दशा—सुमेरियन समाज में स्त्रियों का स्थान काफी ऊँचा था। यद्यपि कानून द्वारा पति को यह अधिकार दिया गया था कि वह अपनी पत्नी

और बच्चों को बेच सकता था परन्तु ऐसी घटनाएँ बहुत कम होती थीं। सुमेर की स्त्रियों को कुछ बड़े महत्वपूर्ण अधिकार दिये गये। सुमेर में स्त्रियाँ पुरुषों के समान समझी जाती थी। पत्नी को स्वतन्त्र रूप से व्यापार करने और दासियाँ रखने का अधिकार था। पत्नी के सम्मान और मर्यादा का ख्याल रक्खा जाता था। विवाह घर के बड़े-बूढ़ों द्वारा तय किये जाते थे और विवाह की शर्तें तख्ती पर लिखकर गवाहों के हस्ताक्षर करवा लिये जाते थे। दहेज की सारी रकम पत्नी को ही मिलती थी और अपनी मृत्यु से पहले वह उसे अपने बच्चों को दे सकती थी परन्तु यदि वह ऐसा नहीं करती थी तो उसकी मृत्यु पर यह रकम उसके पिता या भाई को मिल जाती थी। यदि विवाह से पहले पति ने किसी महाजन से कुछ ऋण लिया होता था तो वह पत्नी की सम्पत्ति द्वारा नहीं चुकाया जा सकता था। परन्तु विवाह के उपरान्त लिये हुये ऋण के लिये पति और पत्नी दोनों ही उत्तरदायी होते थे।

पति की मृत्यु के उपरान्त पत्नी को पति की सम्पत्ति से लड़कों के बराबर हिस्सा मिलता था। पति की मृत्यु पर पत्नी पुनर्विवाह कर सकती थी। पत्नी के कोई पुत्र न होने पर सन्तानोत्पत्ति के लिये पति दूसरा विवाह कर सकता था। परन्तु पहली पत्नी का निरादर नहीं किया जाता था। बच्चों को बेचा या गिरवीं रखा जा सकता था। रखैल रखने की प्रथा भी थी और रखैल की सन्तान को भी उतना ही सम्मान मिलता था जितना ही विवाहित पत्नी की सन्तान को। गोद लेने की प्रथा भी थी। अधिकतर मन्दिरों में रहने वाली देवदासियों के बच्चों को उच्च वर्ग के लोग गोद लेते थे। मन्दिरों में देवदासियाँ होती थीं जिनको हीन दृष्टि से नहीं देखा जाता था।

(3) भोजन—सुमेर के लोग अधिकतर गेहूँ, जौ और खजूर खाते थे। ये लोग मांस और मदिरा का प्रयोग भी करते थे। अंगूर भी खाते थे। अमीर लोग मछली-मांस का सेवन अधिक करते थे परन्तु गरीबों के यहाँ विशेषकर त्यौहारों पर ही मांस पकता थी।

(4) वेषभूषा एवं आभूषण—सुमेर के निवासियों की वेषभूषा अच्छी थी। पुरुष अधिकतर लुङ्गी पहनते थे और आरम्भ में अधिकतर उनके ऊपर का भाग खुला रहता था। परन्तु बाद में शरीर को गर्दन तक ढकने की प्रथा चल रही थी। स्त्रियों के वस्त्र बड़े आकर्षक होते थे। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ वर्ग की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक अच्छे वस्त्र पहनती थीं। देवदासियों के वस्त्र भी अच्छे होते थे। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ अत्यन्त सुन्दर आभूषणों को धारण करके विलासिता का जीवन व्यतीत करती थीं।

यहाँ की खुदाई में श्रृंगार के बहुत से आभूषण प्राप्त हुए हैं जिनमें अँगूठी, कंठहार कर्णफूल, कड़े आदि मुख्य हैं। रानी शुबअद की समाधि से एक पेटिका मिली जो सोने के तारों से युक्त है। इसमें सोने की पिन है और इसकी घुंडियाँ नीलम की हैं। इस पेटिका में एक छोटा चम्मच है जो सम्भवतः गालों की लाली के लिये होता था। साथ ही खाल को ठीक करने के लिए एक छड़ी और भौंहों आदि को बनाने के

लिये एक छोटी सी चिमटी भी मिली है। रानी की जो अँगूठी प्राप्त हुई है उसमें नीलम जड़ा हुआ है। इसके साथ ही एक कण्ठहार भी प्राप्त हुआ है।

(5) मृतक संस्कार—सुमेरियन समाज में मृतक को दफनाने की प्रथा प्रचलित थी। सामान्य जनों को दफनाने की विधि बहुत साधारण थी। कब्र बनाकर उसमें मृतक को लिटा दिया जाता था। साथ ही दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली आवश्यक सामग्री भी रख दी जाती थी। उसकी राजसमाधि की खुदाई में राजा के अस्त्र-शस्त्रों, आभूषणों, उसकी दासियों और नारियों के अवशेष प्राप्त हुये हैं। यह कार्य इसलिये किया जाता था कि मृतक को मरने पर कष्ट न हो।

आर्थिक व्यवस्था

(1) कृषि—आर्थिक दृष्टि से भी सुमेर ने बहुत अधिक उन्नति की थी। खेती और व्यापार ही मुख्य धन्धे माने जाते थे। खेती के लिये सिंचाई की अच्छी व्यवस्था थी। दलबन्दी को सुनकर यहाँ के लोगों ने समस्त देश में नहरों का जाल बिछा दिया था। शासकवर्ग इसमें बहुत अधिक अभिरुचि रखता था। खेत के चारों ओर मेड़ें बना दी जाती थीं।

कृषि ही यहाँ का मुख्य कर्म था। यह लोग गेहूँ, जौ, खजूर आदि की खेती करते थे। फलों के बाग भी लगाये जाते थे। हलों में बैल जोतने की प्रथा प्रचलित थी सन् 1949-50 में निप्पुर में एक अभिलेख मिला था। अनेक विद्वान इसे 'विश्व का प्रथम कृषि-पंचाङ्ग' मानते हैं। इससे यह पता लगता है कि कृषि के क्षेत्र में ये लोग कितनी अधिक उन्नति कर चुके थे। इस पंचाङ्ग में एक किसान ने अपने पुत्र को बताया है किस वह कि तरीके से खेती करे कि खेतों की पैदावार बढ़ जाय। वह अपने पुत्र को कृषि कर्म की दीक्षा देते हुए कहता है कि उसे मई-जून में बाढ़ आने के समय से लेकर अप्रैल मई में फसल कटने तक किस समय क्या-क्या करना चाहिए।

(2) पशु-पालन—पशु-पालन यहाँ के लोगों का दूसरा प्रमुख धन्धा था। यहाँ के लोग गाय को देवी के रूप में पूजते थे। गाय को वे पशु-जगत की रक्षक देवी मानते थे। उर में गौ देवी की सुन्दर सोने की मूर्ति प्राप्त हुई है जिससे यहाँ के दूध उद्योग की समुचित जानकारी प्राप्त होती है। गाय के अतिरिक्त ये लोग भेड़ें और बकरियाँ पालते थे। हलों के लिये बैलों और गाड़ी खींचने के लिये गधों का प्रयोग किया जाता था। सम्भवतः ये लोग घोड़े से परिचित नहीं थे।

(3) कताई-बुनाई—सुमेर में चर्खे से सूत कातकर बारीक कपड़ा बुना जाता था। ऊनी कपड़ा भी बनाया जाता था। मोसल, जो सुमेर के उत्तर में दजला नदी के किनारे एक पुराना शहर है, की मलमल बहुत अधिक प्रसिद्ध होती थी।

(4) अन्य उद्योग-धन्धे—सुमेर में विभिन्न प्रकार के उद्योग धन्धे प्रचलित थे। ये लोग कांसा बनाना जानते थे और सोने, चाँदी तथा शीशे से भली भाँति परिचित थे। रथ बनाना इनका प्रमुख उद्योग-धन्धा था। रथों के पहिये लकड़ी के बने होते थे और उन पर तांबे तथा चमड़े के तार लगाये जाते थे। फर्नीचर आदि बनाने का कार्य भी यहाँ प्रचलित था। बढ़ई, जुलाहे और लुहार आदि सभी अपने कार्यों में अति निपुण होते थे यही कारण था कि मन्दिरों के सदस्यों में बढ़ई, लुहार और

जुलाहों की संख्या अधिक होती थी। तांबे को पीटकर वे विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ और अस्त्र-शस्त्र बनाते थे।

(5) व्यापार—सुमेर व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ से अन्य देशों को कपड़ा, विलासिता का सामान और खजूर आदि का निर्यात होता था। आयात और निर्यात दोनों ही बड़ी व्यापक मात्रा में होते थे। पर्वतीय प्रदेशों से चाँदी, अफगानिस्तान से वैदूर्य, सीरिया और एशिया से टीन आदि आता था।

व्यापार अधिकतर मन्दिरों के सदस्य, व्यापारियों और सौदागरों के हाथ में था। ये सौदागर सुमेर का माल बाहर ले जाते थे और बाहर के मन्दिरों के उपयोग में आने वाला माल जैसे सोना, चाँदी आदि लेकर आते थे। पूर्व में इनके व्यापारिक केन्द्र सिन्धु-घाटी तक और भूमध्य सागर के पूर्वी तट तक थे। मन्दिर के अलावा व्यक्तिगत व्यापार भी होता था।

व्यापार के लिये अधिकतर ऊँट के काफिलों; गधों और नावों का प्रयोग होता था। आरम्भ में सुमेर के लोग मुद्रा-प्रणाली से अनभिज्ञ थे, अतः खाद्य-सामग्री और आवश्यक वस्तुओं के रूप में आदान-प्रदान होता था। बाद में रजत-शेकेल का प्रयोग किया जाने लगा था जो आधुनिक युग के दो डालर के बराबर होती थी। इन व्यापारियों में कमीशन की प्रथा भी प्रचलित थी। छोटे व्यापारी अपना माल बड़े व्यापारियों को दे देते थे जो उसको बेचकर अपना कमीशन काट लेते थे। व्यापारिक समझौतों में साक्षियों के हस्ताक्षर भी आवश्यक होते थे।

धर्म एवं धार्मिक विश्वास

सुमेरवासियों के धार्मिक विश्वासों का पता खुदाई में प्राप्त कुछ मन्दिरों से चलता है। इनके मन्दिर ऊँचे स्थान पर बनाये जाते थे। हर नगर के अपने-अपने देवता होते थे। ये मन्दिर नगर की हलचल के मुख्य केन्द्र होते थे। इन मन्दिरों के अवशेषों द्वारा सुमेर के लोगों के धर्म के विषय में निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

(1) बहुदेववाद—सुमेर के निवासी बहुदेववाद में विश्वास करते थे। कुछ इतिहासकारों का मत है कि सुमेर के लोग आरम्भ में एकेश्वरवादी थे परन्तु कालान्तर में अनेक देवताओं पर विश्वास करने लगे थे। आरम्भ में ये आकाशदेव अन को, जिसे बेबिलोनिया युग में अनु कहा गया है, सर्वोच्च देवता मानते थे। एरेक में उसका प्रसिद्ध मन्दिर था। 3000 ई० पू० तक उसका महत्व कम हो गया। देवताओं में एनेलिल (Enlil) जो वायु और वर्षा का देवता था और शमश (Shamash) जो प्रकाश का देवता सूर्य था, प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त चन्द्रमा भी इनका प्रमुख देवता था। ये लोग समुद्र देव और प्रकाश देव की भी पूजा करते थे। इनका विश्वास था कि इन समस्त देवताओं के ऊपर एक देवता है जिसको ये लोग इल्ल के नाम से पुकारते थे। सुमेर की एक त्रिमूर्ति में सिन (चन्द्रमा), सन (सूर्य) और बृत (वायु) सम्मिलित हैं। सुमेर के ग्रन्थों में अप्सु (जल) को समस्त सृष्टि का पिता और तियमत को सबकी माता माना गया है। ये लोग 'अनु' को स्वर्ग का राजा, 'एनेलिल' को मृत्युलोक का राजा और 'इया' को समुद्रों का राजा मानते थे।

(2) ग्रहों पर विश्वास—उपर्युक्त देवताओं के अतिरिक्त ये लोग पाँच ग्रहों

पर भी विश्वास करते थे। वार (शनि) योद्धाओं का देवता था। बेल (बुद्ध) न्याय का देवता था तथा नरगल (मङ्गल) आखेट, आँधी युद्ध का देवता था। ईश्वर अथवा नाना (शुक्र) को बड़े सम्मान से देखा जाता था। नेबों (बृहस्पति) ज्ञान और विज्ञान के देवता माने जाते थे।

(3) देवियों पर विश्वास—सुमेरवासी अपने विभिन्न देवताओं की पत्नियों को देवी के रूप में पूजते थे। इन लोगों का विश्वास था कि प्रत्येक देवता के एक पत्नी होती है जो छाया की तरह उसके साथ रहती है। अनु की पत्नी का नाम अनुता था जिसके दो पुत्र थे–बुल और मर्तु। एनेलिल की पत्नी का नाम अन्नता था जो अनाज की देवी मानी जाती थी। इया की पत्नी का नाम देवकिना था। इसके एक पुत्र था जिसका नाम मार्दुक था। एनेलिल का सबसे बड़ा पुत्र सिन था। मार्दुक की पत्नी का नाम सिनू-बनित, नर्गल की पत्नी का नाम लाज और नेबों की पत्नी का नाम वर्मित था। पृथ्वी देवी को यह लोग निन्माह कहते थे।

(4) देवताओं का मानवीकरण—सुमेर के लोगों का विश्वास था कि देवता अमर हैं। मानवीय गुणों से युक्त हैं और उनमें भी मानव की भाँति वासनाएँ होती हैं। इन देवताओं का निवास एक पर्वत पर माना जाता था।

(5) दानवों की कल्पना—ये लोग दानवों पर भी विश्वास करते थे। इनका मत था कि यद्यपि दानवों की शक्ति देवताओं की शक्ति से कम है। परन्तु फिर भी यह दानवीय शक्तियाँ मनुष्यों को बुरे रास्तों पर ले जाती हैं।

(6) निराशावाद—सुमेर के निवासियों का धर्म आशावादी धर्म नहीं था। वे निराशावादी थे। उनका कहना था कि मृत्यु के पश्चात् हमारी आत्मा शियोल (Sheol) नामक स्थान में जाती है जहाँ सर्वत्र अन्धकार है और जहाँ सुख नाम की कोई चीज नहीं है। यही कारण था कि सुमेर के लोग मृत व्यक्ति पर अधिक ध्यान नहीं देते थे। मृत व्यक्ति के साथ कुछ खाने की वस्तुयें और दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाला सामान रख लेते थे क्योंकि इनका विश्वास था कि यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो मृत व्यक्ति भूत बनकर सबको खा जायगा। इन लोगों का विश्वास था कि स्वर्ग देवताओं के लिये ही है। वहाँ विरले मनुष्य ही पहुँच सकते हैं।

(7) बलि की प्रथा – सुमेर में बलि की प्रथा भी प्रचलित थी। देवताओं को बलि चढ़ाई जाती थी और आशा की जाती थी कि देवता इससे प्रसन्न होकर मनुष्य का कल्याण करेंगे। वृष्टि के देवता को बहुत अधिक बलि चढ़ाई जाती थी।

(8) कर्मवादिता—सुमेरियन का यह दृढ़ विश्वास था कि मनुष्य अपने कर्मों का भोग इसी जीवन में भोगता है। यदि मनुष्य देवी-देवताओं की आराधना न हो तो उसका कल्याण होना सम्भव नहीं है।

(9) पाप-पुण्य—यहाँ के लोगों का विश्वास था कि मनुष्य को अपने किये का फल इसी जन्म में मिल जाता है। मनुष्य यदि देवताओं की पूजा नहीं करेगा तो उसका कल्याण नहीं होगा। स्वर्ग के दूत "सबितू" ने "गिल्गमेश" से कहा था—

'जब देवताओं ने मानव-समाज की रचना की तो मृत्यु को मनुष्य को देकर अमृत को अपने लिये सुरक्षित रखा।'

'हर मनुष्य को किसी न किसी देवता की पूजा करनी चाहिए। जिसका कोई देवता नहीं सिर-पड़ा उसके भाग्य को इस तरह ढक लेती है जिस तरह कपड़ा देह को।'

श्री विश्वम्भर पांडे द्वारा लिखित "विश्व का साँस्कृतिक इतिहास"

मेसोपोटामिया से उद्धृत

इन लोगों के अनुसार पाप 8 प्रकार का होता था—

(1) ईश्वर और देवताओं के प्रति श्रद्धा न रखना।

(2) झूठ बोलना।

(3) पड़ोसियों को धोखा देना।

(4) आपसी फूट फैलाना।

(5) व्यभिचार करना।

(6) पड़ोसी के साथ दुर्व्यवहार करना।

(7) लड़ाई करना।

(8) व्यापार में बेईमानी करना।

पाप से छुटकारा पाने के लिये देवता की आराधना ही एक मात्र साधन है। इनका कहना था कि देवता की प्रार्थना पाप से बचाती है और बलिदान जीवन बढ़ाता है।

(10) कर्म-काण्ड—सुमेरियन धर्म में कर्मकाण्ड को विशेष महत्व प्रदान किया गया था। इसके अनुसार धार्मिक अनुष्ठानों को करने वाला बुरा व्यक्ति भी धार्मिक बन सकता है, देवताओं को बलि देने वाला सदैव प्रसन्न रहता है। यह लोग पूजा-पाठ पर विशेष ध्यान देते थे। जब कोई व्यक्ति मन्दिर में मक्खन, रोटी, घी, दूध, मदिरा आदि लेकर जाता था तो पुजारी उसकी ओर से पूजा करता था और देवता को भोग लगाता था। सुमेरियन नगरों के उत्खनन में विविध प्रकार के पूजा-पाठ प्राप्त हुए हैं, जिन्हें देखने से उनकी धार्मिक क्रियाओं के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। ढोंग की मात्रा बहुत अधिक थी।

(11) धर्म का उद्देश्य—सुमेर के निवासियों के धर्म का एकमात्र उद्देश्य सांसारिक सुखों की प्राप्ति था। भौतिक उन्नति करना मात्र ही वे धर्म का लक्ष्य मानते थे। वे स्वर्ग और नरक में विश्वास नहीं करते थे। विल ड्यूराण्ट ने लिखा है—

"They had not yet conceived Heaven and Hell as eternal reward punishment, they offered prayer and sacrifice not for eternal life, but for tangible advantages here on the Earth."

—Will Durrant.

उनका धर्म, कर्म-काण्ड प्रधान था। धर्म मनुष्य को सान्त्वना प्रदान करने का साधन न होकर वाणिज्य, व्यापार और कृषि में उन्नति कराने वाला समझा जाता था।

सुमेर के निवासियों के धार्मिक विश्वासों का पता उनकी सृष्टि की रचना

सम्बन्धी और बाढ़ सम्बन्धी कथाओं से भी चलता है। उनके मतानुसार आरम्भ में संसार में चारों ओर जल ही जल था। इस जल की कल्पना उन्होंने नम्मू देवी के रूप में की है। उससे "की" नाम की एक देवी और "अन" नाम का एक देवता बना। उसके पश्चात् 'की" ने ऐनेलिल को जन्म दिया जिसने पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा एवं अन्य ग्रहों को जन्म दिया। इस प्रकार यह लोग ऐनेलिल को ही मानव सृष्टि का रचयिता मानते हैं।

सृष्टि सम्बन्धी अन्य कहानी में साहसहीन देवताओं पर मार्दुक (Marduk) की विजय को चित्रित किया गया है।

बाढ़ सम्बन्धी कथा यह है कि एक बार देवताओं ने अप्रसन्न होकर समस्त मानव जाति को नष्ट करना चाहा। सात दिनों तक समस्त पृथ्वी जल में डूबी रही जिससे देवता स्वयं ही व्याकुल हो गये। एक मानव ने अपनी रक्षा के लिये एक देवता को प्रसन्न किया जिसने उसको रक्षा की युक्ति बता दी। इस प्रकार अन्त में मानव की विजय हुई।

(ii) सुमेरियनों के देवालय एवम् पुरोहित—सुमेरियनों के प्रत्येक नगर में एक बहुत बड़ा देवालय होता था जिसे जिगुरत (Ziggurat) कहा जाता था यह मन्दिर बहुत ऊँचे होते थे। देवालय सभी प्रकार के अनाज और धन-धान्य से पूर्ण रहते थे। विल ड्यूरण्ट ने लिखा है कि अधिकतर वस्तुएँ ऋणों द्वारा समर्पित की जाती थीं।

इस मन्दिरों में एक पुरोहित होता था और मन्दिरों के पुरोहितों में से एक को ही मुख्य पुरोहित या (पटेसी) चुन लिया जाता था। इस प्रकार सुमेर में धर्म और राजनीति साथ-साथ चलते थे। हेज और मून ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है—

Religion and Politics went hand in hand,

—Hayes and Moon.

तीन अन्य प्रकार के पुरोहित भी मन्दिरों में होते थे—(1) गाने वाले (2) जादू जानने वाले (3) भविष्य वाणी करने वाले। इन पुरोहितों का समाज पर बहुत अधिक प्रभाव रहता था।

दर्शन

सुमेरियन दर्शन को दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) राजनीतिक दर्शन

(2) नैतिक दर्शन

(1) राजनीतिक दर्शन—सुमेरियन के राजनैतिक दर्शन के सिद्धान्त धर्म पर आधारित थे क्योंकि सुमेरियन सभ्यता में धर्म को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। सुमेरियन इस बात का विश्वास करते थे कि मानव का कल्याण देवताओं के हाथ में ही है यही कारण है कि सुमेर के सुमेर के नगर-राज्यों की जो स्थापना का गई थी उनका उद्देश्य मानव का कल्याण करना नहीं था बल्कि देवता के प्रतिनिधियों का कल्याण करना था। आज के युग में राज्य की जो परिभाषा की जाती है, सुमेरिया के निवासियों के अनुसार राज्य की परिभाषा उससे भिन्न थी। आज की परिभाषा

के अनुसार राज्य वह सार्वभौम सत्ता से युक्त और वाह्य नियन्त्रण से युक्त मनुष्यों का समुदाय है जिसकी सीमाएँ निश्चित हों और जो मनुष्यों के कल्याण के लिये हों।

सुमेरियन नगर राज्यों में राज्य का केन्द्र नगर ही होता था तथा नगर का केन्द्र नगर देवता का मन्दिर माना जाता था। यह भी विश्वास था कि नगर राज्य की बहुत बड़ी भूमि पर मन्दिरों का अधिकार होता था। देवता की जागीर का मैनेजर 'एनसी' कहलाता था। वास्तव में वह देवता का प्रतिनिधि होता था और यह भी विश्वास किया जाता था कि वह प्रत्येक कार्य देवता की आज्ञा लेकर करता है। किसी कार्य के लिए वह देवता की इच्छा तीन प्रकार से पूरी करता था—

(क) ज्योतिषि की सहायता से

(ख) पशु बलि देकर देवता को सन्तुष्ट करके

(ग) प्रत्यक्ष स्वप्न द्वारा

नगर-राज्य की यह कल्पना सुमेरिया के राजनीतिक जीवन के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। इससे आपस में एकता बनी रही। देवता के नाम पर बहुत से झगड़े बिना किसी दिक्कत के तय हो जाते थे।

कालान्तर में इस विचारधारा में परिवर्तन हुआ। यह विचारधारा तभी तक उपयोगी रही जब तक कि सुमेर में छोटे-छोटे नगर-राज्य रहे। तीन हजार ई० पू० के लगभग जब 'सारगोन' ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की तो सुमेर के लोगों की विचारधारा में परिवर्तन हुआ। नगर-राज्य की जगह राष्ट्र की स्थापना देवता की इच्छानुसार की गई। सम्राट को ईश्वर का प्रतिनिधि समझा जाता था और उसके प्रत्येक कार्य को उचित माना जाता था। यह व्यवस्था भी शासन की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध हुई।

(2) नैतिक दर्शन—सुमेर के निवासी दो सिद्धान्तों पर अटूट विश्वास रखते थे पहला यह कि व्यवस्थित समाज का अस्तित्व उच्चतर प्रभुशक्तियों के बिना सम्भव नहीं है—दूसरे यह कि प्रभुशक्तियां सदैव न्यायशील होती हैं इसलिए उनकी आज्ञा का पालन करना। सुमेरियन के मतानुसार व्यक्ति एक ऐसा बिन्दु है जिसके चहुँ ओर उसकी स्वतन्त्रता को सीमित करने वाली दैवीशक्तियों के वृत्त बने हुए हैं।

सुमेरियनों ने प्रभुशक्तियों का विभाजन निम्नलिखित दो भागों में किया था—

(I) मानवीय प्रभुशक्तियाँ तथा

(II) दैवी प्रभुशक्तियाँ।

(I) मानवीय प्रभुशक्तियाँ—मानवीय प्रभुशक्तियाँ वे प्रभुशक्तियाँ हैं जो मनुष्य अपने परिवार के माता-पिता से ग्रहण करता है। इसके अतिरिक्त अनेक शक्तियाँ ऐसी हैं जिनका पालन करना मानवों का प्रमुख कर्त्तव्य माना जाता है। मानव के प्रत्येक कार्य का निरीक्षण समाज एवं राज्य द्वारा किया जाता है अतः समाज और राज्य और दोनों ही मानव से विनयशील एवं पूर्णरूपेण अनुशासन में रहने की आशा रखते हैं। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मनुष्य राजनैतिक एवं

सामाजिक दोनों ही प्रकार के बन्धनों से अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी प्रकार बंधा हुआ है।

(II) दैवी प्रभुशक्तियाँ—दैवी-प्रभुशक्तियों से मनुष्य का घनिष्ठ सम्बन्ध होना है यही कारण है कि तृतीय सहस्त्राब्द ई० पू० मनुष्य अपने को वरिष्ठ देवताओं से अपने को पूर्ण-रूपेण सम्बन्धित मानता था। संकट के समय वह अपने व्यक्तिगत देवता के माध्यम से वरिष्ठ देवताओं से अपने संकट निवारण हेतु प्रार्थना करता था।

मनुष्य देवता का दास है और सफलता प्राप्त करना उसके हाथ में नहीं है ऐसा सुमेरियन का विश्वास था। उनका कहना था कि जो व्यक्ति देवता की पूजा करते हैं वे स्वास्थ्य, पुत्र एवं धन आदि की प्राप्ति करते हैं। मनुष्य को, जीवन में सम्मान भी देवता की इच्छा से मिलता है। दुःख और सुख की प्राप्ति भी देवता की इच्छानुसार होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं सुमेर का धर्म और दर्शन मानव की भौतिक उन्नति के लिए था। वे मानव की आध्यात्मिक उन्नति के लिए इतने चिन्तित नहीं थे जितने कि भौतिक उन्नति के लिये।

लिपि एवं शिक्षा

(1) लिपि—हेज तथा मून का मत है कि सुमेरियन लेखन-कला उतनी ही प्राचीन है जितनी कि मिस्र की लेखन कला। आरम्भ में सुमेरियन लिपि में केवल चित्र ही होते थे परन्तु कालान्तर में इन चित्रों के बजाय अक्षरों का प्रयोग किया जाने लगा। सुमेरियन लिपि में लगभग 550 वर्ण थे और प्रत्येक लेखक को कम से कम 300 वर्णों का ज्ञान होना आवश्यक था। यही कारण है कि सुमेर में पेशेवर लिपिक होते थे।

आरम्भ में सुमेर के निवासी पत्थरों पर लिखते थे परन्तु पत्थरों की कमी होने पर उन्होंने मिट्टी की पट्टियों पर लिखना प्रारम्भ किया। पट्टियों पर वे नरकुल या सेठे की कमल से लिखते थे। प्रारम्भ में वे हल्के चिह्नों की लिखावट का प्रयोग करते थे परन्तु बाद में उन्होंने गहरी खुदाई की लिपि को अपनाया। गीली मिट्टी की पाटी पर लिखने के बाद उस पर सूखी मिट्टी का चूर्ण बिखेर दिया जाता था और फिर उसे मिट्टी के बने हुए लिफाफों में रख दिया जाता था जिन पर बीच में चूर्ण डाल देने के फलस्वरूप पत्र के चिपकने की सम्भावना रहती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सुमेरियनों ने लेखन कला में बहुत अधिक उन्नति की थी। जैसा कि हमने पहले ही उल्लेख किया है कि प्रारम्भ में वे चित्रात्मक या प्रतीकात्मक लिपि का प्रयोग करते थे। सुमेर के प्राचीन अभिलेखों में गधे का चित्र व्यापक मात्रा में देखने को मिलता है जिससे स्पष्ट है कि उस युग में गधे का उपयोग बहुत अधिक होता था। यह भी सम्भव है कि गधे का चित्र मूर्ख व्यक्ति की उपमा देने के लिए बनाया जाता हो।

चित्रात्मक लिपि के द्वारा बहुत सी वस्तुओं की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं थी। फलस्वरूप चित्रों के साथ ही संकेतों का प्रयोग भी प्रारम्भ हो गया। कालान्तर में संकेत और चित्र कम होने लगे और वर्णों का प्रयोग होने लगा परन्तु यह वर्ण माला

आधुनिक युग की तरह विशुद्ध नहीं थी। वास्तव में वह शब्दांश-चित्रों का ही थोड़ा सा परिवर्तित रूप थी। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि सुमेर निवासियों की लिपि शब्दांश—चित्रों तक ही सीमित रही वे उन्हें सरल करके व्यंजनों आदि का आविष्कार नहीं कर सके।

सुमेर के निवासी अंकों को भी लिखना जानते थे। 10 के लिए वे लम्बा रूपी नरकट वृक्ष का प्रयोग करते थे वे दाहिनी ओर से बाईं ओर ही लिखते थे। विल ड्यूरांट ने लिखा है—

"Sumerian writing reads from right to left, the Babylonians were, so far as we know, the first people to write from left to right."

—Will Durrant.

सुमेर की लिपि का विशेष महत्व है। सुमेरियन लिपि पश्चिमी एशिया की प्राचीनतम ज्ञात लिपि है। असीरियनों और कैल्डियनों ने भी इस इस लिपि में ही अपने लेखों को उत्कीर्ण कराया। कालांतर में हित्तियों में भी अपनी राष्ट्रीय चित्राक्षर लिपि के साथ इस लिपि का प्रयोग किया। दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० में पश्चिमी एशिया और मिस्र के राज्यों द्वारा इस लिपि का प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय लिपि के रूप में किया गया। सुमेरियन ज्ञान और साहित्य का प्रसार इसी लिपि में हुआ। इसलिये इस लिपि का विशेष महत्व है।

(2) शिक्षा—सुमेर में शिक्षा की भी व्यवस्था की गई थी। प्रारम्भ में सुमेरियन शिक्षा देवालयों (देव मन्दिरों) में दी जाती थी और शिक्षण कार्य देवालय के पुरोहित करते थे किन्तु 3000 ई० पू० के लगभग सुमेरियन नगरों में कीलाक्षर लिपि की शिक्षा देने वाली पाठशालायें अस्तित्व में आयीं और इस सहस्राब्दी के अन्तिम पद के बहुत से ऐसे अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनका प्रयोग पाठ्य-पुस्तकों के रूप में किया जाता होगा। इनमें से कुछ अभिलेख पाठशालाओं के पाठ्यक्रम और प्रशिक्षण-विधि के सम्बन्ध में भी प्रकाश डालते हैं। दूसरी सहस्राब्दी ई० पू० के अभिलेखों से सुमेरियन शिक्षा के उद्देश्यों पर भी प्रकाश पड़ता है। इनसे पता चलता है कि सुमेरियन पाठशालाओं का उद्देश्य राज्य कार्यालयों, मन्दिरों और व्यापारियों आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु लिपिकों को प्रशिक्षण देना था। इस उद्देश्य के बावजूद कालान्तर में ये पाठशालायें विद्या और संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बन गईं और सुमेर के विद्वान ज्ञान-विज्ञान को समुन्नत बनाने के हेतु प्रशिक्षण-कार्य भी करने लगे।

सुमेर की पाठशालाओं में अधिकतर धनवान व्यक्ति ही शिक्षा ग्रहण करते थे। निर्धन व्यक्ति पाठशाला का व्यय नहीं उठा पाते थे। स्त्रियों को शिक्षा के लिये प्रोत्साहित नहीं किया जाता था। पाठशाला के प्रधान अध्यापक को 'उम्मिया' के नाम से पुकारा जाता था। वह अन्य अध्यापकों की सहायता से शिक्षा प्रदान करता था।

साहित्य

सुमेर में धार्मिक और लौकिक दोनों प्रकार का साहित्य लिखा गया परन्तु साहित्य का अधिकतर भाग धार्मिक और पौराणिक आख्यानों से युक्त है। इन आख्यानों

में 'इनन्ना का पाताल अवतरण', 'एनेलिल, निनलिल तथा चन्द्रमा की उत्पत्ति', एनकी की विश्व व्यवस्था' आदि मुख्य हैं। इस धार्मिक साहित्य में कुछ वीरों के जीवन से सम्बन्धित आख्यान भी मिलते हैं एन्मरकर, लूगलबन्द और उसका पुत्र गिल्गामेश प्रसिद्ध वीर माने जाते थे। इनके जीवन के आख्यान भी मिलते हैं जिसमें गिल्गामेश विषयक आख्यान बहुत प्रसिद्ध है जिसका बाद में बेबिलोनियन रूपान्तर भी हुआ। जलप्रलय की कथा भी प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि यहूदी बाइबिल पर सुमेरियन आख्यानों का प्रभाव है।

लौकिक साहित्य एवं काव्य के क्षेत्र में सुमेरियनों ने कोई विशेष प्रगति नहीं की थी। इस युग के लोग इतिहास से अपरिचित थे और उनका लौकिक काव्य भी नहीं मिलता। कुछ पूजा गीत अवश्य मिलते हैं और दो प्रेम गीत प्राप्त हुए हैं। इस युग के साहित्यकार विरोधी तत्वों पर वाद-विवाद करके उनके गुणों व अवगुणों को प्रकाश में लाते थे। जब रात बहुत बढ़ जाती थी तो कोई देवता आकर दोनों को उसका महत्व समझाता था। 'अनन्ना देवी' तथा 'गड़रिया और कृषक' नामक आख्यान प्रसिद्ध हैं।

सुमेर में मुहावरों और कहावतों का प्रयोग बहुत अधिक होता था। अनेक उद्धरणों से विदित होता है कि सुमेरियन मुहावरों और कहावतों का इतिहास यहूदी बाइबिल की 'बुक आफ प्रोवर्ब्स' के मुहावरों से भी प्राचीन हैं। उनके मुहावरे और कहावतें कुछ अच्छी होती थीं। मेहनत न करने वाले आदमी के लिए एक मुहावरा प्रयुक्त होता था—'क्या कोई बिना खाये मोटा हो सकता है।' एक अन्य मुहावरा था—'दोस्ती एक दिन का, रुधिर सम्बन्ध जन्म भर का।' जिसके लिए अंग्रेजी में कहा है—"Blood is thicker than water."

विज्ञान

सुमेर के लोगों का मुख्य आधार कृषि-कर्म था अत: प्रत्येक पिता अपने पुत्र को पौधों की रक्षा करने आदि का विज्ञान भली भांति समझाता था। वह उन्हें किस ऋतु में कौन-सी फसल बोनी चाहिए आदि बातें बतलाता था। ज्योतिष और ज्यामिति की आवश्यकता भी कृषि-कर्म के लिए पड़ती थी। ऋतुओं के भली प्रकार ज्ञान के बिना कृषकों का कार्य नहीं चल सकता था। सुमेर के चान्द्र वर्ष में 360 दिन होते थे। चान्द्र और शौर्य वर्षों में सामंजस्य लाने के लिये आगामी वर्ष में एक माह जोड़ दिया जाता था। वर्ष का नामकरण उस वर्ष की सबसे प्रमुख घटना के आधार पर किया जाता था।

सुमेरियन कृषि के अतिरिक्त व्यापार भी करते थे। इसमें अंकगणित की भी आवश्यकता होती थी। उनकी गणना-प्रणाली षष्ठिक और दशमलव प्रणालियों से मिली हुई थी। इकाई, दहाई का प्रयोग आधुनिक युग की ही भांति होता था। परन्तु यह गणना 60 तक होती थी। आधुनिक सैकड़ा उस युग का 60 था। अगर उन्हें 600 कहना होता तो वह दस 60 कहते थे। इनकी भार इकाई 'मीना' थी जो 60 शैक्ल के बराबर थी। एक टैलेण्ट में 60 मीना होते थे।

चिकित्सा-शास्त्र—सुमेरियन ने चिकित्साशास्त्र में विशेष उन्नति नहीं की अधिकतर जादू टोने द्वारा ही रोगों का निदान किया जाता था। परन्तु वैद्यों का एक

वर्ग स्थापित हो चुका था जिन्होंने चिकित्सा शास्त्र को वैज्ञानिक रूप देने का प्रयास किया था। इन वैद्यों में 'लुलु' का नाम बहुत अधिक प्रसिद्ध है जो ईसा से लगभग 2700 वर्ष पूर्व हुआ था। 3000 ई० पू० का एक शिलालेख मिला है जिसमें इस युग में प्रचलित वैद्यक के नुस्खे मिले हैं।

कला

कला के क्षेत्र में सुमेरियनों की विशेष देन है। वास्तु-कला, स्थापत्य कला, मुद्रा निर्माण कला आदि विभिन्न प्रकार की कलाओं के क्षेत्र में सुमेर के निवासियों ने कासी उन्नति की थी परन्तु इनकी कला की तुलना मिस्र और चीन की कला से नहीं की जा सकती। क्योंकि सुमेरियन की वास्तु कला निम्न थी। निम्न होने का कारण सम्भवतः यह रहा होगा कि पत्थर के अभाव के कारण उनकी इमारतें ईंटों से बनायीं जाती होंगी और फलस्वरूप वास्तु कला की उन्नति अन्य स्थानों की अपेक्षा कम हुई।

वास्तु कला—इन लोगों की वास्तु कला, दो रूपों में मिलती है—

(क) राजप्रासादों एवं अन्य भवनों के रूप में।

(ख) मन्दिरों के रूप में।

(क) राज-प्रासाद एव अन्य भवन—भवन-निर्माण कला में सुमेर के निवासी बहुत अधिक चतुर नहीं थे। इसका मुख्य कारण पत्थरों का अभाव था। पहले तो सुमेरवासियों के मकान खजूर के पेड़ की तख्तियों के बने होते थे परन्तु कालान्तर में वे धूप में सुखायी हुयी ईंट का प्रयोग करते थे। सामन्तों के मकानों में एक विशाल हाल होता था जिससे होकर अन्य कक्षों में जाने का प्रबन्ध रहता था। आगे चलकर इस कक्ष के स्थान पर खुला आंगन बनने लगा था। यह मकान मिट्टी के टीलों पर बनाये जाते थे। मकानों में वातायन बहुत कम होते थे, दीवालों पर प्लास्टर होता था।

सुमेर के भवनों में स्तम्भों और मेहराबों का प्रयोग अधिक होता था। निप्पुर की खुदाई में 3000 ई० पू० की एक मेहराब प्राप्त हुई है। उर के राज-समाज में जो मेहराब प्रयुक्त है वह और अधिक पुरानी प्रतीत होती है।

सुमेर के भवन एक आधार योजना रखकर बनाये जाते थे। आधुनिक भवनों की ही तरह इनमें सोने, खाने और अतिथि-सत्कार के लिए अलग-अलग कक्ष होते थे। नालियाँ भी पक्की और सुविधाजनक होती थीं।

(ख) मन्दिर एवं जिगुरत (Ziggurat)—जैसा पहले ही बताया जा चुका है कि सुमेर-सभ्यता के केन्द्र नगर थे। नगर के केन्द्र मन्दिर होते थे। सुमेर के मन्दिर काफी बड़े होते थे। इनमें भाण्डार-गृह और अन्य स्थान भी होते थे। मन्दिर का सबसे महत्वपूर्ण भवन जिगुरत होता था। जिगुरत का अर्थ होता है—'स्वर्ग का पर्वत'। ऐसी विश्वास किया जाता है कि सुमेर के निवासियों ने अपने देवताओं के लिए पर्वताकार भवनों का निर्माण किया था और उनको वे जिगुरत के नाम से पुकारते थे। जिगुरत की चार या सात मंजिल होती थीं। नीचे की मंजिल सबसे लम्बी होती थी और ऊपर की मंजिलें क्रम से छोटी होती थीं। यह जिगुरत के

पिरामिड की भाँति गगन-चुम्बी होती थी। इसकी चोटी पर देवता का स्थान होता था। उर नाम्मु का बनवाया हुआ जिगुरत बहुत प्रसिद्ध है। यह नीचे की ओर लगभग 129 फुट लम्बा तथा 130 फुट चौड़ा था। जिगुरत के अन्दर पुरोहित और पुजारियों के रहने की भी व्यवस्था होती थी। सुमेर के निवासी जो ऊपर चढ़ने में असमर्थ होते थे और नीचे ही पूजन कर लेते थे। मन्दिर के बाहर कई वेदियाँ होती थीं। यहीं पर बलि दी जाती थी।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि जिगुरत की सात मंजिलें सात ग्रहों की होती थीं। सबसे नीचे की मंजिल 'शनि' की होती थी जिसका रंग काला होता था। दूसरी नारंगी रंग की मंजिल 'वृहस्पति' की, तीसरी लाल रंग की मंजिल 'मंगल' की और चौथी मंजिल 'सूर्य' की होती थी। सूर्य की मंजिल पर सोने की चादर चढ़ी रहती थी। पीले ईंटो से बनी पांचवीं मंजिल 'शुक्र' की और नीले रंग से पुती छठी मंजिल 'बुध' की होती थी। चारो ओर चाँदी से मढ़ी हुई सांतवीं मंजिल चन्द्रमा' की मानी जाती थी। इस प्रकार वह जिगुरत रंग विरंगा होता था। यह सोने, चाँदी, हीरे, जवाहरातों से भरा रहता था। ऊपर की मंजिल में सबसे अधिक बहु-मूल्य रत्न होते थे। ऊपर की मंजिल के बाहर भी बलि के लिये वेदियाँ बनी होती थीं। कुछ जिगुरतों में समतल छज्जे होते थे जहाँ हरियाली रहती थी। देवताओं का निवास सबसे ऊपर की मंजिल में खुले प्रांगण में और उसके पीछे माना जाता था। जिगुरत के पास ही देवी मन्दिर होता था जिसे 'गिग-परकु' कहते थे।

इतिहासकारों का मत है कि उर नाम्मु का जिगुरत एक आश्चर्यजनक वस्तु है। यह जिगुरत बहुत कुछ भारतीय द्रविड़ 'विमान' से मिलते-जुलते होते थे। यद्यपि अपनी भव्यता के कारण इन जिगुरतों का विशेष महत्व है परन्तु इनमें उस कलात्मकता के दर्शन नहीं होते जो मिस्र के पिरामिडों में पाई जाती है।

स्थापत्य कला—सुमेरियनों की स्थापत्य कला के प्राचीनतम रूप के दर्शन उस प्रथम राजवंश की समाधियों के रूप में होते हैं। एक स्थल पर वृषभ की मूर्ति और दूसरे स्थल पर सिंहमुखी चील की मूर्ति इनकी स्थापत्य कला का निश्चित रूप हमारे सम्मुख रखती है। पत्थर पर खींचे गए एक चित्र में दूध-उद्योग पर प्रकाश डाला गया है। स्थापत्य कला का सर्वश्रेष्ठ नमूना 'उर की पताका' है। इसमें उर को शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके लौटते हुए दिखाया गया है। अन्य चित्र भी चित्रित हैं जिनसे तत्कालीन सम्राटों के जीवन पर प्रकाश पड़ता है।

इयन्नातुम का 'गृध्र-पाषाण' तथा 'नरामसिन-पाषाण' भी इस युग की कला के सुन्दर नमूने हैं। प्रथम में 'इयन्नातुम' को सैनिकों का नेतृत्व करते हुए दिखाया गया है। वह गधों पर रथ पर सवार है। साथ ही पाषाण के एक भाग में 'निन्गिशु' देवता चित्रित हैं जो लगश का राजचिन्ह धारण किए हुये हैं। इस पाषाण का नाम 'गृध-पाषाण' इसलिये पड़ा कि इसमें गृधों को शत्रुओं का मांस खाते हुए भी चित्रित किया गया है। 'नरामसिन पाषाण' में नरामसिन की लुल्लुबी नामक पर्वतीय प्रदेश के राजा सतुनी पर विजय का चित्रण किया गया है। इस पाषाण में मनोभावों का चित्रण बड़ी सजीवता से किया गया है।

मुद्रा निर्माण कला—पत्थरों का तराश कर मुद्राएँ बनाने में सुमेर के निवासी बहुत पटु थे। आधुनिक स्टाम्प प्रणाली पर सुमेर की मुद्रा प्रणाली की छाप है। ये मुद्राएँ वर्गाकार, गोल एवं अण्डाकार होती थीं कुछ मुद्राओं पर पौराणिक आख्यान भी चित्रित किये जाते थे। इन मुद्राओं का वही महत्व था जो आजकल 'ब्लाटिंग रॉलरें का होता है। व्यापारी इन्हें आधुनिक सीलों की भाँति प्रयुक्त करते थे।

धातु कला—उस युग की स्वर्णकारी की कला के भी दर्शन होते हैं। एक समाधि में एक राजकुमार के सिर पर सोने का बना हुआ एक सुन्दर मुकुट है। कमरे में सोने की तलवार और साथ ही उसका कोष है। लगश में प्राप्त चाँदी के बर्तन पर बहुत सुन्दर नक्काशी की हुई। इस पर एक सिंहमुखी चील बनी है। चील अपने दो पंजों पर दो सिंहों को और अपने पंजों में एक-एक जंगली बकरे को पकड़े हुए हैं। विद्वानों का मत है कि यह लगश का राजचिह्न था।

यद्यपि यह ठीक है कि सुमेर में कला के कुछ उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं परन्तु सुमेर की कला का उतना महत्व नहीं है जितना कि सुमेरियन विचारधारा का।

सांस्कृतिक उन्नति में सुमेरियनों का योगदान और सांस्कृतिक इतिहास में उनका स्थान—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में सुमेर की सभ्यता का विशिष्ट स्थान है। पश्चिमी एशिया के इतिहास की दृष्टि से तो सुमेरियनों को सभ्यता का जनक कहा जाता है। ज्यों-ज्यों सुमेर की सभ्यता के विषय में जानकारी प्राप्त होती जा रही है यह स्पष्ट होता जा रहा है कि जिस सफलता का श्रेय अभी तक बेबीलोनियनों, असीरियनों और यहूदी जातियों को दिया जाता था, उसका वास्तविक श्रेय सुमेरियनों को दिया जाना चाहिए। सुमेरियनों के विषय में वूली लिखता है—"हज़रत ईसा की दस आज्ञाओं की जड़ में सुमेरी आज्ञाएँ ही हैं। दशों आज्ञाएँ ज्यों की त्यों सुमेरी ग्रंथों से ली गई हैं। सुमेरियनों से ही यहूदियों ने समाज की व्यवस्था का नियम और कानून बनाना सीखा और यहूदियों से आजकल का सारा ईसाई संसार सक्रिय रूप से नहीं तो कम से कम सिद्धान्त के तौर पर उसी को अपना आदर्श मानता है।"

आगे चलकर वूली लिखता है—"वह काल बीत चुका जब समझा जाता था कि यूनान ने संसार को ज्ञान सिखाया। इतिहास की खोजों ने हमें बताया कि किस तरह यूनान के जिज्ञासु हृदय ने लोडिया, खत्तियों से, फिनीशिया से, क्रीट से, बाबुल से और मिस्र से अपनी ज्ञान-पिपासा को बुझाया। लेकिन उस ज्ञान की जड़ें कहीं अधिक गहरी जाती हैं और इन सभ्यताओं के पीछे हमें सुमेर का छिपा हुआ हाथ दिखाई देता है।"

एक और इतिहासकार 'बेरास्तु', जो कि तीसरी या चौथी सदी ई० पू० में हुआ है, लिखता है—"हजारों वर्ष हुए ईरान की खाड़ी से एक अजीब जीवों का झुण्ड निकला जिनके सिर आदमियों के से और धड़ मछलियों के से थे। वे सुमेर के नगरों में आकर बस गए। उन्होंने खेती करना, धातु का प्रयोग और लिखने की कला का आविष्कार किया। एक शब्द में मानव-जाति के उन्नति की सारी बातें इस झुण्ड

के नेता 'ओग्नि' से ही दुनिया ने सीखी और उस समय के पश्चात् से फिर संसार में कोई नया आविष्कार नहीं हुआ।"

[विशम्भर पाण्डेय द्वारा लिखित विश्व का सांस्कृतिक इतिहास (मेसोपामिया) से उद्धृत]

सुमेर के निवासियों ने दलदलों को सुखाकर प्राचीन नगर बसाये। उन्होंने कीलाक्षर लिपि का आविष्कार किया जिसको आगे चलकर हित्तियों ने अपनाया और पश्चिमी एशिया और मिस्र के राज्यों ने अन्तर्राष्ट्रीय लिपि के रूप में प्रयुक्त किया। उन्होंने 'गिल्गामेश' जैसे वीरों की कथाओं और 'इनन्ना' का पाताल में अवतरण आदि धार्मिक आख्यानों को जन्म देकर साहित्य सृजन की परम्परा आरम्भ की तथा बौद्धिक प्रगति के हेतु पाठशालाओं एवं पुस्तकालयों की स्थापना की। उन्होंने कुलीन तन्त्रीय संस्थाओं की स्थापना के साथ ही विशाल साम्राज्य की स्थापना करके भावी विजेताओं के सम्मुख एक आदर्श रखा। व्यापार में अनुबन्ध-पत्रों का उपयोग कर तथा करों में सुधार कर उन्होंने भावी पीढ़ियों के लिए एक नया मार्ग प्रदर्शित किया।

विधि-संहिताओं की रचना सुमेरियनों ने पहली बार की और हम्बूराबी की विधि-संहिता सुमेरियनों की विधि-संहिता का रूपांतर-मात्र प्रतीत होती है। लिपि के विकास में सुमेरियनों का महान योगदान है।

कला के क्षेत्र में भी सुमेरियनों ने नवीन प्रयोग किये। विशाल जिगुरतों और महलों का निर्माण, स्तम्भों और मेहराबों का प्रयोग और कलात्मक मुद्राओं एवं मनोहर आभूषणों का निर्माण उनकी सौन्दर्य भावना के स्पष्ट प्रमाण हैं और आगे चलकर विभिन्न जातियों ने उनका अनुकरण किया।

इससे स्पष्ट है कि विश्व की विभिन्न सभ्यतायें सुमेर की सभ्यता की अत्यधिक ऋणी हैं और एक विद्वान का कथन है कि मेसोपोटामिया की सभ्यता किसी अन्य जाति की अपेक्षा सुमेरियन जाति की अधिक ऋणी है, पूर्णतया सत्य है।

सारांश

'मेसोपोटामिया' में चार सभ्यताओं का विकास हुआ—सुमेरियन, बेबिलोनियन, असीरियन, केल्डियन। केल्डियन के खाल्दी सभ्यता को बेबिलोनियन सभ्यता के अन्तर्गत ही रखा जाता है।

सुमेरियन सभ्यता का आरम्भ लगभग 3500 वर्ष पूर्व हुआ। सुमेर निवासी किस जाति के थे इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। सुमेर का राजनीतिक इतिहास विधिवत् 3200 ई० पू० से प्राप्त होता है। यहाँ के सम्राटों में सारगोन और नरामसिन का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त गुटियम के राकुल और उरा के तृतीय राजवंश का नाम भी उल्लेखनीय है। सुमेर का पतन 21वीं शताब्दी ई० पू० में हुआ।

सुमेर में नगर-राज्यों की व्यवस्था थी। युद्ध का नेतृत्व पटैसी करते थे। न्याय के लिए अधिकतर पुरोहित वर्ग की ही नियुक्ति की जाती थी। न्याय व्यवस्था

बहुत सस्ती और उन्नत थी। दण्ड के लिये 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' सिद्धान्त को अपनाया गया था।

समाज में तीन वर्ग थे—उच्च, मध्यम और निम्न। दासों की दशा अपेक्षाकृत अच्छी थी। स्त्री पर पति का अधिकार होता था परन्तु स्त्रियों का काफी सम्मान होता था। यहाँ के निवासी गेहूँ, जौ, खजूर, अंगूर खाते थे। मांस और मदिरा का प्रयोग भी करते थे। उनकी वेषभूषा आकर्षक थी। गहनों में कर्णफूल, अँगूठी, कड़ा आदि प्रसिद्ध थे। मृतक को दफनाने की प्रथा थी।

कृषि, पशुपालन, कताई-बुनाई एवं व्यापार इनकी आय के मुख्य साधन थे। कृषि और व्यापार को विशेष महत्व दिया गया था। व्यापार में कमीशन की प्रथा भी प्रचलित थी।

धार्मिक क्षेत्र में ये लोग बहुदेववादी और निराशावादी थे। इनमें बलि की प्रथा भी प्रचलित थी और कर्म-काण्ड का भी प्रचलन था। अन और एनेलिल प्रसिद्ध देवता थे। इनमें मादुक को भी मान्यता दी जाती थी। इन देवताओं के अलावा अन्य देवताओं की पूजा भी की जाती थी। धर्म का उद्देश्य भौतिक उन्नति और पापों से दूर रहना था।

इनके राजनीतिक दर्शन में नगर-राज्यों को मान्यता दी गई थी। इनका मत था कि मनुष्य स्वयं कुछ नहीं कर सकता, सब कुछ करना देवता के ही हाथ में है।

शिक्षा व्यावहारिक ढंग से होती थी। प्रधानाचार्य को 'उम्मियाँ' कहा जाता था। कीलाक्षर लिपि का प्रयोग किया जाता था। साहित्य के क्षेत्र में 'इनन्ना का पाताल वर्णन' कुछ वीर गीत और प्रलय आदि की कथाएँ प्रसिद्ध हैं। मुहावरों और कहावतों का प्रयोग बहुत होता था।

कृषि-विज्ञान से ये अभिरुचि रखते थे। ज्यामिति, ज्योतिष, और अंकगणित में भी इनकी रुचि थी। चिकित्सा-शास्त्र के क्षेत्र में विशेष उन्नति नहीं हुई थी। वैद्यों में 'लुलु' का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

वास्तुकला, स्थापत्य कला, मुद्रा निर्माण कला और स्वर्णकार कला के नमूने मिलते हैं। वास्तु-कला में जिगुरत का विशेष महत्व है। स्थापत्य कला के नमूने सिंहमुखी चील, 'गृध-पाषाण' और 'नरामसि-पाषाण' हैं।

सुमेर की प्राचीन संस्कृति ने अनेक संस्कृतियों को प्रभावित किया है। इनमें बेबीलोन की संस्कृति का नाम आता है। मेसोपोटामिया की सभ्यता अन्य जातियों की अपेक्षा सुमेर जाति की अधिक ऋणी है।

बेबिलोनिया की सभ्यता और संस्कृति
(Babylonian Civilization and Culture)

प्रश्न 1—प्रथम वेबिलोनियन साम्राज्य के संस्थापक के रूप में हम्मूराबी
कार्यों का उल्लेख कीजिए।

अथवा

प्रश्न 2—वेबिलोनियन की सभ्यता और संस्कृति पर एक संक्षिप्त नि
लिखिये।

अथवा

प्रश्न 3—विधान-निर्माता के रूप में हम्मूराबी का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा

प्रश्न 4—हम्मूराबी कौन था? उसकी विधि संहिता का विशेष
रखते हुए उसके कार्यों का वर्णन कीजिए।

अथवा

प्रश्न 5—नेबुचडरेज्जर के विषय में आप क्या जानते हैं?

जर्मन इतिहासवेत्ताओं के अनुसार वेबिलोनिया की सभ्यता का ठीक
मूल्यांकन अभी तक नहीं हो पाया है यद्यपि दक्षिणी-पश्चिमी एशिया और यूनान
सभ्यता में बहुत से तत्वों का समावेश इसी सभ्यता के आधार पर हुआ है। वि
रूप से गणित, दर्शन, इतिहास, औषधि-शास्त्र, खगोल-शास्त्र, कोष-निर्माण
व्याकरण का आधार वेबिलोनिया की सभ्यता है। हिब्रू बाइबिल पर भी वेबि
निया की सभ्यता का विशेष ऋण है। वेबिलोनिया वालों ने बहुत से कथानकों
रक्षा करके इस बाइबिल के लिये पृष्ठभूमि तैयार की थी। विद्या के क्षेत्र में
वेबिलोनिया ने कहावतों, कथाओं और महाकाव्यों को उचित रूप से विक
किया था।

वेबिलोनिया निवासियों के जातीय संगठन के बारे में कहा जाता है कि
सुमेर और अक्काद के राज्यों में युद्ध हो रहा था तब अरब की मूल स्वजाति
जनता की सहायता मिल रही थी और सुमेरियन जातियाँ शिन्नार में बस ज
कारण अधिक उन्नति न कर सकीं। सेमेटिक जातियों की इस बढ़ती हुई ब
सामने सुमेरियन जातियाँ अपनी शक्ति और विकास को खो बैठीं।

जिस वर्ग ने सुमेरियनवासियों को स्पष्ट रूप से हराया वह वर्ग
अमोरी, बेबिलोनिया, पश्चिमी सेमेटिक और केनानी का सम्मिलित रूप था
वर्ग बेबिलोनिया में पूर्वी मध्य-सागर के किनारे के देशों से आया था परन्तु व

में यह अरब के निवासी थे। केनान में बसकर इन्होंने अपना जंगली जीवन त्यागकर स्थायी जीवन आरम्भ कर दिया था। कुछ खोजों के परिशोधन से यह ज्ञात होता है कि केनान में ये जातियाँ लगभग ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व आई थीं और इन्होंने भूमध्य सागर के अर्द्ध-सभ्य जातियों को परास्त किया था। कालान्तर में इनके सम्बन्ध मिस्र और सुमेर जैसी उन्नतिशील संस्कृतियों से हो गये। बेबिलोनिया पर अधिकार करने के पूर्व ही इस जाति ने बेबिलोनियन संस्कृति को अपना लिया था। इसलिये दजला और फरात की घाटियों में जब यह जातियाँ आयीं तो वहाँ के निवासी इसके विषय में बहुत कुछ जान चुके थे। पश्चिमी सेमाटियों के आक्रमण के काल में सुमेरियन और अक्कादी नगरों की शक्ति का पतन हो चुका था, उर का तृतीय राजवंश समाप्त हो गया था और एलम ने दक्षिणी सुमेर को अपने अधीन कर लिया था। एशियन राज्य को छोड़कर, जो सुरक्षा में रत था, और कोई ऐसी शक्ति नहीं थी जो सेमेटिक जातियों की बाढ़ को रोक सकती। नवागन्तुक जातियों ने अक्काद के बहुत बड़े भाग को अपने अधीन कर लिया और फिर बेबिलोन में अपनी राजधानी स्थापित करके दक्षिणी क्षेत्रों को जीतने का प्रयत्न करने लगी।

बेबिलोन नगर का महत्व—प्रारम्भ में बेबिलोन की गणना एक प्रांतीय नगर राज्य के रूप में की जाती थी, किन्तु राजलक्ष्मी की कृपा और पश्चिमी सेमेटिक जाति की एमोराइट शाखा के प्रयत्नों द्वारा बेबिलोन उत्तरोत्तर शक्तिशाली होता गया और आक्रमणकारी जातियों ने इसे एक बड़े साम्राज्य को राजधानी घोषित किया जिसके कारण इस नगर और उसके देवता मर्दुक का प्रभाव धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र में बढ़ गया। मर्दुक और सुमेरियनों के महान देवता एनेलिल में एकत्व स्थापित हुआ और धीरे-धीरे बेल-मर्दुक की पूजा सारे पश्चिमी एशिया में होने लगी।

बैबिलोन का राज्यवंश

इस राज्यवंश का संस्थापक 'सुमु-अबुम' माना जाता है जिसका राज्यकाल ईसा से लगभग 2225 वर्ष पूर्व कहा जाता है। सुमु-अबुम के पश्चात् क्रमशः सुमुल इलु, जबुम, इमेरुम, अपिल-सिन तथा सिन-मुबाल्लित ने शासन किया। सभी शासक स्वतन्त्र थे और इन्होंने कूथा, निप्पुर, सिप्पर और किश आदि नगरों पर अधिकार करके बेबिलोनियन राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। प्रसिद्ध सम्राट 'सिन-मुबाल्लित' ने विकास का जो कार्य आरम्भ किया था उसकी पूर्ति 'हम्मूराबी' ने की।

सम्राट हम्मूराबी (2123 ई० पू०—2080 ई० पू०)

साम्राज्य विस्तार—हम्मूराबी को इस राजवंश का सबसे महान शासक माना जाता है। यह पश्चिमी सेमाइटों के प्रसिद्ध सिन-मुबाल्लित का पुत्र था। इसने 2123 ई० पू० से लेकर 2080 ई० पू० तक राज्य किया। इसके विषय में पर्सी साइक्स ने लिखा है—

"The greatest monarch of this dynasts way the Sixth Hammurabi the law-giver and Conqueror, who reigned from 2123 to 2080 B. C."

—Sir Percy Sykes.

हम्मूराबी एक महत्वाकांक्षी सम्राट था। जिस समय वह सिंहासनारूढ़ हुआ, उसके राज्य में सिप्पर से निप्पुर तक का प्रदेश अर्थात् लगभग सम्पूर्ण अक्काद था। हम्मूराबी की उन्नति में 2 बड़ी बाधाएँ थीं—एलम और ईसिन। उसके राज्यारोहण से पहले ही एलमी नरेश ने सुमेर पर अधिकार कर लिया था और हम्मुराबी के शासनकाल में एलमी नरेश का पुत्र रिमसिन अक्काद को जीतने का स्वप्न देख रहा था। ईसिन का राजवंश हम्मूराबी और रिमसिन दोनों की ही सत्ता को स्वीकार नहीं करता था। इन परिस्थितियों में सम्पूर्ण मेसोपोटामिया पर अधिकार करने के लिये उसे उपर्युक्त दो शक्तियों से लोहा लेना था।

हम्मूराबी के प्रथम अभियान की असफलता—सिंहासनारोहण के छः वर्ष बाद हम्मूराबी ने अपना सैनिक अभियान प्रारम्भ किया। सिंहासनारोहण के पश्चात् शायद हम्मूराबी ने अपना 6 वर्ष का समय सैन्य संगठन एवं आन्तरिक सुधारों में व्यतीत किया था। हम्मूराबी ने सबसे पहले एरेक और ईसिन को जीतने का प्रयत्न किया। लेकिन इसी बीच उसे एलम और लारसा से युद्ध करना पड़ा। इन युद्धों मे हम्मूराबी पराजित हुआ और रिमसिन ने निप्पुर और एरेक पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार बेबिलोनिया का मध्यपूर्वी और दक्षिण भाग एलम नरेश के हाथ में चला गया और फलस्वरूप बेबिलोनिया में दो शक्तियाँ शेष रह गयीं—दक्षिण में रिमसिन के नेतृत्व में एलमी राज्य और उत्तर में हम्मूराबी द्वारा प्रशासित बैबिलोन।

पराधीनता के बीस वर्ष—रिमसिन से मुँह की खाने के बाद हम्मूराबी ने लगभग 20 वर्ष तक अपने विरोधियों को परास्त करने का कोई भी प्रयास नहीं किया। कुछ विद्वानों का मत है कि इस बीच कुछ काल तक उसे एलम की सत्ता मानने के लिये विवश होना पड़ा था। इन विद्वानों ने यह धारणा एक यहूदी अनुश्रुति के आधार पर बनाई है।

दूसरा सफल विजय-अभियान—अपने शासनकाल के 30वें वर्ष हम्मूराबी ने अपने विरोधियों को कुचलने का प्रयास किया। इस बार वह अपने कार्य में सफल हुआ और उसने एलन को बुरी तरह से पराजित किया। उसने बारसा पर अधिकार किया और रिमसिन को नतमस्तक होने के लिये विवश किया। दक्षिण में सम्पूर्ण सुमेर पर अधिकार हो जाने के फलस्वरूप उसके लिये पश्चिम में सीरिया और पेलस्टाइन को जीतना सुगम हो गया। सम्राट हम्मूराबी की विधि-संहिता की प्रस्तावना में नगरों की जो सूची दी है उसके आधार पर उसके साम्राज्य विस्तार का अनुमान लगाया जा सकता है। इस विधि-संहिता में सबसे पहले निप्पुर और तत्पश्चात् प्राचीनतम नगर एरिडू का उल्लेख हुआ है। इसके बाद उसकी राजधानी बेबिलोन का विस्तृत वर्णन है। तत्पश्चात् मिप्पर, लारसा, एरेक, ईसिन, किश, लगश, कूथा, अक्काद, अशुर तथा निनिवेह आदि का वर्णन है। इससे यह स्पष्ट है कि हम्मूराबी ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी एवं सुमेर तो निश्चय ही उसके अधिकार में थे। हेज और मून ने उसके विषय में लिखा है :—

"Coming to the throne as King of the City State of Babylon,

he conquered all Akkad and Sumer and drove the Elamites back into their mountains."

—Hayes & Moon.

कृषि की उन्नति—हम्मूराबी ने खेती की उन्नति के लिये एक बहुत बड़ी नहर खुदवाई जिससे सुमेर और अक्काद के बीच की पृथ्वी हरी-भरी हो उठी। खेतों के लिये अच्छे बीजों का भी उसने प्रबन्ध किया। किसानों की दशा को सुधारने में उसने बड़ा योगदान दिया। राज्य की ओर से अनाज इकट्ठा करके उसने एक बड़ा खलिहान बनवाया। उसके प्रयत्न से दजला और फरात नदियों में बड़े-बड़े व्यापारी जहाज आने-जाने लगे जिससे गल्ला बाहर भेजा जाता था।

अन्य जन-कल्याण के कार्य—कृषि की उन्नति के साथ ही हम्मूराबी ने अन्य जन-कल्याण के कार्य भी किये :—

(1) उसने फारस की खाड़ी और कीश नगर के बीच में एक नहर खुदवाई जिससे कई नगर दजला नदी की बाढ़ से बच गये।

(2) फरात नदी के ऊपर एक पुल बनवाया गया ताकि बेबिलोन नगर का विकास नदी के दोनों ओर हो सके।

(3) प्रसिद्ध हम्मूराबी-नुखुश-निशि नामक नहर खुदवाकर उसने सुमेर और अक्काद के बड़े भाग को कृषि योग्य बनाया।

(4) इसने कई किले बनवाये और मर्दुक का विशाल मन्दिर बनवाया।

विद्वान विल ड्यूराण्ट ने भी लिखा है—"ईसा से दो हजार वर्ष पहले भी बैबिलोनिया उन समृद्धशाली नगरों में था जिनकी तुलना इतिहास में कोई नगर नहीं कर सकता।"

"Two thousand years before Christ, Babylonia was already one of the richest cities that history had yet known."

—Will Durrant.

हम्मूराबी की महत्ता : उसकी विधि-संहिता—सूसा नगरी की खुदाई में हम्मूरबी की विधान-संहिता एक गोल पत्थर पर खुदी हुई मिली है जो फ्राँस के लुवर संग्रहालय में आज भी सुरक्षित है। यह विधान संहिता 8 फुट लम्बे प्रस्तर स्तम्भ पर 3,600 पंक्तियों में उत्कीर्ण है। इस संहिता में 285 धाराएँ हैं जो वैज्ञानिक ढंग से 'श्रम', 'अपराध' 'परिवार' 'वाणिज्य तथा व्यापार' और व्यक्तिगत सम्पत्ति आदि अध्यायों में विभाजित हैं। संहिता स्तम्भ के अग्र भाग में सूर्य देवता को हम्मूराबी को संहिता देते हुये अंकित किया गया है साथ ही शुरू की पंक्तियों में देवताओं की स्तुति की गई है विधि-संहिता में दर्शाये गये नियम व कानून धर्म-निरपेक्ष हैं। सम्भवत: यह इतिहास की प्राचीनतम संहिता है क्योंकि वह अखंड रूप में मिल जाती है जबकि दुंगी की विधि-संहिता प्राचीनतर है और हम्मूराबी ने दुंगी की विधि-संहिता की बहुत सी बातों को अपनी संहिता में स्थान दिया है किन्तु दुंगी की विधि-संहिता जो उपलब्ध है वह खण्डित है। हम्मूराबी ने साम्राज्य विस्तार और निर्माणकारी कार्यों के फलस्वरूप उतना अधिक नहीं है जितना अधिक विधि-संहिता के फलस्वरूप है। हेज और मून ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है।—

"But Hammurabi is best known to us not for his wars,

nor for this Canal, nor his temples, but rather for his code of laws."
—Hayes and Moon.

इससे यह पता चलता है कि हम्मूराबी के न्याय सम्बन्धी विचार बहुत ऊँचे थे। इस विधि संहिता की भाषा सेमेटिक है। विधि संहिता में लिखा है कि दुराचारियों और शैतानों के विनाश के लिये, निर्बल की रक्षा के लिये, देश की जनता में जागृति उत्पन्न करने एवं जनता की भलाई के लिये मैंने विधान का परिवर्तन अनु और वेन नामक देवताओं के आदेश से किया है।

हम्मूराबी के समय में व्यभिचारियों को मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। भागे हुये दासों को शरण देने वाले को 25 शेकल चांदी जुर्माने में देनी होती थी। आगे चलकर इसके लिये भी प्राण-दण्ड की व्यवस्था की गई। उद्दण्ड गुलामों को बेचने के बजाय उनके नाक, कान काटने की सजा दी जाती थी। सारे देश में एक पत्नी या पति का रिवाज था। तलाक देने पर आधा मीना चाँदी जुर्माना होती थी। परित्याग किए जाने पर या पत्नी को अलग रखने पर शुद्ध चरित्र की स्त्री अपने पति से तलाक का समस्त धन ले लेती थी। बीमार या अपाहिज पत्नी को तलाक नहीं दिया जा सकता था। दुराचारी स्त्री को नदी में फेंक दिया जाता था। सम्पत्ति और उत्तराधिकार तथा लेन-देन के बारे में प्राचीन अधिकार जो सुमेरियन स्त्रियों को प्राप्त थे वह ज्यों के त्यों रहते थे। माँ-बेटे में अनुचित सम्बन्ध होने पर दोनों को जिन्दा जला दिया जाता था। आग लगाने वालों को, आग लगने पर चोरी करने वालों को, मारपीट में दूसरों को मार डालने वालों को, स्वतन्त्र स्त्री को मारपीट में गर्भपात होने पर तथा देवदासियों के मदिरालय में पकड़े जाने पर और यदि मकान गिर जाए तो कारीगर को मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। नीचे लिखे अपराधों पर भी मृत्यु-दण्ड दिया जाता था—

(1) महल या मन्दिर में चोरी करने वालों को।
(2) नाबालिग से लिखा-पढ़ी कराके उसका माल हड़पने वालों को।
(3) दासों को भागने में सहायता देने वालों को।
(4) दास को शरण देने पर।
(5) सेना में भर्ती होने से इन्कार करने पर।
(6) क्वांरी लड़की का कौमार्य भ्रष्ट करने पर।
(7) पिता की इच्छा के विरुद्ध लड़की को बहका कर भगा ले जाने वाले को।
(8) निश्चित मूल्य से अधिक मूल्य में मदिरा खरीदने पर।
(9) दाम के बदले जो लेने से इन्कार करने पर या अधिक मूल्य माँगने पर।
(10) यदि कोई स्त्री लड़ाई में बन्दी पति की अनुपस्थिति में उसकी सम्पत्ति का दुरुपयोग करती थी या व्यभिचार करने पर।
(11) मृत्यु के मुकदमे में झूठी गवाही देने पर।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित दण्ड विभिन्न अपराधों पर दिए जाते थे—

(i) जो पुत्र अपने पिता को मारते थे उनके हाथ काट दिये जाते थे। यदि कोई गाय बच्चे को दूध नहीं पिलाती थी और बच्चे की मृत्यु हो जाती थी तो गाय के स्तन काट दिए जाते थे।

(ii) किसी गाँव या नगर में डाका पड़ने पर जो धन का नुकसान होता था वह सब उस प्रान्त के गवर्नर या नगर के पटैसी को देना पड़ता था।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि उस युग में कठोर दण्ड की व्यवस्था थी और जैसे को तैसा सिद्धान्त को मान्यता प्राप्त थी। हेज और मून ने लिखा है—

"The penalties were harsh, and often based on the principle of an eye For example, if a man killed another man's daughter his own daughter must be put to death "

—Hayes & Moon.

न्याय-व्यवस्था के भी कुछ स्पष्ट नियम थे। मुकदमे में वादी को कभी-कभी राजधानी में आना पड़ता था। साधारणतया वकील पैरवी कर सकते थे। अदालतों में जजों की संख्या तीन या चार होती थी। बड़े-बूढ़े स्त्री, पुरुष मुखिया पंच नियुक्त किए जाते थे।

जो व्यक्ति लेन-देन के मामले में झूठ बोलते थे उन्हें पूरा हर्जाना देना पड़ता था। वस्तुओं के क्रय-विक्रय में लिखा-पढ़ी करना और गवाही कराना आवश्यक था अन्यथा खरीदार चोर समझा जाता था।

अदालतों के अधिकारों की सीमा निर्धारित थी। एक अदालत के अधिकारों पर दूसरी अदालत हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी।

नागरिकता के नियम—विधि संहिता में केवल न्याय सम्बन्धी नियम ही नहीं थे वरन् अन्य बातों का भी उल्लेख हुआ था जैसे नागरिकता का। इनकी चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है—

समस्त जनता (नागरिकों) तीन भागों में विभाजित की गई थी—

(1) अमेलु (प्रथम श्रेणी),
(2) मुशकिनु द्वितीय श्रेणी) एवं
(3) दास (तृतीय श्रेणी।

प्रथम श्रेणी में पुरोहित, सैनिक, धर्मगुरु और सरकारी पदाधिकारी होते थे।

दूसरी श्रेणी में किसान, मजदूर, अध्यापक, राज, दुकानदार और व्यापारी लिये जाते थे।

तीसरी श्रेणी में युद्धबन्दी दासों की सन्तानें और खरीदे हुए चाकर आते थे।

सिपाहियों की दो श्रेणियाँ होती थीं। इनमें प्रमुख जानिसार थे जो जो घमासान युद्ध करते थे। सिपाहियों को गुजारे के लिये या इनाम में धरती मिलती थी जो किसी प्रकार भी नहीं बेची जा सकती थी, न बन्धक की जा सकती थी और

न जब्त की जा सकती थीं। सिपाहियों को छोड़कर समस्त जनता से रक्षा-कर लिया जाता था। राजा स्वयं सेना का सेनाध्यक्ष होता था।

विवाह के नियम भी निर्धारित थे और ठेके की व्यवस्था भी की गई थी। यदि पत्नी पति को सन्तुष्ट न कर सके तो वह घर से लाई हुई सम्पत्ति के साथ वापस की जा सकती थी। विधि-संहिता में अनेक व्यापारिक ठेकों और ऋणों के लेन-देन का भी उल्लेख हुआ। 33⅓% व्याज की दर से अनाज के रूप में ऋण और 20% की दर से चाँदी के रूप में दिया जाता था। कृषि के नियम भी अत्यन्त स्पष्ट थे। नावों और दासों आदि के क्रय-विक्रय के सम्बन्ध में विधि संहिता में नियम दिये गये थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सम्राट हम्मूरावी की विधि-संहिता अपने ढंग की निराली थी। उसका महत्व नए कानूनों के निर्माण में नहीं वरन् प्राचीन कानूनों के संकलन में है। हम्मूरावी की विधि-संहिता परवर्ती युगों में केवल बेबिलोनिया में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण पश्चिमी एशिया में समाज को व्यवस्थित करने वाली शक्ति के रूप में पूज्य रही।

हम्मूराबी का मूल्यांकन - हम्मूरावी की गणना महान विजेताओं, प्रसिद्ध निर्माताओं और प्रख्यात विधि-निर्माताओं में की जाती है। वावुल की संस्कृति को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने वालों में हम्मूरावी का नाम सबसे ऊपर दिया जाता है। उसके काल में बेबिलोनिया ने बहुत अधिक उन्नति की। क्रिस्टोफर डाउन ने लिखा है—

"In all essentials Babylonia in the time of Hammurabi and even earlier had reached on pitch of material civilisation which has ever since been surpassed in Asia"

— Cristopher Down.

बेबिलोनिया को भौतिक उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचाने के लिये हम्मूरावी का महत्व केवल बेबिलोनिया के निवासियों के लिये रहा है परन्तु विधि-संहिता के निर्माता के रूप में उसका महत्व एशिया के विभिन्न देशों के निवासियों के लिये अत्यधिक है। पश्चिमी एशिया के परवर्ती शासकों के लिये हम्मूरावी एक आदर्श रहा और विधि-संहिता के निर्माण के फलस्वरूप उसकी गणना संसार के महानतम् विधि-निर्माताओं एवं संकलनकर्त्ताओं के रूप में की जाती है। एक विद्वान ने उसके विषय में ठीक ही लिखा है—

"हम्मूरावी के यदि अन्य कार्यों पर दृष्टिपात न करके केवल उसकी विधि संहिता को देखा जाय तो हम्मूरावी हमारे मस्तिष्क पर वह छाप छोड़ जाएगा जो मेसोपोटामिया की संस्कृति के निर्माता किसी अन्य शासक ने नहीं छोड़ी।"

डॉ० ईश्वरीप्रसाद का कथन है कि हम्मूराबी का उद्देश्य शक्तिशाली वर्ग के अत्याचारों से निर्बल वर्ग की रक्षा करना था। डॉ० प्रसाद ने हम्मूरावी की दण्ड संहिता, न्याय और शासन व्यवस्था के सम्बन्ध में लिखा है कि—"Hammurabies code combined the old and the new. It is premature in character a tooth for a tooth an eye for an eyo seems to have

been the recognised principle. Blood revenge was allowed. The punishment for murder was the death of the culprit or one of his relations. Revenge was the basis of his justice in the society. Ordeal was recognised as a method of ascertaining a man's guilt, Fines-were levied according to the position and means of the culprit. The old punishments which were cruel were abolished and more human treatment was recommended."

हम्मूराबी के उत्तराधिकारी और उनका पतन

हम्मूराबी महत्वाकांक्षी नरेश था परन्तु उसके मार्ग में दो बड़ी बाधाएँ थीं। उसके गद्दी पर बैठने के पहले ही एलमी के राजा ने सुमेर पर अधिकार कर लिया था। ईसिन का राजवंश हम्मूराबी की सत्ता को स्वीकार नहीं करता था। कालांतर में उसने दोनों को परास्त किया और बहुत बड़ा साम्राज्य बना लिया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र सम्सु-इलुन ने भी अपने पिता की भाँति विशाल साम्राज्य को सुसंगठित और कठोर नियन्त्रणों से नियन्त्रित रक्खा। परन्तु कसाइटों के आक्रमण आरम्भ हो गए थे। पहले तो हम्मूराबी के उत्तराधिकारी उनको दबाने में सफल रहे और उन्हें थोड़ी-थोड़ी संख्या में राज्य में बसने दिया परन्तु धीरे-धीरे वह संख्या में बढ़ गए और घोड़ों का उपयोग सेना में करने लगे जिसे बेबिलोनिया वाले नहीं जानते थे इस कारण हम्मूराबी के लगभग 150 वर्ष उपरान्त कसाइटों ने ही उसके वंश का अन्त 1925 ई० पू० के लगभग कर दिया।

हम्मूराबी के वंश का अन्तिम महान शासक अबि-एशु का पुत्र अम्मिदिताना था जिसने 2014 ई० पू० से लेकर 1977 ई० पू० तक राज्य किया। इस समय समुद्र तट के कई राज्य सिर उठा रहे थे। इसने उन उन राज्यों को बहुतांश में अपने वंश में किया।

उसके उपरान्त उसका पुत्र अम्मि-जदुग गद्दी पर बैठा और उसने लगभग 21 वर्ष शासन किया। वह अपने पिता की सफलताओं को स्थायी न बना सका और समुद्र तट के राज्यों ने पुन: अपने क्षेत्र वापस ले लिये।

राज्य का अन्तिम सम्राट शम्शु-दिताना था। उसने 1956 ई० पू० से लेकर 1925 ई० पू० तक राज्य किया। उसके समय में एशिया माइनर की हित्ती जाति ने सुमेर और अक्काद पर आक्रमण करके साम्राज्य का अन्त कर दिया। परन्तु हित्तियों ने स्थायी रूप से बेबिलोनिया में अपना शासन नहीं जमाया। लूट-पाट के उपरान्त कसाइटों को अवसर मिला और उन्होंने बेबिलोनिया पर अधिकार जमा लिया।

बर्बरतापूर्ण युग

कसाइटों का बाबुल पर शासन बड़ा बर्बरतापूर्ण था। इस युग में सर्वत्र-रक्त ही रक्त दिखलाई पड़ता था। कसाइट लड़ने-मरने वाली जाति थी। साहित्य, ज्ञान और विज्ञान से उनका सम्बन्ध नहीं था। उन्होंने 1925 ई० पू० में बाबुल पर विजय प्राप्त की और लगभग 600 वर्ष तक शासन किया। उनके शासनकाल में किसी प्रकार की साहित्यिक एवं वैज्ञानिक उन्नति का उल्लेख नहीं मिलता है।

असीरियन युग

कसाइटों के पतन के बाद का 400 वर्ष का इतिहास बड़ा अन्धकारमय है। इसके पश्चात् बेबिलोनिया पर असीरिया का साम्राज्य स्थापित हो गया। असीरिया के सम्राट सेन्नाचेरीब के शासन काल में बाबुल में विद्रोह हुआ परन्तु उसे बड़ी बर्बरतापूर्वक कुचल दिया गया। समस्त नगर उजड़ गया और बेबिलोन में खण्डहर ही खण्डहर दिखलाई पड़ने लगे। इस नगर का पुनरुद्धार ईस्सरहैड्डेन नामक असीरियन सम्राट ने कराया।

जिस समय असीरिया पर मिडिस जाति ने आक्रमण किया उस समय बेबिलोनिया के निवासियों को अवसर मिला और उन्होंने मिडिस जाति से मिलकर बेबिलोनिया को स्वाधीन करा लिया। इस प्रकार कई सौ वर्षों की परतन्त्रता के पश्चात् बेबिलोनिया एक स्वतन्त्र हुआ और नव-स्वतन्त्र बेबिलोनिया का प्रथम सम्राट नेबोपलेस्सर बना।

बेबिलोनिया का द्वितीय राजवंश (खाल्दी युग)

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि इस राजवश का प्रथम सम्राट नेबोपलेस्सर था। वह बड़ा पराक्रमी और साहसी था। उसके वंश को 'खाल्दी-वंश' और साम्राज्य को 'खाल्दी-साम्राज्य' के नाम से भी पुकारा जाता है।

खाल्दी युग का प्रसिद्ध सम्राट नेबुचडरेज्जर

खाल्दी युग में नेबुचडरेज्जर नाम का एक अत्यन्त वीर और प्रतापी सम्राट हुआ है। उसकी गणना छठी ई० पू० के एशिया के महानतम सम्राटों में की जाती है।

महान विजेता—नेबुचडरेज्जर नेबोपलस्सर का पुत्र था। अपने पिता की मृत्यु के बाद वह सिंहासनारूढ़ हुआ। सिंहासनारूढ़ होते ही उसने सीरिया और फिलिस्तीन को अपने राज्य में मिलाना चाहा। 587 ई० पू० में नेबुचडरेज्जर ने फिलिस्तीन पर आक्रमण किया और उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। उसने हिब्रुओं से भी लोहा लिया और हिब्रुओं के राजा की आंखें निकलवाकर उसे बन्दी बना लिया और उसे यूरेसलम से बाबुल ले आया। इस घटना के लगभग 10 वर्ष बाद यूरेसलम में विद्रोह हुआ। नेबुचडरेज्जर ने यूरेसलम को घेर लिया और यूरेसलम की सहायता के लिये मिस्र से आई हुई सेना को बड़ी बुरी तरह पराजित किया।

567 ई० पू० में उसने मिस्र पर आक्रमण किया और मिस्र के शासक को पराजित करके वहाँ बाबुली झण्डा फहरा दिया। नेबुचडरेज्जर के साम्राज्य में मिलने के बाद मिस्र एक लम्बे अर्से तक परतन्त्र रहा। शताब्दियों तक वह ईरानी, यूनानी, रोमी और अन्त में अरब साम्राज्य का प्रांत रहा। मिस्र पर अधिकार करने के बाद नेबुचडरेज्जर ने किसी अन्य पर आक्रमण उन्हीं किया।

कहा जाता है कि नेबुचडरेज्जर ने 605 ई० पू० से लेकर 562 ई० पू० अर्थात् 43 वर्ष तक राज्य किया और उसका साम्राज्य फारस की खाड़ी से रोम सागर तक फैल गया। नेबुचडरेज्जर के विषय में हेज और मून लिखते हैं—

"Nebuchadrazzar, who ruled from 605 to 562 B. C. launched Babylon on a career of aggressive war."

—Hayes and Moon.

नेबुचडरेज्जर एक महान् विजेता और महत्वाकांक्षी सम्राट था। उसने अनेक चट्टानों और पहाड़ियों पर अपने सन्देशों को लिखवा दिया था। बाबुल की खुदाई में उसके समय की जितनी भी ईंटें मिली हैं उन पर उसने लिखा दिया है, "बेबीलोन का सम्राट नेबुचडरेज्जर हूँ।"

नेबुचडरेज्जर की शासन-व्यवस्था—नेबुचडरेज्जर एक निरंकुश शासक था और उसने अपने को सहायता पहुँचाने के लिये प्रांतीय और नगरीय संसदों का निर्माण किया था। उसने सम्राट हम्मुराबी की विधि-संहिता के आधार पर अपने प्रशासन को चलाया। शनैः-शनैः दण्डों की कठोरता में कमी की गई और नेबुचडरेज्जर कठोर दण्ड-नीति का अनुसरण न कर सका।

नेबुचडरेज्जर ने जनता की उन्नति के लिये अनेक कार्य किए। उसने हम्मुराबी द्वारा खुदवाई हुई पुरानी नहर को फिर से खुदवाया और राज्य में नहरों का एक जाल सा बिछा दिया जिससे कि खेती की बहुत उन्नति हुई।

उसने प्रशासन की सुविधा और व्यापार के प्रोत्साहन के लिये समस्त देश में सड़कों का निर्माण करवाया। उसकी बनवाई सड़कें कहीं-कहीं पर 180 फीट तक चौड़ी थीं। व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिये उसने फारस की खाड़ी से लेकर थैप्सकेस तक के जलमार्ग की व्यवस्था की। उसके शासन-काल में बड़-बड़े जलपोत फरात नदी में इधर-उधर घूमते थे।

नेबुचडरेज्जर का धर्म—नेबुचडरेज्जर जो युद्ध में अत्यधिक निर्दयी और महत्वाकांक्षी प्रतीत होता था, अत्यन्त धार्मिक व्यक्ति था। वह सभी धर्मों का आदर करता था। उसने अनेक स्थानों पर प्राचीन देवताओं की मूर्तियाँ खड़ी करवाई थीं। बाबुल के प्रवेश द्वार पर एक विशाल नृसिंह मूर्ति स्थापित की थी। उसने दुआसारा के मन्दिर की छत से चाँदी निकलवाकर सोने के पत्तरों को जड़वाया था। एकुआ के मन्दिर को भी उसने सोने से मढ़वा दिया था। वह 'मार्दुक' और 'नेबो' का अनन्य उपासक था। उनके साथ ही वह अन्य देवताओं की भी पूजा करता था और उन्हें भेंट चढ़ाता था। उसने अन्य देशों के देवताओं के भी मन्दिर बनवाये थे।

नेबुचडरेज्जर का नगर-नियोजन—नेबुचडरेज्जर ने अपने पिता नेबोपलेस्सर द्वारा बनाई गई एक नगर योजना को क्रियान्वित किया। उसकी राजधानी का नियोजन बड़े सुन्दर ढंग से किया था। नेबुचडरेज्जर ने स्वयं एक स्थान पर लिखवाया है कि उसने बाबुल को अन्य समकालीन नगरों की अपेक्षा अधिक वैभवशाली बनाया था। प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ने बाबुल को जिस रूप में देखा था उसका वर्णन करते हुए लिखा है, "बाबुल एक अत्यन्त वैभवशाली नगर था जो एक चौरस भूमि पर हुआ हुआ था। उसकी लम्बाई-चौड़ाई 14-14 मील थी और पूरा घेरा 56 मील का था। सम्पूर्ण नगर का क्षेत्रफल लगभग 200 वर्गमील था। उसकी चहारदीवारी 80 फीट चौड़ी थी और Tower of Babel के नाम से प्रसिद्ध थी। बाहर की चाहरदीवारी के साथ ही अन्दर भी एक चहारदीवारी थी

और उसके अन्दर नगर बसा हुआ था। दोनों चहारदीवारियों के मध्य शत्रुओं द्वारा घेरा डाल देने पर आवश्यक अनाज पैदा कर लिया जाता था। नगर में हजारों नगर सेठों की हवेलियाँ थीं। नगर के विभिन्न मकानों का निर्माण विभिन्न ढंग से होता था और हर मकान के सामने एक फुलवाड़ी होती थी। लम्बाई और चौड़ाई दोनों दिशाओं में सीधी सड़कें नगर भर में एक दूसरे को काटती हुई बिछी हुई थीं। नगर की चहारदीवारी में प्रत्येक दिशा में 25-25 फाटक थे। सभ्यता के शैशव-काल में बाबुल नगर का इतना सुनिश्चित नगर नियोजन हमें एक बार फिर नेबुचडरेज्जर की महत्वाकांक्षा की याद दिलाता था।"

नेबुचडरेज्जर के काल में कलात्मक उन्नति—नेबुचडरेज्जर ने केवल नगर-नियोजन का ही कार्य सम्पन्न नहीं किया बल्कि अनेक दुर्गों और राजप्रासादों का भी निर्माण करवाया। उसके बनवाये हुये राजप्रासाद तत्कालीन भवन-निर्माण कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। नेबुचडरेज्जर ने 'मार्दुक' देवता की उपासना के लिये एक जिग्गुरात का भी निर्माण करवाया था। अपनी रानी के लिये नेबुचडरेज्जर ने एक ऐतिहासिक झूला उद्यान का निर्माण करवाया था। उसकी रानी मीड्स सम्राट की पुत्री थी और ठण्डे देश की होने के कारण गर्मी को बर्दाश्त नहीं कर पाती थी। इसी कारण, नेबुचडरेज्जर ने उसके लिए शीतल उद्यान बनवाया था। इस उद्यान में अनेक प्रकार के पेड़-पौधे लगे हुए थे जो दूर से लटके हुए से प्रतीत होते थे। यह झूला संसार के सात आश्चर्यों में से एक गिना जाता है। उसके विषय में विल ड्यूराण्ट ने लिखा है :—

"Supported on a succession of supinposed circular colonades, was the famous hanging gard›, to which ·the Greeks included amongst the seven wonders of the world."

—Will Durrant.

नेबुचडरेज्जर का मूल्यांकन—नेबुचडरेज्जर बेबिलोनिया के महानतम सम्राटों में से था। उसने अपने साम्राज्य का विस्तार तो किया ही साथ ही जनता की भलाई के लिये भी अनेक कार्य किये। उसके शासन-काल में ज्योतिष विज्ञान अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गई थी। नेबुचडरेज्जर का महत्व जितना अधिक एक साम्राज्य-निर्माता के रूप में है उससे कहीं अधिक संस्कृति के उन्नायक के रूप में है। साहित्य, कला और विज्ञान की उन्नति के लिये उसने 14 मन्दिरों का निर्माण करवाया था। सभ्य संसार सदैव उसका ऋणी रहेगा।

अत्यन्त खेद के साथ लिखना पड़ता है कि इस योग्य और कुशल शासक का अन्त अत्यन्त दुखमय हुआ। अपने जीवन के अन्तिम काल में वह पागल हो गया और घास खाने लगा तथा 362 ई० पू० में उसका देहान्त हो गया।

द्वितीय राजवंश का पतन

सम्राट नेबुचडरेज्जर की मृत्यु 562 ई० पू० में हुई। किंवदन्ती है कि अन्तिम काल में सम्राट पागल हो गया था और जानवरों का-सा व्यवहार करने लगा था।

इसकी मृत्यु के उपरान्त इसका पुत्र निवोनिदस गद्दी पर बैठा। उसने 17

वर्ष तक राज्य किया। इस राजा का अधिक समय प्राचीन खण्डहरों को खोदने में बीतता था। इसलिये शासन में गड़बड़ी मच गयी। सेना की शक्ति भी ढीली पड़ गई, जनता ऐशआराम में डूब गई और व्यापारी लोग स्वार्थी हो गये। 531 ई० पू० में फारस के सम्राट साइरस प्रथम ने बाबुल को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। बेबिलोनिया के महल में ही 331 ई० पू० अधिक शराब पीने के कारण सिकन्दर महान की मृत्यु हुई इसलिये इस महल का विशेष महत्व है।

बेबिलोनिया निवासियों का सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन

(1) वर्ग विभाजन—सारा नागरिक समाज तीन वर्गों में विभाजित था—

1. उच्च वर्ग : अवीलम्;
2. मध्य वर्ग : मुस्कनम;
3. दास वर्ग।

(1) उच्च वर्ग (अवीलम्)—अवीलम् वर्ग में मंत्री, राज्य पदाधिकारी, व्यापारी और भूमिपति आते थे। परन्तु धन के आधार पद पर नहीं माना जाता था बल्कि निर्धन हो जाने पर व्यक्ति अपने वर्ग के अधिकारों का उपयोग करते रहते थे। कालान्तर में यही वर्ग रक्त के आधार पर बनने लगे। इतिहासकारों का मत है कि आरम्भ में ऊँची श्रेणी के लोग शासन करने वाले अमीरी जाति के लोग रहे होंगे। धीरे-धीरे अक्काद, सेमाइट भी इसी वर्ग में सम्मिलित हो गये क्योंकि रक्त और भाषा के विचार से ये अमीरियों के अधिक निकट थे। उच्च वर्ग के लोगों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

(2) मध्य वर्ग (मुस्कनम)—मुस्कनम् वर्ग के लोग दासों से ऊँचे माने जाते परन्तु उच्च वर्ग से नीचे। इस वर्ग में अधिकतर सुमेरियन लोग थे। दोनों वर्गों के सम्मान में अन्तर अपराधियों द्वारा दिये जाने वाले हर्जाने से लगाया जाता था उदाहरण के लिये यदि कोई उच्च वर्ग का व्यक्ति किसी मनुष्य का बैल चुरा लेता था तो उसे पशु के मूल्य से तीस गुना धन दण्ड रूप में देना होता था जब कि मध्यम वर्ग को केवल 10 गुना धन देना होता था। मध्यम वर्ग के लोगों को हत्या आदि के अपराध में भी उच्च वर्ग वालों से कम दण्ड मिलता था। उन्हें, वैद्यों आदि को कम फीस देनी पड़ती थी। तलाक भी आसानी से मिल जाता था।

(3) दास वर्ग—दास वर्ग के लोगों को मध्यम वर्ग से भी कम दण्ड दिया जाता था। शायद दण्ड की यह व्यवस्था का सिद्धान्त बेबिलोनियावासियों ने सुमेरियनों से पाया था। दास वर्ग के लोग प्रायः उच्च और मध्यम वर्ग के परिवारों में काम करते थे। पशुओं की भाँति इनका भी क्रय-विक्रय होता था। प्रायः युद्ध में पकड़े जाने वाले लोग दास बना दिये जाते थे। प्रत्येक दास के शरीर पर उसके मालिक का नाम, अधिकार-चिन्ह बना रहता था। जो दास स्वामी के अधिकार को नहीं मानते थे या उच्च वर्ग के किसी आदमी पर आक्रमण करते थे उनके कान काट दिये जाते थे। परिवार का स्वामी दासों के स्वास्थ्य और हित का ध्यान रखता था। दास स्वयं मेहनत करके अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति भी इकट्ठा कर सकते थे और अपना मूल्य चुका देने पर मालिक की आज्ञा से स्वतन्त्रता भी प्राप्त कर लेते थे।

दास स्वतन्त्र स्त्री से विवाह कर सकते थे। ऐसे विवाहों की सन्तान स्वतन्त्र ना
रिक मानी जाती थी दास का स्वामी अपने मरे हुए दास की सम्पत्ति का के
आधा भाग ले सकता था।

(2) परिवार और कानून—हम्मूराबी की विधि-संहिता तथा उसके द्वा
दी आज्ञाएँ बेबिलोन के निवासियों के पारिवारिक जीवन पर भी पर्याप्त प्रक
डालते हैं। इनसे ज्ञात होता है कि बैबिलोनियन समाज में परिवार के सदस्यों
पारस्परिक सम्बन्ध कानून द्वारा अनुशासित रहता था। विवाह, तलाक, बालक
गोद लेने और पारिवारिक सम्बन्धों में जो परिवर्तन होते थे उन्हें लिपिबद्ध कि
जाता था। विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, बच्चों के भरण-पोषण आदि के लिए रा
द्वारा नियम निर्धारित किए गए थे।

(3) स्त्रियों की दशा—यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस के लेखों से ज्ञा
होता है कि बाबुल में कुमारी लड़कियाँ वीनस देवी को प्रसन्न करने के लिये अप
यौवन को लुटाती थीं और किसी न किसी आगन्तुक से जीवन में एक बार सम्ब
करती थीं। विवाह हो जाने के उपरान्त यह स्त्रियाँ पति-पत्नी का सच्चा जीव
व्यतीत करती थीं। देव-मन्दिरों में वेश्याएँ भी होती थीं जो पवित्र वेश्याएँ कहला
थीं और नागरिक वेश्याएँ शराब की दुकानों आदि में रहती थीं। इस प्रकार बेबि
लोनिया में अवैध और सम्बन्ध को धार्मिक रूप दिया गया। विल ड्यूराण्ट
अनुसार विवाह से पूर्व जिस स्त्री का किसी पुरुष से सम्बन्ध हो जाता था वह मि
के बने हुये जैतून के फल को पहनती थी। यह एक प्रायोगिक विवाह की प्रथा थी
विवाह के पश्चात् स्त्री और अन्य पुरुष दोनों को कठोर नैतिक जीवन व्यतीत कर
पड़ता था। कभी-कभी विवाह योग्य लड़कियों को बाजारों में बेचा जाता था पर
खरीदार को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह उक्त कन्या को केवल विवाह
लिये खरीद रहा है। तलाक और उत्तराधिकार आदि की प्रथाएँ भी प्रचलित थीं
उच्च श्रेणी की स्त्रियों को बाहर निकलते समय पर्दे का प्रयोग करना पड़ता था
एक इतिहासकार ने लिखा है कि जब बाबुल के लोग शत्रुओं द्वारा घेर लिये गये त
उन्होंने रसद बचाने के लिए अपनी स्त्रियों का संहार कर डाला। सांस्कृतिक उन्न
के साथ-साथ बाबुल के निवासी नवयुवक, स्त्रियों की तरह गहनों और चूड़ियों आ
का प्रयोग करने लगे तथा बाल भी बनाने लगे। हैरोडोटस के अनुसार—"सभ्य
के विकास के साथ-साथ स्त्रियों में आत्मसंयम की भावना घटने लगी और पुरुष
के लिए अपनी लड़कियों की वेश्यावृत्ति करने के लिए प्रोत्साहन देने लगे।" स्त्रि
के इस पतन में मन्दिरों को आर्थिक वृद्धि ने भी सहयोग दिया।

(4) मृतक संस्कार—मृतकों को प्रायः जलाया या गाड़ा जाता था। जि
लोगों को गाड़ा जाता था उनके साथ कब्रों में खाने-पीने आदि की सामग्री भी उनक
सन्तानों द्वारा रक्खी जाती थी जिससे मृतक आत्माएँ भूख-प्यास से परलोक
तड़पती न रहें।

दफनाने के पहले शव को नहलाया जाता था और उसको वस्त्रों तथा अलं
कारों और सुगन्धों से परिपूर्ण किया जाता था। स्त्रियों के साथ उनके सिंगार
समस्त सामान भी रक्खा जाता था। नागरिकों का विश्वास था कि यदि मृतक
साथ समस्त संतोष का सामान नहीं रक्खा जायगा तो इस सामान की तलाश

उसकी आत्मा परिवार वालों को परेशान करेगी और गन्दी जगहों में जैसे नाले-नालियों में खाने-पीने की चीजें ढूँढ़ेगी जिससे नगर में तरह-तरह के रोग फैलेंगे।

आर्थिक जीवन

बेबिलोनिया की सभ्यता में सुमेरियन सभ्यता के कुछ चिह्न अवश्य पाये जाते हैं। विशेषकर आर्थिक जीवन में बेबिलोनिया वालों ने सुमेरियनों से बहुत कुछ लिया था। यद्यपि इस युग में मन्दिरों की शक्ति घट गई थी अथवा दूसरे शब्दों में धार्मिक समाजवाद का अन्त हो गया था परन्तु कुछ मन्दिरों के पास अब भी बड़ी-बड़ी जागीरें थीं। बेबिलोनियन सम्राट का नियन्त्रण मन्दिरों की व्यवस्था पर था और सम्राट मन्दिरों की आय-व्यय की भी जांच करता था। मन्दिरों के पशु राजा के पशुओं के साथ गिने जाने लगे थे और धार्मिक तथा राजकीय दोनों तरह के करों तथा भेंटों को एकत्र करने वाले कर्मचारी धन का ब्यौरा सीधे शासन के पास भेजने लगे थे। यही नहीं बल्कि सम्राटों ने ऐसे नियम बनाये थे जिनसे वे देश के समस्त आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप करने लगे थे।

(1) किसानों की दशा—बेबिलोनिया की भूमि बहुत उपजाऊ थी। भूमि के मालिक प्राय: राजा, मन्दिरों ने पुजारी, धनी व्यापारी थे। अत: वे भूमि ो किसानों को पट्टे पर देते थे। किसान को एक तिहाई भाग से लेकर आधा भाग तक का अंश भूमिपति को देना पड़ता था। एक बार भूमि पट्टे पर ले लेने पर उसको खेती पर विशेष ध्यान देना पड़ता था ऐसा न करने वाला जमीन का एक निश्चित किराया देता था। कृषकों, चरवाहों तथा भूमिपतियों आदि के आपसी झगड़ों का फैसला राजकीय नियमों के अनुसार होता था।

(2) सिंचाई—कृषि-प्रधान देश में भूमि की समुचित व्यवस्था करना और सिंचाई करना प्राय: शासक का कर्त्तव्य होता है। इसी कारण प्राय: सभी सम्राटों ने नई नहरें बनवाईं या पुरानी नहरों का जीर्णोद्धार करवाया। राजकीय कर्मचारी भी अपने क्षेत्र की नहरों की मरम्मत आदि करवाते थे और इस कार्य के लिए नहरों के पास रहने वाले नागरिकों से सहायता लेते थे। नागरिकों को नहरों में मछली पकड़ने का अधिकार दिया जाता था; जो स्थल नहरों की सतह से ऊँचे होते थे वहाँ सिंचाई की कल का उपयोग किया जाता था जो भारत की ढेकली के समान थी। सिंचाई के लिये कई प्रकार के यन्त्र भी उपयोग में आते थे जिन्हें चलाने के लिए पशु लगाये जाते थे।

खेतों को जोतने के लिए एक विशेष ढंग के हल का प्रयोग किया जाता था। जो अब भी सीरिया में प्रचलित है।

(3) उपज—अनाज, खजूर, अंगूर और जैतून आदि की उपज होती थी। अंगूर और जैतून की कृषि सर्वप्रथम यहीं पर आरम्भ की गई थी। यहीं से रोम-वासियों ने तथा यूनानियों ने अंगूर तथा जैतून की कृषि सीखी थी। शनै:-शनै: इसका प्रचार सम्पूर्ण विश्व में हो गया था। यहाँ वृक्षों की छाल से रस्सियाँ बनाई जाती थीं। खजूर की उपज के लिये सरल नियम बनाये गये थे।

(4) पशु—बेबिलोनिया निवासियों का दूसरा प्रमुख धन्धा पशुपालन था।

सम्राट स्वयं बहुत से पशु पालता था और प्रजा के पशुओं पर कर लगाता था। राजकीय पशु-निरीक्षक अपने कार्यों का विवरण गवर्नर के पास भेजा करते थे।

(5) उद्योग-धन्धे—पशुओं से काफी मात्रा में ऊन, खाल और चमड़ा इत्यादि प्राप्त होता था। ऊनी वस्त्रों का प्रयोग बहुत से व्यक्ति करते थे। कांसे के औजार और बर्तन बनने लगे थे। लोहे का प्रयोग भली-भाँति ज्ञात नहीं था। सोना, चाँदी और ताँबा आदि धातुएँ अलंकारों आदि के बनाने के काम आती थीं। चमड़े की वस्तुओं का निर्माण और फर्नीचर आदि बनाने का काम भी प्रचलित था।

(6) यातायात—बेबिलोनिया में नहरों से सिंचाई तो की ही जाती थी, साथ ही नहरों का उपयोग यातायात के लिए भी किया जाता था। बड़े-बड़े लकड़ी के लट्ठों को पशुओं की खाल से बाँधकर उनसे नाव का काम लिया जाता था। आवश्यकतानुसार इन्हें बेच भी लिया जाता था। भार ढोने के लिए गधों का प्रयोग किया जाता था। हम्मूराबी की विधि-संहिता में छोटे-छोटे लघु पोतों का भी वर्णन किया गया है और यह भी लिखा है कि तत्कालीन सम्राट के पास एक बड़ा जहाजी बेड़ा भी था जिसका प्रयोग राजकीय खाद्यान्न, लकड़ी तथा ऊनी वस्त्रों के आयात-निर्यात के लिए किया जाता था।

थल मार्ग से काफिलों द्वारा माल बाहर से लाया और ले जाया जाता था।

(7) व्यापार—बेबिलोनिया के व्यापारी दूर-दूर देशों में जाकर व्यापार करते थे। ये अपने सामान को बड़ी-बड़ी गाँठों में भरकर अन्य देशों को भेजते थे। गाँठों की रस्सियों पर मिट्टी की पट्टियाँ रहती थीं और उन पर व्यापारियों के नाम लिखे रहते थे। माल ले जाने का काम सौदागर करते थे जो गधों के काफिलों द्वारा माल ले जाया करते थे। व्यापारी और सौदागर बिक्री के लाभ को प्रायः आधा आधा बाँट लेते थे।

वस्तुओं की खरीदारी में चांदी के टुकड़े दिये जाते थे। ऋण लेने की प्रथा थी और सूद प्रायः 20 प्रतिशत वार्षिक रहता था। सोने का मूल्य चांदी से बारह या पन्द्रह गुना अधिक रहता था।

धर्म एवं धार्मिक विश्वास

(1) धर्म का स्वरूप और देवता— बेबिलोनिया के निवासियों ने सुमेरिया वालों के धर्म में अनेक परिवर्तन किये। उनके प्रमुख देवताओं के स्थान पर नये देवताओं की मान्यता दी गई। मर्दुक जो पहले एक स्थानीय देवता माना जाता था अब सारे देश में पूजा जाने लगा। सुमेरियन लोगों में एनेलिल का स्थान सबसे ऊँचा था परन्तु बेबिलोनिया में यह स्थान मर्दुक को मिला। राज दरबार में मर्दुक की प्रधानता थी यद्यपि साधारण जनता सुमेरियन देवताओं की भी पूजा करती थी। इसका प्रमाण 'एनुमाएलिश' नामक रचना से मिलता है। इसके मूल कथानक का मुख्य पात्र बेबिलोन का देवता मार्दुक नहीं था बल्कि निप्पुर का देवता एनेलिल था। प्रारम्भिक अवस्था में मर्दुक का सम्बन्ध कृषि के देवता से था परन्तु 'एनुमाएलिश' में उसे तूफान का देवता दिखाया गया है जो पृथ्वी और आकाश को अलग करता है। जब बेबिलोन नगर देश का राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र बना तो उसने एनेलिल का स्थान मर्दुक को दे दिया गया।

'एनुमाएलिश' में विश्व की उत्पत्ति का हाल बताया गया। इसके अनुसार प्रारम्भ में चारों ओर केवल जल ही जल था और इस जल समूह से लामू और लहमू इलाम के दो देवता उत्पन्न हुये जिन्होंने अंशार, किन्नर और अनु को जन्म दिया। अनु ने नदिमुत को जिसका नाम इया अथवा एनकी था, को उत्पन्न किया। उपर्युक्त देवताओं की उत्पत्ति के कारण जल समूह को बहुत कष्ट हुआ और उनका नाश करने के लिये अप्सू और निम्मू (मीठा जल और अज्ञात जल) ने उन पर आक्रमण किया किन इया ने मंत्र-जल से निम्मू को कैद कर लिया और अप्सू का वध करके उस पर अपना महल बनाया। इस प्रकार विजयी होकर देवताओं ने एनकी के पुत्र मर्दुक को जन्म दिया। जब मर्दुक देवताओं के समाज में पल रहा था, तियामत (समुद्र) ने अपने पति किंग्सू को देवताओं पर आक्रमण करने के लिये भेजा और देवताओं ने अनु को समुद्र का मुकाबला करने के लिये सेना लेकर रवाना किया। परन्तु जब वह असफल रहा तब मर्दुक को नेता बनाया गया। मर्दुक ने दोनों राक्षसों किंग्सू और तियामत को मार डाला। तियामत के शरीर के आधे भाग से आकाश बनाया गया जहाँ देवताओं के निवास बने। मर्दुक ने इस विजय के उपरांत देवताओं के समूह का आंतरिक संगठन किया। सूर्य और चन्द्रमा का स्थान और मार्ग निश्चित करके कलेण्डर का निर्माण किया। युद्ध में देवताओं को काफी मेहनत करनी पड़ी थी अतः उसने देवताओं की सेवा के लिये किंग्सू के शरीर से मनुष्य बनाये और देवताओं को विभिन्न वर्गों में बाँटकर उन्हें आकाश और पृथ्वी पर अलग-अलग स्थानों में निवास दिया।

पश्चिम सेमाइटों ने मर्दुक के साथ-साथ और भी कई देवी, देवताओं को देव-समाज का सदस्य बनाया। ईश्वर और तामुज, मर्दुक के अतिरिक्त, बेबिलोनिया के देव-समूह के सर्वोच्च देवता माने जाते थे। अन्य देवताओं में सूर्य और चन्द्रमा का भी स्थान था।

उपर्युक्त वर्गीकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि बेबिलोनियनों का जन समूह सुमेरियन देव-समूह का ही परिवर्तित रूप था। देवताओं के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में भी दोनों की धारणा एक-सी थी। जिस तरह मनुष्यों के घर और नौकर होते हैं उसी प्रकार देवताओं के मन्दिर और पुजारी थे। देवताओं की स्तुति के लिये मन्दिर बनाये जाते थे। पुरोहित मन्दिरों की व्यवस्था करते थे। समाज में पुरोहित सम्माननीय पद पर सुशोभित थे।

(2) **धर्म का उद्देश्य**—बेबिलोनिया वालों का धर्म आध्यात्मिक या नैतिक नहीं कहा जा सकता। उसमें स्वार्थ, भय दो मूल भावनाएँ वर्तमान थीं। व्यापारी और किसान देवताओं की पूजा आर्थिक लाभ के लिये करते थे। जब वे देवताओं के सामने अपने पापों के लिये पश्चाताप करते थे तो उससे भी सांसारिक सुखों के प्राप्त करने की भावना होती थी। बेबिलोनियन धर्म के अन्तर में दूसरी भावना भूत-प्रेतों का भय था। उन्हीं से त्राण पाने के लिये पूजा पर बल दिया जाता था।

(3) **परलोकवाद**—बेबिलोनिया के निवासियों की कल्पना परलोक के विषय में अनोखी थी। वे मानते थे कि मृत्यु के उपरान्त मनुष्य के शरीर को कीड़े चाट जाते हैं। पापियों को परलोक में कष्ट होता है और जिन मृतकों के जीवित सम्बन्धी

उनकी समाधि पर भोजन और जल आदि चढ़ाते हैं वे परलोक में शान्ति प्रा
करते हैं।

(4) **पुजारियों का स्थान**—भूत-प्रेतों से बचने के लिये जादू-टोना ही ए
मात्र साधन समझा जाता था और पुजारियों की कृपा से ही जादू-टोने में सफल
प्राप्त हो सकती थी। इसलिये बेबिलोनिया के धर्म में पुजारियों का महत्व अधि
बढ़ गया था। सुमेरियन युग में पुजारी ही प्राय: राजा बन जाते थे परन्तु बेबिल
नियन सम्राटों ने पुजारियों के विशेषाधिकारों पर उसी प्रकार नियन्त्रण किया जि
प्रकार अन्य पदाधिकारियों पर किया गया था। पुजारियों का एक वर्ग देवज्ञों
था जो शकुन विचारने का काम करता था। देवज्ञ भेड़ को देवता के नाम से ब
चढ़ाते थे और वह देवता भेड़ के लिवर पर आश्चर्यजनक चिन्हों द्वारा भविष्य
संकेत कर देता था। इन चिन्हों को देवज्ञ ही पढ़ सकते थे और यह विश्वास कि
जाता है कि क्यूनीफार्म लिपि में देवज्ञ इनका अर्थ लिख देते थे। पुजारियों का ए
और वर्ग भी था जो नक्षत्रों और ग्रहों के आधार पर राज्य के लिये शुभ और अशु
फल बताता था। यही विद्या आगे चलकर ज्योतिष विद्या के नाम से प्रसिद्ध हुई
सम्राट चन्द्रमा के आधार पर मास के प्रथम दिन को निश्चित करता था और सं
वर्ष के साथ चन्द्र वर्ष को जोड़ने के लिये अतिरिक्त मास की गणना करना था
ज्योतिषी वर्ष का नामकरण करते थे। बेबिलोनियन वर्षों के नाम प्राय: धार्मि
महत्व के थे। इस प्रकार धर्म और ज्योतिष का घनिष्ठ सम्बन्ध इनमें स्थापित कि
गया था।

दर्शन

बेबिलोनिया सभ्यता के युग में धार्मिक दर्शन अपरिपक्व था किन्तु हमें द
की राजनैतिक तथा नैतिक शाखाओं में दर्शन की अनेक नवीनताओं की प्राप्ति हो
है। अतः हम बेबिलोनिया के दर्शन को निम्नलिखित दो भागों में विभक्त कर सक
हैं—

बेबिलोनिया के दर्शन को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(1) राजनीतिक दर्शन

(2) नैतिक दर्शन।

(1) **राजनीतिक दर्शन (राष्ट्र के एकीकरण का कारण)**—सुमेरिया वा
ने राष्ट्र की एकता का सिद्धान्त इस आधार पर बनाया था कि देवताओं की सं
किसी भी देवता को अपना राजा निर्वाचित कर सकती है और वही देवता राजा
अपने नगर-राज्य का प्रतिनिधि बनाता था। इस सिद्धान्त से राजनीतिक एकता
बहुत प्रोत्साहन मिला। कोई भी राजा चाहे जिस उपाय से राज्य को हस्तगत
लेता था और उसे 'एनेलिल' और देवराज का प्रतिनिधि मान लिया जाता था
देवराज मर्दुक था जो बेबिलोनिया वालों का देवता था। हम्मूराबी की मेसोपो
मिया पर सफलता के विषय में भी यही स्वीकार किया गया कि देव-समाज ने बे
लोन नगर के देवता मर्दुक को देवराज बनाया और हम्मूराबी पृथ्वी पर मर्दुक
प्रतिनिधि है। हम्मूराबी ने स्वयं अपनी विधि-संहिता में यह स्वीकार किया है। उ
विधि-संहिता की प्रस्तावना में लिखा है—

"जब अनुन्नाकी के राजा महान् अनु और आकाश तथा पृथ्वी के स्वामी एनेलिल ने, जो देश के भाग्य का निर्णय करते हैं, एनकी के ज्येष्ठ पुत्र मर्दुक को एनेलिल के सफल जन-सम्बन्धी (प्रशासनात्मक) कार्यों को निष्पादित करने के लिए नियुक्त किया।

उसे इगीगी में महान् बनाया जिसका प्रशंसित नाम बेबिलोन है और जिसको विश्व में महान् और आश्चर्यजनक बनाया गया है,

और इसमें उसके लिए चिरस्थायी राजतन्त्र स्थापित किया, जिसकी नींव पृथ्वी और आकाश की नींव की तरह दृढ़ है,

तब अनु और एनेलिल ने मुझे हम्मूराबी को, जो आज्ञापालक और ईश्वर भीरु राजा है, जनकल्याण के लिये, देश में न्याय स्थापित करने के लिए, कुकर्मियों और पातकियों को नष्ट करने के लिये तथा सबलों से दुर्बलों की रक्षा के लिये नियुक्त किया।"

(श्री राम गोयल द्वारा लिखित 'विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ' से उद्धृत)

हम्मूराबी की इस नीति से उसे न्याय और व्यवस्था स्थापित करने में बहुत सहायता मिली।

'राष्ट्र-राज्य' सिद्धान्त की लोकप्रियता का कारण—राष्ट्र-राज्य का यह सिद्धान्त अक्कादियों और सेमाईटों एवं उरों के समय में ही बहुत प्रसिद्ध हो चुका था। बेबिलोनिया के निवासी शासक अपनी स्थिति को पूरी तरह जानते थे कि वे बेबिलोनिया में आक्रमणकारी के रूप में ही आये थे। अतः विशाल जातियों के देश में नियन्त्रण रखने में इस सिद्धान्त द्वारा उन्हें बहुत सहायता मिली।

बेबिलोनिया के लोग मानते थे कि राजा देवताओं के समान पवित्र, दयालु, बुद्धिमान और न्याय-प्रिय होता है। ज्यों-ज्यों जनता में ज्योतिष ज्ञान के प्रति प्रेम बढ़ा त्यों-त्यों राजा को निरंकुश होने में और भी सहायता मिली क्योंकि जनता को यह विश्वास हो गया था कि संसार-चक्र भाग्य के बन्धन से बड़ी कठोरता के साथ बंधा हुआ है। अतः देवताओं का प्रतिनिधि राजा यदि देवताओं के समान ही कठोर है तब भी वह देवताओं की इच्छा-मात्र है।

(2) नैतिक दर्शन—बेबिलोनिया साम्राज्य में न्याय के लिये दण्ड भोगने का सिद्धान्त धीरे-धीरे बढ़ने लगा था। हम्मूराबी की विधि-संहिता और सामाजिक व्यवस्था ने इस सिद्धान्त को अधिक लोक-प्रिय बनाया और प्राचीन सिद्धान्त, न्याय देवताओं की कृपा है, अमान्य होने लगा। बेबिलोनियन विचारकों ने यह भी सोचना आरम्भ कर दिया कि मृत्यु का कारण क्या है या सदाचारी व्यक्तियों को क्यों कष्ट उठाना पड़ता है ?

प्राचीनकाल में अच्छाई और बुराई दोनों को ही देवताओं की कृपा समझा जाता था परन्तु बेबिलोनिया की विधि में अधिकारों की नई व्यवस्था की व्याख्या में इस प्रश्न पर विशेष ध्यान दिया गया। गिलामिश ने एक महाकाव्य इसी आधार पर बनाया है। उसमें लिखा है कि जब जनता एरेक के शासन गिलागामेश के अत्याचारों से दुखी हो गई तो उसने देवताओं से प्रार्थना करके एनकीड का निर्माण कराया।

प्रतिद्वन्द्वी होने के बजाय एनकीडू गिलगामेश का मित्र वन गया और दोनों ने मिल कर बहुत से महान् कार्य किये जिनमें एलम के दैत्य हुमबाबा का वध करना भी एक महान् कार्य था।

ईश्तर नाम की देवी गिलगामेश से प्रेम करने लगी थी। गिलगामेश ने उसके प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इस पर ईश्वर ने स्वर्ग के बैल को उसे मारने भेजा परन्तु दोनों वीरों ने उस बैल को भी मार डाला। इस विजय से दोनों वीरों की शक्ति असीमित मालूम होने लगी परन्तु उसी रात को एनकीडू ने यह स्वप्न देखा कि देवताओं ने स्वर्गीय बैल को मारने के अपराध में उसकी मृत्यु की घोषणा की है। एनकीडू शीघ्र बीमार पड़ा और मर गया। गिलगामेश यद्यपि जीवित रहा मगर उस विश्वास हो गया कि एक न एक दिन मृत्यु अवश्य होगी। इसीलिये उसने निश्चय किया कि मरा जाय तो इस प्रकार कि जिससे मरने पर ख्याति बनी रहे। अतः उसने जीवन का लक्ष्य अमरत्व प्राप्त करना बताया और अमर मानव 'ज्युसुद्र' के पास गया। जब वह जा रहा था वो रास्ते में समुद्र की गहराइयों में उसे मधुबाला मिली जिसने उसे समझाया कि तुम अपना पेट भरो, दिन-रात ऐश करो, जो आदमी का भाग्य है, मृत्यु तो देवताओं का अधिकार है परन्तु गिलगामेश ने उसकी कोई परवाह न की और वह आगे वढ़ता ही रहा। जब उसकी भेंट 'ज्युसुद्र' से हुई तब उसने बताया कि उसे अमरत्व बड़ी विषम अवस्था में प्राप्त हुआ था। उसने बताया कि एक बार देवताओं ने मनुष्यों का नाश करने के लिए घोर वृष्टि की, परन्तु 'ज्युसुद्र' को दूवताओं को इस करतूत की सूचना पहले से ही 'एनकी' ने दे दी थी। उसने एक बड़ी नाव बनवाई और अपनी स्त्री तथा कई चेतन वस्तुओं के जोड़ों को बचा लिया सात दिन तक प्रलय वृष्टि होती रही तब देवताओं को अपनी करनी पर दुःख हुआ। जल-वृष्टि रुकने पर 'ज्युसुद्र' न देवताओं की बलि दी। देवता भूखे तो थे ही बलि भाग पर टूट पड़े और 'ज्युसुद्र' से सन्तुष्ट होकर उसे पृथ्वी पर जीवन की रक्षा करने के पुरस्कार में अमरतत्व प्रदान किया। इस विषम परिस्थिति को सुनकर गिलगामेश निराश हो गया। इसी व्यवस्था में 'ज्युसुद्र' की पत्नी ने अपने पति से प्रार्थना की और पति ने उसे समुद्र की तह में पैदा होने वाले एक पौधे के बारे में बताया। इस पौधे को वड़ी कठिनाई से प्राप्त करके गिलगामेश समुद्र के बाहर लाया। वह जब एक तलाब के किनारे नहा रहा था और पौधा किनारे पर रक्खा तो उसी समय एक साँप उस पौधे को चुराकर खा गया। इसीलिये सांप तो अमर हो गये और गिलगामेश के समक्ष मृत्यु की समस्या बनी रही। अन्त में मरकर वह परलोक के न्यायाधीशों में एक बना।

बेबिलोनियन युग में यह विश्वास किया जाने लगा था कि न्याय पाना मनुष्य का अधिकार है परन्तु यह चिन्ता उस समय लोगों को अधिक हुई कि जो लोग अच्छे काम करते हैं उन्हें क्यों कष्ट होता है? देवताओं को उन्हें कष्टों से अवश्य बचाना चाहिये। इस समस्या पर विचार करने वाली रचनाओं में एक रचना 'लुडलुलबेल नेमर्की' बड़ी प्रसिद्ध है। इस कविता का नायक अत्यन्त सदाचारी व्यक्ति है परन्तु उसको बहुत कष्ट मिलते हैं। देवी-देवताओं ने उसका त्याग कर दिया है। इस समस्या के दो समाधान उस रचना में दिये गये हैं—

I बौद्धिक II भावात्मक ।

(I) बौद्धिक समाधान—बौद्धिक समाधान में कहा गया है कि मनुष्य का स्थान देवताओं से नीचा है। वह देवताओं के रहस्य को नहीं समझ सकता और न उसे यह अधिकार है कि देवताओं पर किसी प्रकार क्रोध करे।

(II) भावात्मक समाधान—भावात्मक उत्तर में कहा गया है कि मनुष्य देवताओं में विश्वास करे। वह उस पर कृपा करेंगे। कथानक के अन्त में नायक को कष्टों से छुटकारा मिल जाता है।

भाषा एवं साहित्य

इतिहासकारों का विचार है कि यहाँ की भाषा की उत्पत्ति सुमेरी और अक्कादी भाषाओं के मेल से हुई है। आरम्भिक व्यवस्था में सुमेरीय लिपि को अपनाया गया फिर बाद में वर्णमाला तथा लिपि में समुचित परिवर्तन किये गये। बाबुली वर्णमाला में 3000 चिन्ह थे जिनके द्वारा धार्मिक शिक्षा, गणित, और ज्योतिष का ज्ञान गुरु मन्दिरों में दिया जाता था। पुरोहित ही अध्यापक के पद पर कार्य करते थे। यहाँ के निवासियों ने भाषा की उन्नति के लिये व्याकरण और शब्दकोषों का निर्माण किया था। जो थोड़ी बहुत खोज की जा सकती है उससे ज्ञात होता है कि यहाँ के लोग मिट्टी के भीगे हुये चौकोर टुकड़ों पर सेठे की कलम से सुन्दर लेख लिखते थे और यही टुकड़े पकाकर ठोस कर लिये जाते थे जिन्हें क्रमानुसार लगाकर महलों या मन्दिरों में घड़ों के अन्दर रख दिया जाता था।

बाबुली साहित्य-निर्माण के आधार पर अधिकतर ऐतिहासिक घटनाएँ, कानूनी व्याख्याएँ और उद्योग-धन्धे हैं। देवताओं की प्रशंसा में लिखे हुये कुछ गीत भी प्राप्त हुये हैं। सम्राटों की विजय-कहानियाँ, नगरों की महत्वपूर्ण घटनाएँ और मन्दिरों की गौरव-गाथाएँ कई जगह प्राप्त हुई हैं। गिलगामेश के महाकाव्य में शुद्ध साहित्य निर्माण के दर्शन होते हैं। इस महाकाव्य के अतिरिक्त कुछ आख्यानों का भी पता लगता है जिसमें 'ईश्तर का पताला अवतरण', सुमेरियन कथा का रूपान्तर प्रतीत होता है। 'भाग्य लेख', 'एटन गड़रिये की कथा' और 'अदप मछुए' की कथा प्राप्त होती है।

बबिलोनिया के धार्मिक साहित्य में पूजा-गीतों, भूत-प्रेतों के मनाने के लिये मन्त्रों और देव-स्तोत्रों को लिया जा सकता है। बेबिलोनियन गीतों में भक्त अपने पापों को स्वीकार करके हृदयस्पर्शी शब्दों में देवताओं से क्षमा-याचना करते हैं।

लौकिक साहित्य ज्ञान पुरातत्व की खोजों से नहीं के बराबर होता है। बेबिलोनिया निवासी लिपि की साधना को व्यापार का साधन अधिक समझते थे। लिपि की दक्षता प्राप्त करने के लिये 300 शब्द-खण्डों को कंठस्थ करते थे। लिपियों को सिखलाने का कार्य मन्दिर की पाठशालाओं में होता था।

विज्ञान तथा ज्योतिष

यूनानियों ने ज्योतिष विद्या का अध्ययन सबसे पहले बाबुली गुरुओं से किया। अरस्तू बड़े गर्व के साथ लिखता है—"मैंने बेबिलोनिया की शरण में ज्ञान की ज्योति प्राप्त की है।"

"I have got a draught of knowledge at the banks of the river of wisdom of Babylonia"

—Aristotle.

यहूदी पैगम्बर इसाया, जमिया और दानियाल ने भी बेबिलोनिया वालों के ज्ञान और विद्वता की प्रशंसा की है। कुछ विद्वानों के अनुसार बेबिलोनिया वाले अपने युग के सबसे बड़े ज्योतिष और गणित के ज्ञाता थे। इसी कारण कुछ इतिहासकारों ने बेबिलोनिया को ही ज्योतिष विद्या की जन्म-भूमि कहा है।

बेबिलोनिया के निवासियों की सबसे अधिक रुचि ज्योषित में थी। इन्होंने नक्षत्रों का घोर अध्ययन करके उनकी चाल का पता लगाया और नक्षत्रों को अलग-अलग नाम दिए। इन्होंने आकाश के पूरे वृत्त को नक्षत्रों में विभाजित करके सूर्य की चाल को 12 राशियों के अन्तर्गत स्पष्ट किया। सम्भवत: वे मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन राशियों को भली-भांति जानते थे। खगोल विद्या को वे विश्व की स्वामिनी मानते थे। इसीलिये लगभग 2000 ई० पू० में उन्होंने शुक्र की चाल, उदय और अस्त का ठीक-ठीक पता लगा लिया था। राशियों के आधार पर ही 12 महीने बनाए गए थे और इनका वर्ष 354 दिन का होता था। मास के चार सप्ताह, दिन के बारह घण्टे और घण्टे के तीस मिनट भी इसकी गणना में आते थे। इसी आधार पर आधुनिक घड़ी के चक्र का विभाजन घण्टे और मिनट में किया गया है। घण्टे को 'बेयर' कहा जाता था। हर चौथे या पाँचवें वर्ष सूर्य और चन्द्र वर्ष का मेल मिलाने के लिये एक अति-रिक्त मास जोड़ दिया जाता था। इनके वर्ष में 6 महीने 30 दिनों के और 6 महीने 29 दिन के होते थे। लन्दन के अजायबघर में एक बाबुली शिलालेख है जिसमें नक्षत्रों और राशियों के नाम तथा आकार दिये हुए हैं। सूर्य और चन्द्र की चाल से उन्होंने यह भी पता लगा लिया था कि 18 वर्ष 10 दिन के बाद चन्द्रग्रहण ठीक एक ही क्रम में पड़ते हैं। ध्रुवतारों की भी एक सूची शायद बेबिलोनिया वालों ने तैयार कर ली थी जिसका उपयोग कालान्तर में यूनानियों ने किया। प्रत्येक ग्रह की परिक्रमा का काल एवं उसकी सूर्य से दूरी का ज्ञान भी इन विद्वानों को था। दिन में सूर्य की चाल से और रात में ग्रहों की चाल से समय का ठीक-ठीक पता लगाया जाता था। सूक्ष्मतया जल घड़ी का उपयोग यूनानियों ने बाबुल के निवासियों से ही सीखा था। कुछ पुरातत्वों की खुदाई में दुर्बीनों और खुर्दबीनों के अंश मिले हैं जिससे यह पता लगता है कि इन दोनों यन्त्रों के उपयोग तथा ग्रहों की ऊँचाई का पता लगाने के लिये एस्ट्रोलेब नामक यन्त्र का ज्ञान भी इन लोगों को थी। बाबुल वाले भी हिन्दुओं की तरह ग्रहों तथा नक्षत्रों के आधार पर जन्म-पत्र और वर्ष-फल आदि बनाते थे। ऋण आदि की सही-सही भविष्यवाणी भी यह लोग कर सकते थे। रोम के सम्राटों ने बेबिलोनिया के वैज्ञानिकों और विद्वानों को आदरणीय नाम 'खाल्दी' दिया था।

हम्मूराबी की विधि-संहिता से यह ज्ञात होता है कि बेबिलोनिया में चिकित्सक वर्ग का एक विशिष्ट स्थान था। यद्यपि बेबिलोनिया के निवासी समझते थे कि रोग का कारण देवताओं का प्रकोप है और रोगों के निवारण के लिये जादू-

टोने, मन्त्र, तावीज आदि पर अधिक विश्वास किया जाता था परन्तु चिकित्सक वर्ग भी वहाँ विद्यमान था। कोई-कोई लोग इस प्रकार की दवाओं का प्रयोग करते थे जिनसे रोग का कारण रोगी की प्रेत, डरकर भाग जाय। हम्मूराबी की विधि-संहिता में शल्य-चिकित्सकों के होने का भी उल्लेख किया गया है। हम्मूराबी ने चिकित्सकों की फीस भी निश्चित की थी साथ ही संहिता में उन चिकित्सकों को दण्ड देने का भी प्राविधान किया गया था जो चिकित्सा कार्य में असावधानी करते थे। यदि चिकित्सक की असावधानी के कारण यदि उच्च वर्ग का कोई व्यक्ति मर जाता था तो चिकित्सक के दोनों हाथ काट लिये जाते थे। यदि मध्यम वर्ग का कोई व्यक्ति मर जाता था तो चिकित्सक को कोई दण्ड नहीं दिया जाता था। दास वर्ग की मृत्यु होने पर चिकित्सक को दास के स्वामी को दूसरा दास दिया जाता था।

बेबिलोनिया के निवासी व्यापारी होने के कारण व्यावहारिक विज्ञान में बहुत रुचि लेते थे उनकी गणना के अंक और ढंग दशमलव और षष्टिक विधियों पर आधारित थे। इस वृत्त को, उन्होंने 360 अंशों में विभाजित करना सीख लिया था।

कला

भवन-निर्माण कला—कला के क्षेत्र में बेबिलोनिया निवासी मिस्र वालों से आगे नहीं थे। इसका कारण सम्भवतः यह था कि उस समय पत्थरों का अभाव था और ईंटों के बने हुए भवन प्रायः 50 वर्ष के अन्दर धूल-धूसरित हो जाते थे। यही कारण था कि हम्मूराबी ने अपनी विधि-संहिता में मकान गिर जाने का दायित्व उसके बनाने वाले कारीगरों पर डाला था। इस युग में मकान प्रायः एक मन्जिले होते थे, छतें कच्ची होती थीं जो गर्मी में ऊपर सोने के काम में आती थीं। कुछ चित्रों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सुमेरियनों की भाँति बेबिलोनिया वाले भवन-निर्माण कला में पटु नहीं थे। यही कारण है कि बेबिलोनिया वालों के भवन बहुत कम मिले हैं।

(1) स्थापत्य कला—भवन-निर्माण कला की भांति स्थापत्य कला के भी बहुत कम नमूने मिलते हैं। जो थोड़ी बहुत मूर्तियाँ और रिलीफ चित्र प्राप्त हुए हैं उनसे ज्ञात होता है कि बेबिलोन वालों को पत्थर के तराशने में कमाल हासिल था। साधारण तौर पर ईंटों को जोड़ने के लिये मिट्टी के गारे का उपयोग किया जाता था। नक्शों इत्यादि में वे तरह-तरह के सफेद, नीले, पीले, खाकी और काले रंगों का उपयोग करते थे। खुर्दबीन (Microscope) की सहायता से वे कांच पर कारीगरी करते थे। लोहे के और कांसे के अस्त्र-शस्त्र बनाते थे और सोना चाँदी आदि की ढलाई करते थे।

(2) चित्रकला—बेबिलोनिया के निवासियों के चित्रों में मनुष्य की आकृतियाँ एक-सी दिखाई देती हैं। दासों और शासकों में केवल वस्त्रों का अन्तर है। ऐसा प्रतीत होता है कि बेबिलोनियावासियों की चित्रकला स्वतन्त्र रूप से विकसित नहीं हो सकी। मन्दिरों की दीवालों और मूर्तियों पर भी वे चित्रकारी करते थे परन्तु मिस्र और क्रीट की तुलना में उनका कोई स्थान नहीं ठहरता।

(3) मुद्रा-निर्माण कला—पुरातत्वों के उत्खनन से ज्ञात होता है कि सम्राट से लेकर साधारण नागरिक तक अपनी व्यक्तिगत मुद्राएँ प्रचलित करते थे। परन्तु यह मुद्राएँ सुमेरियनों के समान सुन्दर और आकर्षक नहीं थीं।

(4) संगीत कला—बेबिलोनिया के निवासी संगीत बहुत पसन्द करते थे। इसी कारण घरों में और बड़े-बड़े भोजों में गाने-बजाने का प्रबन्ध विशिष्ट रूप से होता था। बाजों में वीणा, खंजरी, मजीरा, तुरही, मशक और बाँसुरी अधिक प्रयोग में लाते थे।

(5) अन्य कलाएँ—धनाढ्य लोगों के घर चमकीले पत्थरों, रंगीन पर्दों और बहुमूल्य फर्नीचर, मुलायम कम्बलों आदि से सजे होते थे। ये लोग गहरे रंगों का और जरी के कपड़ों का अधिक प्रयोग करते थे। स्त्रियाँ आभूषण पहनती थीं परन्तु यह आभूषण कला की दृष्टि से अधिक उच्चकोटि के नहीं होते थे। बेबिलोनिया के निवासी संगीत के अत्यधिक प्रेमी थे यही कारण था कि वे लोग भोजों (दावतों) के समय संगीत गोष्ठियों का आयोजन किया करते थे।

कला के कुछ नमूने

(1) बेलु-मठ की सिग्गुरात या जुगरत इमारत—बेलु-मठ का क्षेत्रफल दो फलाँग था। इस मठ की प्रमुख इमारत सिग्गुरात के नाम से प्रसिद्ध थी जो पक्की ईंटों की बनी हुई थी और जिसकी चोटी पर एक देव-मन्दिर था। इस इमारत के विषय में स्ट्रेबो ने लिखा है—

"यह सिग्गुरात 606 फुट 9 इंच ऊँचा था। नीचे से इसका रकबा 200 × 200 गज था। इसमें नीचे-ऊपर आठ मंजिलें थीं। ऊपर जाने के लिये बाहर से एक गोल चक्करदार जीना बना हुआ था। चोटी पर बना हुआ देव-मन्दिर अत्यन्त भव्य था। यह अटूट धन-सम्पत्ति से परिपूर्ण था।"

यूनानी इतिहासकार डायडोरस ने लिखा है—"मन्दिर में तीन ठोस सोने की मूर्तियाँ थीं। एक 'बेक' की, दूसरी 'बेलखिस' और तीसरी 'इश्तर' की। बेलखिस की मूर्ति के समक्ष सोने के पत्तरों में मढ़े हुये दो बड़े-बड़े सिंह थे। सिंह-मूर्तियों के सामने दो ठोस चाँदी के बड़े-बड़े अजगर थे जिनमें एक-एक का वजन तीस-तीस मन था। मूर्तियों के सामने सोने की चादर से मढ़ी हुई 40 फुट लम्बी और 15 फुट चौड़ी एक बेदी थी जिसके ऊपर ठोस सोने के बड़े-बड़े बर्तन रखे थे जिनमें से हर एक का वजन तीस मन था। हर मूर्ति के सामने एक-एक धूप जलाने का बर्तन और एक-एक सुनहला प्याला रखा था।"

[विशम्भर पाण्डे द्वारा लिखित 'विश्व का सांस्कृतिक इतिहास' (मेसापोटामिया) से उद्धृत)

कला की दृष्टि से यह इमारत मिस्र की इमारतों की भाँति सुन्दर नहीं है। इसकी तुलना मिस्र के पिरामिड या भारत के किसी श्रेष्ठ मन्दिर से नहीं की जा सकती।

(2) सम्राट नेबुचडरेज्जर का महल तथा हैंगिंग गार्डन—सम्राट नेबुचडरेज्जर का महल तथा हैंगिंग गार्डन इस युग की कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं।

नेबुचडरेज्जर का महल अत्यन्त विशाल था। महल के प्रवेश द्वार पर पत्थर के सिंह की मूर्ति बनी हुई थी। इस महल के समीप एक झूला बगीचा बनवाया गया था जिसकी कारीगरी से अचम्भित होकर यूनानियों ने इसे संसार की सात आश्चर्य-जनक कृतियों में स्थान दिया था। यह बगीचा उसने अपनी खास बेगम के लिये बनवाया था जो मिडिस के सम्राट की लड़की थी और बेबिलोनिया की गर्मी को नहीं सहन कर सकती थी। इस बगीचे के विषय में विल ड्यूराण्ट ने लिखा है—

"Here seventy five feet above the ground in the cool shade of tall trees and surrounded by erotic shrubs and fragrant flowers the ladies of the royal harem walked unveiled, secure from the common eye while in the plaints and street, below the common man and woman ploughed were built carried burdens and repro-duced their kind."

—Will Durrant.

इस बगीचे में इन्जन द्वारा पानी चढ़ाया जाता था। यह बगीचा आज भी संसार की सात आश्चर्यजनक कृतियों में से एक है।

बेबिलोनिया की कला के विषय में एक बात का उल्लेख कर देना अति आवश्यक है। बहुत से विद्वानों ने बेबिलोनिया की कला को भारत और मिस्र की कला की कोटि में रखने का प्रयास किया है परन्तु सत्य तो यह है कि बेबिलोनिया की कला में न तो भारतीय कला की-सी परिपक्वता है और न मिस्र की कला की तरह का स्थायित्व। विल ड्यूराण्ट महोदय ने तो बेबिलोनिया की सभ्यता को भारत, मिस्र और चीन की सभ्यता की कोटि में नहीं रखा है। उन्होंने लिखा है— "बेबिलोनिया की सभ्यतायें मानवता का वह कल्याण न था जो मिस्र में था, भारतीय सभ्यता की-सी परिवर्तनशीलता और महानता न थी और चीन की दृढ़ता और गम्भीरता न थी।"

"The civilization of Babylonia was not as fruitful for huma-nity as Egypt's not as varied and profound as India's not, as subtle and mature as China's."

—Will Durrant.

सारांश

प्राचीनकाल में बेबिलोनिया संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था। जर्मन विद्वानों के अनुसार यहाँ की सभ्यता का उचित मूल्यांकन नहीं हुआ है। बेबिलोन के सम्राटों में सम्राट हम्मूराबी का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इसके युग में कृषि और अन्य क्षेत्रों में बहुत उन्नति हुई। एक विधि-संहिता का निर्माण भी किया गया जिसका विशेष महत्व है। बाबुल के द्वितीय राजवंश (खाल्दी युग) में भी कला और संस्कृति की विशेष उन्नति हुई। 1539 ई० पू० में बेबिलोन का पतन हुआ।

बेबिलोनिया समाज को तीन वर्गों में बाँटा गया था—उच्च वर्ग (अवीलम) मध्यम वर्ग (मुस्केनम्), दास वर्ग। स्त्रियों की दशा सुमेर की सभ्यता की स्त्रियों से

अधिक अच्छी नहीं कही जा सकती थी। उच्च वर्ग की स्त्रियों में पर्दे का प्रयोग किया जाता था। मृतक को जलाया या गाड़ा जा सकता है।

कृषि एवं व्यापार, आय के मुख्य साधन थे। कृषि के लिए सिंचाई की सुन्दर व्यवस्था की गई थी। उद्योग-धन्धों जैसे पशुपालन, वस्त्र बुनना आदि का प्रचलन भी था।

इनके धार्मिक विश्वास सुमेर के लोगों के धार्मिक विश्वासों से बहुत कुछ मिलते हुए थे। पुजारी वर्ग का अब उतना महत्व नहीं था जितना सुमेर सभ्यता के काल में था। धर्म का उद्देश्य भौतिक उन्नति था। यहाँ के लोगों का राजनीतिक दर्शन राष्ट्रीय एकता के सिद्धांत पर आधारित था। देवताओं को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया था और देवताओं की आलोचना करना अपराध माना जाता था।

यहाँ के साहित्य में अधिकतर ऐतिहासिक घटनाओं, कानूनी व्याख्याओं और उद्योग-धन्धों का चित्रण है। 'गिलगामेश का महाकाव्य' बहुत प्रसिद्ध है। 'भाग्य लेख', 'एटन गडरिये की कथा' आदि का नाम भी उल्लेखनीय है। पूजा गीतों और भूत-प्रेतों से छुटकारा पाने के लिये प्रार्थनाओं का भी सृजन किया गया था।

विज्ञान और ज्योतिष के क्षेत्र में इन्होंने बहुत अधिक उन्नति की थी। इन्हें नक्षत्रों का पर्याप्त ज्ञान था। ग्रहण आदि के विषय में भी यह जानते थे। दुर्बीनों और खुर्दबीनों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। इनकी गणना पद्धति दशमलव और षष्टिक प्रणाली पर आधारित थी।

स्थापत्य कला, चित्रकला, मुद्रा निर्माण कला का पर्याप्त विकास हुआ है। बेलु-मठ की जुगरत इमारत और सम्राट नेबुचडरेज्जर का झूलता हुआ बाग इनके विकास के परिचायक हैं। बेबिलोनिया का झूलता हुआ बाग संसार के सात आश्चर्यों में से एक है।

———

4

असीरीय सभ्यता और संस्कृति

(Assyrian Civilization And Culture)

प्रश्न 1—असीरीय सामाजिक और धार्मिक जीवन का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

अथवा

एक सफल शासक के रूप में असुरबनिपाल का मूल्यांकन कीजिये।

अथवा

असुरबनिपाल के व्यक्तित्व तथा कार्यों का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए। क्या वह एक क्रूर शासक था ? विवेचना कीजिये।

अथवा

प्रश्न 4—असीरिया की सभ्यता की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

ईसा से पूर्व 13वीं शताब्दी के अन्तिम चरण और 12वीं शताब्दी के प्रथम चरण में मिस्र के राजवंशों में घोर परिवर्तन हुये और सम्भवतः इसी काल में एशिया माइनर में हित्ती साम्राज्य का अन्त हुआ। बेबिलोनिया में कसाइट वंश का भी पतन 1183 ई० पू० में हो चुका था और 'पाशे के वंश' की स्थापना हुई थी। बेबिलोनिया की दुरावस्था से लाभ उठाकर असीरिया के लोगों ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और राजा असुरदान को अपना नेता स्वीकार किया। इस काल में मिस्र और एशिया माइनर में जो नए राजवंश बने उनमें कालान्तर में असीरिया ही महान शक्तिशाली सिद्ध हुआ और लगभग 500 वर्ष तक असीरियन लोगों का आधिपत्य रहा।

असीरियन साम्राज्य का राजनैतिक इतिहास जानने के स्रोत—असीरियन साम्राज्य का राजनैतिक इतिहास जानने के निम्नलिखित स्रोत हैं—

(1) ग्रन्थ एवं

(2) अभिलेख।

(1) ग्रन्थ—यहूदी बाइबिल और यूनानी इतिहास ग्रन्थ इतिहास जानने के स्रोत हैं। डियेडोरस जो प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार है उसने विस्तारपूर्वक असीरियन के राजनैतिक इतिहास पर प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त हेलेनेस्टिक युग के प्रसिद्ध इतिहासकार ऐबीडेनस ने भी असीरियन के राजनैतिक इतिहास पर विशेष प्रकाश डाला है। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से डियेडोरस और ऐबीडेनस द्वारा गया प्रकाश महत्वपूर्ण नहीं है।

(2) अभिलेख—असीरियन के उत्खनन से प्राप्त सामग्री से भी असीरियन इतिहास के विषय में हमें जानकारी प्राप्त होती है। उत्खनन से प्राप्त अभिलेखों में उस काल की महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिली हैं जिनमें 'समकालीन इतिहास' (दि सिनक्रोनस हिस्ट्री) उल्लेखनीय है। इस अभिलेख को पश्चिमी एशिया का विश्वसनीय अभिलेख माना जाता है। इसके अतिरिक्त अनेकों ऐसे अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनके द्वारा हमें असीरियन के विषय में जानकारी प्राप्त होती है, जिनमें असीरियन सम्राट अपने वार्षिक अभियानों का पूर्ण विवरण उत्कीर्ण कराकर राजकीय संग्रहालय में एकत्र करते थे। असुरबनिपाल के शासनकाल में एक विशाल पुस्तकालय था जिसमें लगभग 30,000 ग्रन्थ थे, यद्यपि ये सभी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं।

असीरिया में तिथिक्रम की कोई भी निश्चित प्रणाली नहीं थी। यदि एक भी तिथिक्रम (लिम्मू की तिथि) निश्चित हो जाए तो अन्य लिम्मुओं की तिथि आसानी से निश्चित की जा सकती है। एक प्राचीन लिम्मू-सूची असुर नगर के उत्खनन से प्राप्त हुई है जिसके आधार पर असीरिया का 1300 ई० पू० तक का तिथिक्रम

स्पष्ट हो चुका है। तिथिक्रम न मिलने का प्रमुख कारण यह है कि वर्ष के प्रथम दिवस को असीरियन सम्राट द्वारा एक भव्य उत्सव का आयोजन किया जाता था जिसमें अभिनय का भी प्राविधान रहता था। अभिनय की प्रमुख भूमिका सम्राट और अन्य भूमिकाएँ पदाधिकारियों द्वारा निभाई जाती थीं। इस महान उत्सव की घोषणा लिम्मू पदाधिकारी के नाम से की जाती थी और उसी के नाम पर वर्ष का नवीन नामकरण किया जाता था।

आरम्भिक काल—इस साम्राज्य की नींव सन् 1276 ई० पू० में शल्नेसर ने डाली। परन्तु वास्तव में असीरियन साम्राज्य का आरम्भिक काल तिगलथ पिलेसर से माना जाता है। इस काल में पश्चिमी एशिया के सभी देश नए साम्राज्य से शंकित थे और 12वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में असीरिया वालों का एक विशाल साम्राज्य स्थापित हो गया था। तिगलथ पिलेसर प्रथम ने मीड़ों, हितियों आदि जातियों को अपने अधीन करके भूमध्य सागर के पश्चिमी भाग में लूट-खसोट की तथा दक्षिण में बेबिलीन पर अपना अधिकार करके अपने को सुमेर और अक्काद का स्वामी घोषित किया। उसने अपनी राजधानी बदली तथा दो विशाल मन्दिरों का निर्माण कराया। व्यक्तिगत जीवन में वह कुशल शेरखाँ था। कहा जाता है कि उसने लगभग 1000 शेर मारे थे।

दुर्बलता का युग

तिगलथ पिलेसर के उपरान्त 200 वर्ष के लिये पुनः असीरिया राज्य में अव्यवस्था और दुर्बलता का साम्राज्य हो गया। इस काल में अर्द्ध सभ्य सेमेटिक जाति ऐरेमियन ने तिगलथ क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया। तिगलथ के उत्तराधिकारी इतने अयोग्य और डरपोक थे कि वे मियनों के वेग को न रोक सके फलस्वरूप बेबिलोनिया और असीरिया का मध्य भाग इनके हाथ से निकल गया।

राज्य में दुर्बलता का प्रमुख कारण यह था कि तिगलथ पिलेसर जीते हुए राज्यों पर अपना स्थायी अधिकार नहीं करता था बल्कि लूटमार करना ही उसका ध्येय था। उसका शासन कठोर था जिसने पड़ोसियों तथा अन्य जातियों को पूर्णरूप से असन्तुष्ट कर दिया था।

असीरियन साम्राज्य का द्वितीय खण्ड

साम्राज्य में द्वितीय बार शक्ति भरने वाला सम्राट असुर-नसिर-पाल द्वितीय था। इतिहासकारों ने असीरियन साम्राज्य का प्रारम्भ बहुतांश में उसी के शासन काल से माना है क्योंकि उसने साम्राज्य में कई प्रकार के स्थायी सुधार किए—

(1) सबसे पहले सेना का सुधार किया गया। सेना की नई व्यवस्था और दृढ़ता इसी के शासन में हुई।

(2) असुर-नासिर-पाल को संसार का क्रूरतम शासक कहा जाता है क्योंकि वह अपने शत्रुओं को किसी प्रकार की क्षमा प्रदान करना अनुचित समझता था। विजित देशों के बच्चों को जिन्दा जलाना, नागरिकों के हाथ, पैर कटवाकर उन्हें सड़क पर मरने देना और राजाओं को कष्ट देने के उपरान्त आग में भुनवा डालना उसके साधारण कार्य थे। एक इतिहासकार ने लिखा है कि उसने एक हाथ में मसाल

और दूसरे में तलवार लेकर आंधी की भाँति अपनी विजय यात्रा आरम्भ की। फरात नदी को पार करके वह फिनलैंड तक जा पहुँचा।

(3) बर्बरता के अतिरिक्त उसमें कला से प्रेम और इतिहास के प्रति विशेष श्रद्धा थी।

शलमनेसर

असुर-नसिर-पाल का पुत्र शलमनेसर तृतीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने अपने पिता के समान ही कई देशों को जीता जिसमें सीरिया, इजराइल, बेबिलोनिया और फिनीशिया आदि प्रसिद्ध हैं। पिता के समान ही वह भी क्रूर शासक था परन्तु साम्राज्य प्रबन्ध में उसके समान योग्य भी कोई नहीं था। उसकी मृत्यु पर उसका साम्राज्य अत्यन्त शांतिपूर्ण और सुरक्षित दिखाई देता था।

शलमनेसर की मृत्यु के उपरान्त उसका कोई भी उत्तराधिकारी, इस योग्य नहीं हुआ जो जीते हुए देशों को संगठित रख सकता। राज्य के गृह-युद्ध और राजगद्दी के लिये युद्ध तथा पुजारी वर्ग के असन्तोष ने दूसरे असीरियन वंश को खोखला बना दिया।

असीरियन साम्राज्य का तृतीय खण्ड

इस साम्राज्य का निर्माता तिगलथ पिलेसर तृतीय था। अपने 18 वर्षों (745-727 ई० पू०) के शासन में उसने फारस की खाड़ी, अर्मेनियाँ और भूमध्य सागर तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। किसी भी असीरियन सम्राट का इतना बड़ा साम्राज्य नहीं था।

अपने साम्राज्य को दृढ़ बनाने के लिये उसने स्थायी सेना का निर्माण किया और पास के विजित देशों को प्रान्तों के रूप में बदला।

साम्राज्य में विद्रोहों को दबाने के लिये उसने जनता के आदान-प्रदान की प्रथा आरम्भ की। एक राज्य की जनता को किसी दूसरे दूर के राज्य में बसने के लिये विवश किया जाता था जिससे क्षेत्रीय संगठन होने में कठिनाई पड़ती थी।

तिगलथ पिलेसर तृतीय के पश्चात् उसका उत्तराधिकारी शलमनेसर पंचम (727-722 ई० पू०) हुआ। उसके शासन-काल में इजराइल और टायर के विद्रोहों को सफलतापूर्वक दबाया गया परन्तु इस शासन में योग्यता का अभाव था और शासक पर उसके सेनापति शर्रुकिन ने अधिकार कर लिया जो शलमनेसर की मृत्यु के उपरान्त शासक बना।

सारगोनी वंश

इस वंश की संस्थापना करने वाला शर्रुकिन था। इसने आगे चलकर अपने को सारगोन द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध किया। जब वह गद्दी पर बैठा, पड़ोसी राज्यों की सहायता से बेबिलोन ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी और पश्चिम प्रांतों में भी विद्रोह होने लगे थे। मन्नाई प्रदेश और कार्शेमिश आदि स्थानों में विद्रोह की आग भड़की। सारगोन ने इजराइल के विद्रोह का पूरे जोर से दमन किया और वहाँ के बहुत से नागरिकों को मीडिया में रहने के लिये भेज दिया। मन्नाई प्रदेश के शासक को हराकर उसने उस प्रदेश को फिर से अपने वश में किया। कार्शेमिश को

भी अपने अधीन किया और रूसस को पराजित करने में सफलता प्राप्त की। इस असफलता के कारण रूसस ने आत्महत्या कर ली। मुश्की के शासक ने सारगोन से दोस्ती में ही अपना हित समझा। बेबिलोन के विद्रोह को शांत करने के लिये उसने मर्दुक बलदान को हराकर फारस की खाड़ी तक अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार फिनीशियन नगरी जूड़ा राज्य को छोड़कर उसका साम्राज्य साइलीशिया से लेकर फारस की खाड़ी तक फैल गया। सारगोन ने कई नगर बसाए और कलात्मक भवनों तथा मन्दिर का निर्माण करवाया।

सेनाकेरिब

सारगोन की मृत्यु के उपरान्त सेनाकेरिब या सिन अरबी-इरिब गद्दी पर बैठा। यद्यपि वह अपने पिता की तरह महत्वाकांक्षी था परन्तु उसमें दूरदर्शिता का अभाव था। कई बार विद्रोह होने के कारण उसने बेबिलोन को पूरे तौर से विध्वंस कर दिया। बेबिलोन की सहायता एलमियों ने की थी इसी कारण सेनाकेरिब ने उन पर 689 ई० पू० आक्रमण किया और एलम के पास के प्रदेश को खूब लूटा। एलम असीरिया का घोर शत्रु बन गया।

सेनाकेरिब का सबसे मूर्खतापूर्ण कार्य मिस्र पर आक्रमण करने का प्रयास करना था। यहूदी जनश्रुतियों से ज्ञात होता है कि उसने विशाल सेना लेकर 671 ई० पू० में मिस्र पर आक्रमण करने के लिये यात्रा की परन्तु महामारी फैल जाने के कारण मिस्र की सीमा के पास से वह वापस लौट आया।

असरहद्दीन

सेनाकेरिब का वध उसके पुत्रों ने षड्यन्त्र द्वारा किया। सबसे छोटा पुत्र असरहद्दीन अपने अन्य भाइयों को मारकर 681 ई० पू० में गद्दी पर बैठा। यह शासक अपने पिता से अधिक नीतिवान था। बेबिलोन नगर को फिर से बनवाकर उसने वहां की जनता को अपने वश में किया। उसने आक्रमणकारी किम्मरियन, सीथियन और मीडिया जातियों को कुचलने के लिये अभियान किया। सीडोन नगर का विध्वंस करता हुआ वह मिस्र पहुँचा और 671 ई० पू० में उसने मिस्र पर अधिकार प्राप्त कर लिया परन्तु मिस्र वालों के हृदय को न जीत सका जिसके कारण उसके लौटते ही वहाँ विद्रोह हो गया और जब एसरहद्दीन उसे दबाने के लिये बढ़ा तभी मार्ग में बीमार होकर मर गया।

असुरबनिपाल

सारगोनी वंश का चरमोत्कर्ष—असुरबनिपाल—एसरहद्दीन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र असुरबनिपाल 669 ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने 626 ई० पूर्व तक राज्य किया। असुरबनिपाल असीरियन युग का सबसे प्रतिभाशाली और अन्तिम सम्राट था इसने 679 ई० पू० से 626 ई० पू० तक शासन किया। उसके विभिन्न कार्यों की चर्चा यहाँ हम संक्षेप में कर रहे हैं—

(1) **विजयाभियान**—असुरबनिपाल एक वीर और महत्वाकांक्षी सम्राट था। उसने तलवार के बल पर शासन स्थापित करना चाहा। सबसे पहले उसने मिस्र के अतिक्रमणों से परेशान होकर मिस्र पर आक्रमण की योजना बनाई। पहली बार

वह अपने आक्रमण में सफल न हुआ। इसके उपरान्त उसने 667 ई० में मिस्र पर पुनः आक्रमण किया। इस बार उसे सफलता मिली। उसने मिस्र के धार्मिक केन्द्रों को खूब लूटा और हजारों वर्ष पुरानी उसकी राजधानी थीबी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। थीबी के एक विशाल मन्दिर में बहुत अधिक धन था। उसने यह सारा धन लूटकर अपने अधिकार में कर लिया। थीबी को लूटने के बाद वह वहाँ अपना एक गवर्नर नियुक्त करके स्वदेश लौट आया।

असुरबनिपाल ने ईलम पर भी आक्रमण किया। कहा जाता है कि ईलम का राजा असुरबनिपाल के बढ़ते हुये वैभव को सहन न कर सका और उसने असीरिया पर आक्रमण कर दिया। असुरबनिपाल ने उसे बाहर खदेड़ दिया। तत्पश्चात् उसने अपनी सेना के साथ ईलम की ओर प्रस्थान किया। ईलम पहुँचकर उसने वहाँ के मनुष्यों के साथ पशुओं का-सा व्यवहार किया और उसने ईलमी सेनापति दनान् का निर्दयतापूर्वक वध कर दिया और उसके शरीर के टुकड़ों को समस्त देश में बँटवा दिया। ईलमी सम्राट का सर उस समय काटा गया जब वह अपनी रानियों के साथ अपने राज-प्रासाद में भोजन कर रहा था। उसके काटे हुए सिर को एक खम्भे पर लटका दिया गया। इस प्रकार उसने ईलम में बहुत अधिक अत्याचार किए। यही नहीं उसने ईलम पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् समस्त प्रदेश में नमक बिछवा दिया जिससे कि ईलम कभी भी पनप न सके। वह अपने साथ ईलम के राज-परिवार के सदस्यों, कर्मचारियों, कारीगरों, घोड़ों, खच्चरों और गधों आदि को स्वदेश ले गया।

असुरबनिपाल ने अपने बाहुबल से एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की। इस साम्राज्य में असीरिया, बाबुल, आर्मीनिया, मीडिया, फिलिस्तीन, फीनिशिया, सीरिया, सुमेर एवं मिस्र सम्मिलित थे।

(2) **शासन-प्रबन्ध**—असुरबनिपाल विभिन्न नगरों को अपने झण्डे के नीचे लाने में तो सफल हुआ परन्तु वह एक सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना न कर सका। उसके शासन-काल में प्रत्येक नगर को स्वायत्त शासन का अधिकार प्राप्त था। प्रत्येक क्षेत्र अपने विधान के अनुसार शासित होता था। इस प्रकार असुरबनिपाल के साम्राज्य की प्रत्येक इकाई शासन-प्रबन्ध, विधान, धर्म, न्याय आदि की दृष्टि से स्वतन्त्र थी।

(3) **सेना**—असुरबनिपाल का साम्राज्य अत्यन्त विशाल था। फलस्वरूप सदैव विद्रोह की आशंका रहती थी। यही कारण था कि असुरबनिपाल ने एक विशाल सेना का गठन किया था। उसकी सेना रथों, घुड़सवारों और पैदल सैनिकों से सुसज्जित थी। सैनिक दुर्गों पर चढ़ाई करने में अत्यन्त सिद्धहस्त थे और वे युद्ध का रोमवासियों जैसा सुव्यवस्थित ज्ञान रखते थे। असुरबनिपाल स्वयं सेना का नेतृत्व करता था और सैनिकों को सन्तुष्ट रखने के लिये लूट से प्राप्त हुए धन को बांट देता था।

(4) **दण्ड-विधान**—असुरबनिपाल ने हम्मूराबी की विधि-संहिता से मिलते-जुलते दण्ड-विधान को अपनाया था। अपराधियों के लिये बेगार, कोड़े लगवाना, नाक कटवाना, नपुंसक कर देना, आँख और जबान खिंचवा लेना और सिर कटवा

देना आदि दण्ड निर्धारित किए गए थे। अधिकतर न्यायालयों द्वारा न्याय होता था। कभी-कभी न्यायाधीश नदी पर खड़े हो जाते थे और अपराधी को बांधकर नदी में फेंक दिया जाता था। अनधिकृत मैथुन और कुछ इस प्रकार की चोरियाँ अत्यन्त जघन्य अपराध समझे जाते थे।

(5) **युद्ध-बन्दियों से व्यवहार**—असुरबनिपाल का युद्ध-बन्दियों से अत्यन्त कठोर व्यवहार होता था। उन्हें झुककर चलना होता था। कभी-कभी उनके खोपड़ी पर डण्डे बरसाए जाते थे। उनके नाक, कान और हाथ काट लेने एवं ऊँचे स्थान से ढकेल देने और जीवित जला दिए जाने के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।

(6) **असुरबनिपाल का धर्म**—असुरबनिपाल का प्रमुख देवता 'अशुर' था और वह अपनी सारी घोषणायें 'अशुर' के नाम से ही प्रसारित करता था। असुरबनिपाल अपने को भगवान 'शक्य' (सूर्य का अवतार) मानता था। वह पुरोहितों का अत्यधिक आदर करता था और उनके भरण-पोषण के लिये बहुत बड़ी धनराशि खर्च करता था। उसने अनेक वैभवशाली मन्दिरों का निर्माण करवाया।

(7) **सांस्कृतिक उन्नति का प्रयास**—असुरबनिपाल को एक क्रूर और अत्याचारी शासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परन्तु उसने सांस्कृतिक क्षेत्र में उन्नति का भी प्रयास किया। साहित्य और कला की उन्नति की दृष्टि से असुरबनिपाल का काल अपना अलग स्थान रखता है। वह स्वयं एक प्रकाण्ड पण्डित नहीं था परन्तु फिर भी साहित्य आदि में उसकी विशेष अभिरुचि थी। ज्योतिष, गणित, व्याकरण आदि के क्षेत्र में उसके युग में पर्याप्त उन्नति हुई। अनेक उत्तम पुस्तकों का निर्माण हुआ जिनके फलस्वरूप असीरिया वालों का मस्तक ऊँचा उठ गया।

असुरबनिपाल ने नगर की सजावट और मन्दिरों के पुनरुद्धार में भी अत्यधिक अभिरुचि दिखलाई। उसकी राजधानी अत्यन्त भव्य एवं सुन्दर थी। उसके समय में कुछ रिलीफ-चित्र भी बनाए गए।

(8) **असुरबनिपाल का पुस्तकालय**—असुरबनिपाल अपने पुस्तकालय को अपने साम्राज्य की सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु मानता था। उसने विभिन्न स्थानों से लेखकों को बुलवा कर समस्त असीरीय और बाबुलीय साहित्य को लिखवा कर अपने पुस्तकालय में रखवाया था। दूसरे नगरों के पुस्तकालयों से भी अच्छे-अच्छे ग्रन्थ मंगवाकर उसने उनकी प्रतिलिपियाँ करवायीं और उन्हें अपने पुस्तकालय में रखवाया। उसके पुस्तकालय में लगभग तीस हजार साहित्यिक और ऐतिहासिक अभिलेख थे। पुस्तकालय के ग्रन्थों में गणित, ज्योतिष, दर्शनशास्त्र, धर्म, व्याकरण, कविता, इतिहास, विज्ञान आदि से सम्बन्धित ग्रन्थ मुख्य थे। असुरबनिपाल स्वयं 'तुपशर्रुति' (मिट्टी की पाटियों पर लिखने की कला) में दक्ष था।

क्या असुरबनिपाल अत्यधिक क्रूर और अत्याचारी था?—मिस्र और ईलाम आदि में किए गए अत्याचारों के फलस्वरूप अनेक विद्वानों ने असुरबनिपाल को अत्यन्त क्रूर और अत्याचारी शासक बतलाया है। उन्होंने लिखा है कि असुरबनिपाल में मानवता नाम की कोई चीज नहीं थी और वह जघन्य हत्यारा एवं पापी था। असुरबनिपाल की क्रूरता एवं निष्ठुरता का परिचय उसके एक अभिलेख में मि

जाता है। असुरबनिपाल ने स्वयं कहा है कि—"ईलम के 3,000 सैनिकों को मैंने मौत के घाट उतार दिया……अनेक युद्ध बन्दियों को मैंने अग्नि में जला दिया, उनमें से कुछ की अंगुलियाँ काट डालीं और कुछ के नाक तथा कान काट डाले। तमाम लोगों की मैंने आँखें निकाल डालीं। मैंने एक ढेर जिन्दा शत्रुओं का और एक ढेर मुर्दा शत्रुओं का लगवाया। अनेकों के सिर कटवाकर काष्ठ स्तम्भों पर लटकवा दिए। युवक तथा युवतियों को जीवित आग में जलवा दिया।" यह ठीक है कि असुरबनिपाल ने अपने शत्रुओं के साथ अत्यन्त कठोरता का व्यवहार किया और उनकी चमड़ी उधेड़ दी परन्तु उसने यह कार्य साम्राज्य विस्तार और विद्रोह को दबाने के लिये ही किया। उसमें मानवता थी ही नहीं और उसने शांति के लिये कोई प्रयास ही नहीं किया यह कहना ठीक नहीं। वास्तव में उसने अपने बाहुबल से अपने साम्राज्य में शान्ति स्थापित की थी। उसने अपने साम्राज्य में शान्ति स्थापित करने का हर सम्भव प्रयास किया और उसे इस बात पर गर्व था। विल ड्यूराण्ट ने उसके विषय में लिखा है—

"He boasted of the peace that he had established in his empire, and of the good order that pre vailed in its, cities, and the boast was not without truth."

—Will Durrant.

साहित्य और कला की उन्नति के लिए उसके द्वारा किए गये प्रयासों से यह स्पष्ट है कि वह कोरा अत्याचारी और क्रूर नहीं था बल्कि उसमें मानवता भी थी।

असुरबपिनाल के अन्तिम दिन—असुरबनिपाल के अन्तिम दिन अच्छे नहीं बीते। उसके साम्राज्य में चारों ओर अशान्ति व्याप्त हो गई। राज्य परिवार में भी अशान्ति फैल गई। इस अशान्ति को दूर करने के लिए उसने हर सम्भव प्रयास किया परन्तु वह सफल न हो सका और बीमार पड़ गया। कलवाइरन ने लिखा है कि अपने अन्तिम काल में उसने अपने राजप्रासाद में आग लगा दी और 626 ई० पूर्व वह जल मरा।

असुरबनिपाल का मूल्यांकन—असुरबनिपाल को असीरियन युग में वही गौरव प्राप्त है जो बेबिलोनियन युग में हम्मूराबी को प्राप्त है। असुरबनिपाल एक महान साम्राज्य विस्तारक के रूप में हमारे सम्मुख आता है। सांस्कृतिक उन्नति के लिये भी उसने जो प्रयास किए वह निःसन्देह प्रशंसनीय हैं। असुरबनिपाल की मृत्यु के पश्चात् कोई भी ऐसा शासक न हुआ जो उसके द्वारा बनाये हुए साम्राज्य को सुरक्षित रख सकता और निरन्तर असीरियनों का पतन होता गया।

साम्राज्य का पतन

असुरबनिपाल के जीवन के अन्तिम दिनों में ही साम्राज्य के पतन के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे थे। मिस्र ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया था, मीडिया में शक्तिशाली राज्य की स्थापना हो गई थी। सम्राट में बर्बर जातियों और ईरान की नवोदित जातियों की रोकने की कोई शक्ति नहीं रह गई थी।

असुरबनिपाल की मृत्यु होते ही बेबिलोन में विद्रोह हुआ। उसके भ्रष्ट-उत्तराधिकारियों के कारण, नेबोपोलस्सर तथा उवक्षत्र ने असीरिया के विरुद्ध संघ

का निर्माण किया और 615 ई० पू० में असीरिया पर आक्रमण कर दिया। राजधानी निनिवेह का पतन 3 वर्ष पहले ही हो चुका था अतः असुरबनिपाल के अन्तिम उत्तराधिकारी को इस आक्रमण के कारण जान गँवानी पड़ी। मीडिया और बेबिलोन ने असीरियन साम्राज्य को हस्तगत करके हिस्सा बाँट कर लिया। विश्व के इतिहास के किसी भी नगर की बर्बादी इस प्रकार से नहीं हुई होगी, जिस प्रकार से असीरियनों की राजधानी निनेवेह को हुई थी।

पतन के कारण—असीरियन साम्राज्य के पतन के कारण निम्नलिखित थे—

(1) सम्राटों ने प्रान्तीय शासकों की नियुक्ति की थी। शासक अधिकतर राज्य-परिवार के होते थे। उनका संघर्ष पुजारी वर्ग से हमेशा बना रहा।

(2) असीरियन जाति के लोग अर्द्ध-सभ्य थे और शासक क्रूरता के साथ व्यवहार करते थे।

(3) साम्राज्य की आरम्भिक अवस्था में सम्राटों ने विजित देशों को प्रांतीय रूप में संगठित करने का प्रयत्न नहीं किया।

(4) शासकों ने विशेषकर तिगलथ पिलेसर तृतीय के उत्तराधिकारियों ने प्रान्तों से कर और सैनिक सेवा में राज्य के अंश को बहुत बढ़ा दिया था।

(5) विजित देशों की जनता के परिवर्तन ने लोगों में घोर निराशा और राज्य के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न कर दी।

(6) केन्द्रीय शासकों का व्यवहार प्रान्तों के प्रति अच्छा नहीं था जिस कारण जब भी मौका मिलता था प्रांत के लोग विद्रोह कर देते थे।

(7) असीरियन सम्राटों की आन्तरिक व्यवस्था भी बहुत दोषपूर्ण थी।

(8) असीरिया में आरम्भ से ही सैनिकों और पुरोहितों के दो दल थे। सम्राट यह प्रयत्न करता था कि दोनों दलों का सहयोग प्राप्त करता रहे। धार्मिक दल की भी दो शाखायें थीं—एक असुर दल और दूसरा मर्दुक दल। मर्दुक बेबिलोनिया का प्रमुख देवता था और असीरियन भी उसे सम्मान की दृष्टि से देखते थे। परन्तु सारगोन के पुत्र सेनाकेरिब ने बेबिलोन को ध्वस्त किया उस समय मर्दुक को असुर का अनुगामी घोषित किया और मर्दुक दल की सहानुभूति सम्राट ने खो दी। यद्यपि उसके पुत्र ने इस भूल को संभाला परन्तु यह स्पष्ट है कि सम्राट सैनिक और धार्मिक दलों को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं कर सका।

(9) असीरियन सभ्यता का सबसे बड़ा दोष आर्थिक जीवन है। उन्होंने आर्थिक जीवन का आधार व्यापार न बनाकर कृषि कर्म को बनाया था। परन्तु लगातार युद्धों के कारण यह आधार टूट गया। ज्यों-ज्यों सिपाहियों की संख्या बढ़ी कृषकों की संख्या घटी और असीरियन राज्य के आर्थिक जीवन का आधार लूट खसोट रह गया जिसके कारण एक बार की पराजय में ही सारी आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई।

(10) असीरिया के पतन में ईरान, ईलम और बाबुल का बहुत बड़ा हाथ

था। यह शक्तियाँ उस समय मिल गई थीं जब कि असीरियन सम्राट युद्ध-पक्ष से दूर हट चुके थे।

(11) असीरिया का प्रधान सेनापति नबीपलेश्वर ईरानी सेना से मिल गया जिससे सारी असीरियन सेना भी ईरानियों की ओर हो गई।

(12) दैवी प्रकोप ने भी असीरिया को पतन के गर्त में डाल दिया। दो वर्ष तक असीरिया के नीनवे का घेरा सहन किया परन्तु अचानक दजला नदी में बाढ़ आ गई और धारा की मोड़ ने ही नीनवे की दीवार को तोड़ दिया। दीवार टूटने से ईरानी नीनवे में घुस गए। अन्त में पूरा नीनवे नगर जला दिया गया और असीरिया सदैव के लिये समाप्त हो गया।

पतन की चरम सीमा—जिस प्रकार असीरियनों ने बेबिलोन और सूसा के नगरों को विध्वंस किया था उसी प्रकार प्रतिहिंसा की भावना ने 'विद्रोहियों को निनेवेह के विध्वंस करने के लिये प्रोत्साहन दिया। असुरबनिपाल के बनाए हुए राज-महल मन्दिर, बाजार और पुस्तकालय इतिहास की एक कहानी मात्र होकर रह गए। सेनाकेरिब के महल और उसके पास ईस्टर का मन्दिर खाक में मिला दिए गए और मन्दिर की अधिष्ठात्री अति प्राचीन मूर्ति खण्डित कर दी गई। नेबू का मन्दिर भी इसी प्रकार नष्ट कर दिया गया। राजधानी के निवासियों का सामूहिक वध किया गया और असुरबनिपाल के उत्तराधिकारी ने जलते हुए राजमहल की लपटों में अपने शरीर को भेंट करके सम्मान की रक्षा की। शायद विश्व के इतिहास में इतना दुखमय अन्त किसी अन्य नगर का नहीं हुआ है।

शासन-प्रबन्ध

असीरिया का साम्राज्य अत्यन्त विशाल था। इसमें मीडिया, फिलीस्तानी, सुमेर, एलम, मिस्र, फिनीशिया, आर्मेनिया, सीरिया आदि देश सम्मिलित थे। इतना बड़ा साम्राज्य इसके पहले कभी नहीं था। असीरियन जाति के लोग अपने सम्राट को एकता का प्रतीक मानते थे और यही कारण था कि सम्राट की शक्ति सर्वोच्च थी और केन्द्रीय शासन दृढ़ था। इन सम्राटों की शक्ति इतनी अधिक इस कारण भी थी कि असीरिया में वंशानुगत पदों के प्रमाण यदा-कदा ही मिलते थे। उदाहरण के लिये 852 ई० पू० से लेकर 752 ई० पू० तक 5 प्रधान सेनापति इस साम्राज्य में हुए। परंन्तु कोई भी सेनापति का उत्तराधिकारी उसका वंशज नहीं था। असीरियन विश्वास रखते थे कि देश में केवल एक ही राजा हो सकता था। सम्राट को लिम्मू भी कहा जाता था। स्थानीय पदाधिकारी लिम्मू के कृपापात्र बनना अपना धर्म समझते थे और इस कारण राजा के विरोध में नहीं खड़े होते थे।

केन्द्रीय शासन प्रवन्ध

यद्यपि राजा की शक्ति किसी प्रकार प्रतिबन्धित नहीं थी परन्तु व्यवहार में पुजारी वर्ग का राजा पर अधिक प्रभाव पड़ता था। सारा राज्य असीरिया के सर्वोच्च देवता असुर की सम्पत्ति माना जाता था। सभी कानून उसी के नाम पर बनते थे और सभी युद्ध उसी के नाम पर लड़े जाते थे। राजा सूर्य देवता का अवतार माना जाता था। पुजारियों की वाणी देव-वाणी समझी जाती थी और कोई भी सम्राट उनके विरुद्ध मत नहीं प्रकट करता था। ऊँचे पुजारी पदों पर केवल सामन्त ही

नियुक्त किए जाते थे। इस प्रकार असीरियन साम्राज्य में राजा की निरंकुशता का सम्मान करते हुए भी उसे स्वेच्छाचारी बनने से रोका गया था।

प्रान्तीय शासन प्रबन्ध

असीरियन साम्राज्य का ज्यो-ज्यों विस्तार होता गया, प्रांतों की संख्या बढ़ी व उनके प्रबन्ध में भी कठिनाइयाँ होने लगीं। प्रांत तीन श्रेणियों में विभाजित थे—

1. प्रति वर्ष केन्द्रीय सरकार को निश्चित कर देने वाले प्रान्त थे—इनकी स्थिति अन्य राज्यों के साधारण सामन्त राज्यों की सी थी।

2. दूसरी श्रेणी के राज्यों को मजदूर और कर दोनों ही देने पड़ते थे तथा सम्राट का एक प्रतिनिधि भी रहता था जिसे 'जबिलकुदुरी' कहते थे।

3. तीसरी श्रेणी के राज्य पूर्णतया सम्राट के अधीन थे। उनका गवर्नर शक्नु या उरसु कहलाता था। पहली और दूसरी श्रेणी के प्रांतों को अपने आन्तरिक मामलों में बहुत कुछ स्वतन्त्रता रहती थी परन्तु तीसरी श्रेणी के प्रांतों में शक्नु की आज्ञा ही कानून होती थी। आगे चलकर बड़े-बड़े प्रांतों को छोटे जिलों में बांटा गया जिन्हें पख्ती कहते थे और उनकी सहायता के लिये अन्य पदाधिकारी भी होते थे। तिलगथ पिलेसर ने जीते हुए प्रांतों की जनता को दूर देशों में बसाने का भी प्रबन्ध किया जिनके कारण नागरिकों को विद्रोह करने का अवसर नहीं मिलता था क्योंकि नागरिकों की शक्ति नये वातावरण में रहने के प्रबन्ध में लग जाती थी।

राजकीय पदाधिकारी—असीरिया के शासन को सुचारु रूप से चलाने हेतु सम्राट द्वारा अनेक पदाधिकारियों की नियुक्तियाँ की जाती थीं। ये पदाधिकारी वंशानुगत नहीं होते थे। पदाधिकारियों में सेनापति का स्थान प्रमुख था कारण कि प्रत्येक सम्राट युद्ध में अधिक रुचि लेते थे। महन्तों तथा पुजारियों की भी प्रधानता थी। असीरियन सम्राट के प्रमुख अधिकारी प्रधान मंत्री, प्रधान सेनाध्यक्ष, नगराधिपति, प्रान्तीय सामन्त, भण्डाराध्यक्ष राजभवनाध्यक्ष, शिष्टाराध्यक्ष आदि होते थे।

सैन्य-संगठन—असीरियन राज्य में सेनाओं का संगठन अति उत्तम था। युद्ध में हारने जीतने पर सेना के संगठन में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता था। सारगोनी युग में असीरिया में दो प्रकार के सैनिक थे—

1. सैनिक शिक्षा प्राप्त किये हुये लोग
2. राष्ट्रीय सेना के सदस्य

प्रत्येक नागरिक को सेना में काम करना पड़ता था यदि नागरिक काम न करे तो अपने स्थान पर किसी दास को भेजना पड़ता था या पर्याप्त धन देना पड़ता था प्रान्त की सुरक्षा के लिए प्रत्येक गवर्नर के पास निजी सेना रहती थी। राष्ट्रीय सेना में अनिवार्य रूप से काम करने के लिए सैनिक भर्ती का काम अफसरों द्वारा किया जाता था। वही लोग भर्ती किये जाते थे जिन्हें युद्ध-कला का कुछ ज्ञान था। सैनिक सेवा के काल में सैनिक अपने निजी कार्य कृषि और दस्तकारी से मुक्त रहते थे। केन्द्रीय सरकार उनके भोजन, वस्त्र और वेतन का प्रबन्ध करती थी। युद्ध में सफलता होने पर लूट का अधिकांश धन सैनिकों में बांट दिया जाता था।

युद्ध के लिये सेना के कई भाग किये जाते थे। सिपाहियों का विभाजन रथी अश्वारोही और पैदल सैनिकों में किया जाता था। अन्य कार्य करने के लिए श्रमिक और गुप्तचर विभाग रक्खे जाते थे। अनुशासन बनाये रखने के लिये सेना के अंगों को 50 और उससे घटकर 10-10 सैनिकों की टुकड़ियों में बाँट दिया जाता था।

युद्ध-चातुर्य—असीरियन राज्य में युद्ध का अभियान केन्द्रीय कैम्पों द्वारा होता था। देश की सुरक्षा की समुचित व्यवस्था करने के उपरान्त ही आक्रमणात्मक युद्ध किये जाते थे वे शत्रु पर तेजी के साथ और अनायास आक्रमण के पक्षपाती थे तथा घेरा डालने की कला में पटु थे। द्रुतगामी दल के लोग पहियों की चलने वाली गाड़ियों पर चबूतरे बनाते थे जिन पर बैठकर शत्रुओं पर निर्भय होकर आक्रमण करते थे। सिपाही ताम्र और लोहे के कवच पहनते थे, सामन्त लोग रथों में बैठकर लड़ते थे। सम्राट और सेनापति भी युद्ध में व्यक्तिगत रूप से भाग लेते थे।

विजय प्राप्त करने के बाद असीरियन राजा शत्रुओं के नगरों को जला देते थे। सिपाही जितने शत्रुओं का वध करता था उतना अधिक इनाम पाता था। बन्दी बनाने के झंझट से मुक्ति पाने के लिये ही यह ढंग अपनाया गया था। शत्रु-सामन्तों के हाथ पैर आदि काटकर और उनकी आंखें फोड़कर उन्हें मीनार के ऊपर से फेंक दिया जाता था या परिवार समेत उन्हें आग में भस्मीभूत कर० दिया जाता था। ये लोग बड़े क्रूर थे। अपनी क्रूरता का परिचय असुरबनिपाल ने एक लेख में दिया है। वह अपने शत्रुओं पर किये गये अत्याचार के विषय में लिखता है—

"उनके तीन हजार सैनिकों को मैंने मौत के घाट उतार दिया······बहुत से बन्दियों को मैंने आग में जला दिया······कुछ की मैंने अँगुलियाँ काट डालीं और कुछ की नाक तथा कान काट डाले। बहुतों की मैंने आँखें निकाल लीं। मैंने एक ढेर जीवित शत्रुओं का और एक मृत शत्रुओं के सिरों का लगवाया। बहुतों सिरों को नगर में काष्ठ-स्तम्भों पर लटकवा दिया। उनके युवकों और युवतियों को मैंने जिन्दा जलवा दिया।"

दण्ड-व्यवस्था और कानून—असीरिया के कानून पर प्रकाश डालने वाले कुछ अभिलेख अशुर स्थान से मिले हैं। अधिकांश अभिलेख 12वीं-13वीं शताब्दी ई० पू० के हैं। इन अभिलेखों का सम्बन्ध स्त्रियों, भूमि-व्यवस्था और विश्वासघात से है। विद्वानों का विचार है कि असीरियन विधि-संहिता का प्रारम्भ स्वतन्त्र रूप से हुआ और दण्ड-व्यवस्था बेबिलोनिया से अधिक कठोर और बर्बर थी। विल ड्यूराण्ट ने लिखा है—"साधारणतया असीरिया का न्याय विधान अति प्रारम्भिक व्यवस्था का था और बाइबलोनिया से निकृष्ट था। बाइबलोनिया का न्याय-विधान अवस्था से अधिक आगे बढ़ा हुआ था।"

"In general, Assyrian law was less secular and more primitive than the Babylonian Code of Hammurabi, which apparenty preceded it in time."
—Will Durrant.

यह भी कहा जाता है कि असीरियन विधि-संहिता किसी प्राचीनतम विधि संहिता के आधार पर बनी थी। यह अनुमान किया जाता है कि यदि नहीं तो

कुछ प्रान्तों में अवश्य असीरियन विधि-संहिता का प्रयोग किया जाता था क्योंकि इससे निर्धन जनता और व्यापारियों को सहायता मिलती थी ।

विधि-संहिता निर्मम दण्ड की प्रथा थी; जैसे अपराधी की जीभ निकालना, कोड़े मारना, नाक-कान काट लेना, बेगार लेना अथवा उसे नपुंसक कर देना। कुछ विषयों में वादी स्वयम् कानून अपने हाथ में ले लेता था । यदि कोई दूसरा पुरुष उसकी पत्नी के साथ व्यभिचार करता था तो वह स्वयं उसका वध कर सकता था। गर्भपात कराने वाली स्त्रियों को कठिन दण्ड दिया जाता था । पत्नी पर झूठा कलंक लगाने वाले मनुष्य को नदी में फेंक दिया जाता था । व्यापार के विषय के अपराधों का सम्बन्ध धर्म से माना जाता था और धर्म के अनुसार अपराधियों को दण्डित किया जाता था ।

सामाजिक व्यवस्था

असीरियन समाज पर प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता क्योंकि जो अभिलेख प्राप्त हुए हैं उनका अधिकतर सम्बन्ध राज-परिवार से है । सैनिक साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण करने वाली असीरियन सभ्यता के जीवन संघर्षपूर्ण बर्बर तथा क्रूर था किन्तु इसके विपरीत हम देखते हैं कि असीरिया का सामाजिक संगठन वैज्ञानिक आधार वर्गीकृत था और तत्कालीन असीरियन सभ्यता की प्रगति का मूल केन्द्र था । असीरियन साम्राज्य का वर्ग विभाजन निम्न प्रकार था—

(1) **वर्ग-विभाजन**—प्राप्त अभिलेखों के आधार पर ज्ञात होता है कि असीरियन समाज दो भागों में विभाजित था—

1. स्वतन्त्र नागरिक
2. दास

स्वतन्त्र नागरिकों की तीन श्रेणियाँ थीं—

(क) मारबनुति अथवा सामन्त वर्ग ।
(ख) उस्माने या दस्तकार वर्ग ।
(ग) खुब्शी या श्रमिक वर्ग ।

मारबनुति वर्ग को कई तरह के विशेष अधिकार मिले हुये थे । उच्च पदाधिकारियों, सेनापतियों और पुजारियों तथा गवर्नरों की नियुक्ति इन्हीं में से होती थी। स्त्रियाँ भी गवर्नर बनाई जा सकती थीं ।

दस्तकार वर्ग के व्यक्तियों की संख्या अधिक थी । प्रायः सभी पेशेवर लोग इसके अन्तर्गत आते थे । एक पेशे के लोग प्रायः एक ही मोहल्ले में रहते थे ।

खुब्शी वर्ग के लोगों की संख्या सबसे अधिक थी । उपनिवेशों के लिये नागरिक और राष्ट्रीय सेना के लिए सैनिक इसी श्रेणी में से लिये जाते थे । आर्थिक दृष्टि से भी यह वर्ग सबसे पिछड़ा हुआ था ।

दास वर्ग में प्रायः वही लोग लिये जाते थे जो ऋण न चुका सकते थे अथवा बन्दी होते थे । इन्हें स्वतन्त्रता के अधिकार नहीं थे । यह लोग उच्च वर्गों (स्वतन्त्र नागरिकों) की सेवा करके अपना जीवन बिताते थे । दासों के कोड़े भी मारे जाते थे और पाषाण-खण्डों से भी दबाया जाता था । इन्हें सिर मुड़ाना पड़ता था और कान फड़वाने पड़ते थे ।

विदेशियों के लिये नागरिकता प्राप्त करने के कई ढंग थे उनमें प्रमुख असीरियन स्त्री से विवाह अथवा असीरियन का दत्तक पुत्र बन जाना था।

(2) स्त्रियों की दशा—असीरियन विधि-संहिता में स्त्रियों की दशा पर कई अभिलेख मिलते हैं। स्त्रियों द्वारा चोरी, पर पुरुषों पर आक्रमण, व्यभिचार, गर्भपात, झूठी गवाही और तलाक इत्यादि पर विस्तारपूर्वक कानून बनाये गये थे। पति द्वारा परित्यक्ता स्त्री के निर्वाह के लिये धन की सुविधा का विशेष उदारता से विचार किया गया था। असीरियन विधि-संहिता में यह भी उल्लेख है कि विवाह होने के उपरान्त स्त्री पिता के घर में रहती थी और पति बीच-बीच में उससे मिलने जाया करता था। यदि मँगनी हो जाने के उपरान्त लड़की का भावी पति मर जाता था या भाग जाता था तो लड़की का पिता वर के किसी छोटे भाई से उस कन्या का विवाह कर सकता था। अगर वर के कोई नहीं होता था तो लड़की के पिता को समस्त धन जो मँगनी के अवसर पर उसको मिला था, लौटाना पड़ता था। विवाहिता स्त्री को पर्दे में रहना पड़ता था। परन्तु जो व्यक्ति पुजारिनों, वेश्याओं, दासियों को पर्दे में रखता था तो उसे कोड़े की सजा, बेगार की सजा या नाक-कान कटाने की सजा दी जाती थी। पुरुष जितनी चाहे उपपत्नियाँ रख सकता था।

खुब्शी वर्ग की स्त्रियों की दशा भी अच्छी थी। सरकार उनके विषय में पूरे तौर से सहानुभूति रखती थी। यदि स्त्री का पति बन्दी बना लिया जाता था तो उससे मकान और भूमि सरकार की ओर से प्राप्त होती थीं। दो वर्ष के उपरान्त स्त्रियों को पुनर्विवाह का भी अधिकार था और यदि फिर उसका पूर्व पति वापिस लौट आता तो वह अपनी स्त्री को वापिस पा सकता था। स्त्री को दूसरा पति छोड़ना पड़ता था परन्तु सन्तान पर पिता का ही अधिकार रहता था। यदि पति युद्ध में मार डाला जाता था तो दो वर्ष के उपरान्त स्त्री को भूमि और मकान लौटा देना पड़ता था। इससे सिद्ध होता है कि असीरियन सिद्धान्त रूप से खुब्शी सैनिकों के बच्चों और स्त्रियों के प्रति अपने दायित्व का पूरे तौर से निभाती थी और उनके जीवन-निर्वाह का प्रबन्ध करती थी।

(3) वेश-भूषा – इस युग में लम्बा कुर्ता और कमर में चौड़ी पेटी पहनने का प्रचलन था। सिर पर लम्बे-लम्बे बाल रखे जाते थे जिनमें अत्यन्त सुन्दर ढंग से कंघी की जाती थी। सामान्य लोग नंगे सर रहते थे परन्तु सिपाही और राज्य-कर्मचारी टोपी या पगड़ी रखते थे।

(4) भोजन - पत्थर की चक्की पर पिसे हुये आटे की रोटी के साथ दूध, मक्खन, शहद, तेल या चर्बी से बनी वस्तुएँ खाने का प्रचलन था। मछली, भेड़ और बकरे का मांस खाया जाता था। छुहारे, सेब और अनानास आदि का फल अधिक मात्रा में खाये जाते थे।

(5) सामाजिक रीतियाँ—एक पत्नी और एक प त की प्रथा अधिक थी। कन्या माता-पिता की इच्छानुसार ही विवाह करती थी। कन्या के सिर पर सुगन्ध छोड़कर सगाई की रीति सम्पन्न की जाती थी।

आर्थिक दशा

राजा और नागरिकों के सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ थे। प्रत्येक नागरिकों को राज्य

की सेवा करनी पड़ती थी। वह सेना में कार्य करता था और राज्य के लिए बनाई जाने वाली इमारतों में बिना वेतन के कार्य करता था तथा मन्दिरों को अपनी उपज का भेंट करता था। उच्च वर्ग के लोग धन देकर अपने स्थान पर दास, सेवा के लिये भेजते थे और साधारण वर्ग के लाग अनिवार्य रूप से व्यक्तिगत सेवा करते थे। कर इकट्ठा करने का भार सेना के कर्मचारियों पर होता था।

कृषि—असीरियन राज्य में वेबिलोनिया के आर्थिक जीवन में समानता थी। दोनों देशों में सिंचाई का काम नदियों और नहरों से लिया जाता था। मुख्यतः गेहूँ, बाजरा और जौ की खेती होती थी। नाप और तौल के साधन समान थे। असीरियन समाज में धनिक वर्ग और बड़ी-बड़ी जागीरों के मालिक व्यापारियों को हीन समझते थे। मजदूरी सस्त थी; भूमि को पट्टे पर दिया जाता था और भूमि अधिक उर्वरा थी।

उद्योग-धन्धे एवं व्यापार—राज्य में खुदाई और आयात का धन्धा बहुत प्रचलित था। लोगों के पास विभिन्न राज्यों से लूटकर लाया हुआ धन प्रचुर मात्रा में था। शीशे, बिनाई, रँगाई तथा ऊन और कपास आदि के धन्धे किये जाते। परिवार का कर्त्ता अपना पेशा पुत्र के सुपुर्द करता था। शिष्य रखने की भी प्रथा थी। गुरु-शिष्य का नाता अत्यन्त महत्व का होता था।

व्यापारियों को नीची दृष्टि से देखा जाता था इसीलिए एँ रैं मियनो ने इस उदासीनता का लाभ उठाया। विदेशी व्यापार काफिलों में होता था। सौदागरों के द्वारा माल बाहर भेजा जाता था। सौदागर व्यापारियों को 25 प्रतिशत तक सूद पर रुपया देते थे। अदला-बदली के साधन सोना, चाँदी और ताँबा थे। बाजार में भाव का उतार-चढ़ाव बहुत अधिक होता था क्योंकि लूट का धन न जाने कब बाजार में आ जाता था। विधि-संहिता में व्यापारियों के विषय में बहुत से कानून मिलते हैं। यदि कोई धन लेने के पश्चात् उससे मुकर जाता था तब उसे दस गुना धन देवता के मन्दिर में देना पड़ता था। कभी-कभी दोषियों को विष पीना पड़ता था या देवता के सम्मुख उसके सबसे बड़े लड़के-लड़की को जला दिया जाता था।

धर्म तथा दर्शन

असीरिया और बेबिलोनिया वालों के धर्म में बहुत कुछ समानता है केवल बाह्य भेद इतना है कि असीरिया वालों का मुख्य देवता मर्दुक न होकर अशुर था। असीरिया की सरकार पर धर्म का प्रभाव कम न था परन्तु पुजारियों के कारण धर्म राजा की इच्छानुसार परिवर्तित होता रहता था। राष्ट्र-देव अशुर के कारण लोगों में यह विश्वास उत्पल हो गया था कि देवता के सामने जितनी अधिक हत्या की जायगी वह उतना ही प्रसन्न होगा। अशुर के अतिरिक्त अन्य देवताओं की भी पूज होती थी। सूर्य को सौर देवता कहा जाता था और इसका चक्र अशुर का भी चिह्न माना जाता था।

असीरियन अशुर को साम्राज्य का स्वामी मानते थे। युद्ध और शान्ति में यही देवता राजा का मार्ग प्रदर्शक समझा जाता था। जो व्यक्ति राजा के प्रति विद्रोह करता था वह देवता का विद्रोही भी समझा जाता था। राजा अपने देवता का चिन्ह सूर्य चक्र-युद्ध में ले जाते थे और जीते हुए नगरों में पूजा के लिये उसे

स्थापित किया जाता था। शस्त्र-बल से अपनी धाक जमाने वाला कोई भी देवता अधिक काल तक लोकप्रिय नहीं रह सकता था। इसी कारण असीरिया का पतन होने पर अशुर की उपासना भी प्रायः समाप्त हो गई यद्यपि ईरानियों का देव-चिन्ह भी सूर्य चक्र ही था।

असीरिया अन्ध-विश्वास के लिए प्रसिद्ध है। मनुष्य केवल अपने प्रतिद्वन्द्वियों से ही सचेत नहीं रहता था बल्कि पशुओं और प्राकृतिक घटनाओं के विरुद्ध भी संघर्ष करता रहता था। इसी कारण उनमें यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि संसार असुर और राक्षसी शक्तियों से भरा हुआ है और मन्त्रों द्वारा पुजारिकों की कृपा से ही व्यक्ति इस संसार से त्राण पा सकता है। बालक, वृद्ध और स्त्रियाँ तरह-तरह से ताबीज बाँधते थे जिन पर आकृतियाँ और मन्त्र खुदे रहते थे। किसी-किसी ताबीज पर जादुई शब्द 7 बार लिखे जाते थे। पुजारियों का एक झुण्ड शुभ-अशुभ फलों पर भी विचार करता था। यह लोग ज्योतिषी कहलाते थे। इनका समाज में बड़ा सम्मान था।

असीरिया के लोग यह विश्वास करते थे कि मरने के बाद आत्मा को अलात राक्षसी नेरगा लोग में ले जाती है जहाँ परीक्षाओं के उपरांत कुकर्मियों को कष्ट दिये जाते हैं। इस संकट से छुटकारा केवल स्वर्गीय जन द्वारा हो सकता है। परन्तु उसकी एक बूंद भी मिलना कठिन है।

साहित्य

वास्तव में असीरियनों का कोई स्वतन्त्र साहित्य उपलब्ध नहीं होता। केवल देव-वाणियाँ और राजकीय अभिलेख ही साहित्य कहे जा सकते हैं। देव-वाणियों में यूनानियों की तरह पुजारी अपने प्रभाव को बनाये रखने के प्रयत्न करते थे। राजकीय अभिलेखों का विकास अलंकृत और कल्पना के रूप में देव-वाणी के उपरान्त हुआ। प्रारम्भिक अवस्था में अभिलेखों में राजा का नाम और भवन का विवरण इत्यादि रहता था। आगे चलकर ऐतिहासिक अभिलेख भी लिखे जाने लगे और राजा की विजयों का विवरण दिया जाने लगा। घटनाओं को तिथि के अनुसार क्रमानुसार लिखने की प्रथा चौदहवीं शताब्दी ई० पू० से कुछ पहले आरम्भ हुई। अभिलेखों की इस शैली में बेबिलोनियन शैली की विशेषतायें आ गई थीं। पुरातत्व की खोजों से ज्ञात होता है कि बेबिलोनिया की महान साहित्यिक कृतियों का अनुवाद असीरिया में 13वीं शताब्दी ई० पू० के पहले हो चुका था गिलनामेश और विश्व सृजन की कथा बेबिलोनिया की महान कृतियाँ थीं जिनका असीरियन संस्करण भी प्राप्त होता है। असुरबनिपाल के पुस्तकालय में लगभग 30000 ग्रन्थों का क्रमिक वर्गीकरण और सूचीकरण था। कई अभिलेखों को असुरबनिपाल ने स्वयं पढ़ा था और दो अभिलेखों में उसने अपने ज्ञान तथा शौर्य का वर्णन किया था। साहित्य के क्षेत्र में असीरियनों का महान योगदान है. उन्होंने साहित्य तथा बहुमूल्य सांस्कृतिक वस्तुओं की सुरक्षा की और उन्होंने एशिया का सर्वप्रथम राज्य पुस्तकालय बनवाया था। असुरबनिपाल के पुस्तकालय में जो 22 हजार लेख पट्टियाँ प्राप्त हुई थीं जो आज भी ब्रिटिश म्यूजियम में उपलब्ध हैं।

लिपि एवं भाषाएँ

असीरियनों ने वेबिलोनिया वालों की कीलाक्षर (cuneiform) लिपि को सरल और जनप्रिय बनाने का महान प्रयत्न किया था। साम्राज्य का क्षेत्र इतना बड़ा था कि असीरिया की सरकार एवं नागरिकों को हजारों लिपिकों की आवश्यकता पड़ती थी। यह लिपिक सुमेरियन, असीरियन और सेमेटिक भाषाओं के ज्ञाता होते थे। असुरनसिरपाल के कारण बहुत से ऐरैमियन असीरिया में आकर बस गये थे और उन्होंने अपनी भाषा का प्रयोग भी आरम्भ कर दिया था। व्यापारिक लिपिकों का ज्ञान सीमित होता था। अभिलेख लिखने की कला को "तुपगरुति" कहते थे। सुमेरियन ग्रन्थों का भावानुवाद विद्यार्थियों के लिये आवश्यक था। सेमेटिक भाषाओं की बोलियों को सीखने के लिए पर्यायवाची शब्दों का महान संग्रह उपलब्ध था।

विज्ञान

कसाइट युग में बर्बर जातियों के आक्रमणों के कारण वेबिलोनियान साहित्य और विज्ञान के प्रति अधिक जागरूक न रह सके परन्तु असीरिया में असुरबनिपाल जैसे सम्राट अपनी व्यावहारिक आवश्यकताओं एवं प्रकृति के कारण ज्ञान-विज्ञान की उन्नति में विशेष रूप से प्रयत्नशील रहे फलतः असीरिया के नगर बौद्धिक गति-विधि के केन्द्र बन गये। साहित्य की भाँति विकास के क्षेत्र में भी असीरिया वालों की मौलिक देन बहुत कम है। ज्योतिष और युद्ध-कला को छोड़कर उन्होंने किसी और अधिक रुचि नहीं दिखलाई। परन्तु प्राचीन ज्ञान को संग्रह करके उसे व्यवस्थित करने एवं स्थायित्व प्रदान करने का श्रेय असीरिया वालों को अवश्य प्राप्त है। कुछ पुरातत्व सम्बन्धी अभिलेखों की खोज से ज्ञात होता है कि सम्राट खगोल सम्बन्धी आंकड़े इकट्ठा करने के लिए पदाधिकारी नियुक्त करते थे और पुजारी लोग ज्योतिष के अध्ययन में इन आँकड़ों का प्रयोग करते थे। चिकित्सा के क्षेत्र में शरीर-रचना-शास्त्र पर उन्होंने विशाल शब्दावली का निर्माण किया था और रोगों के बारे में अच्छा अध्ययन किया था। रसायनशास्त्र द्वारा उन्होंने उद्योग-धन्धों, विशेषकर चमड़े का धन्धा और मीनाकारी में काम आने वाली रासायनिक वस्तुओं का अध्ययन किया था। वे कपड़ा रँगना भी जानते थे। भौतिक विज्ञान के प्रमुख सिद्धान्त उन्होंने अपने अनुभव से ज्ञात किये थे।

कला

कला के क्षेत्र में असीरिया वाले वेबिलोनिया वालों से आगे बढ़ चुके थे। इनकी कला सजीव थी और विषय प्रायः सैनिक जीवन से लिये जाते थे। पशुओं की आकृतियों के अंकन में उन्हें बहुत सफलता मिली परन्तु मनुष्य की आकृति वे इतनी अच्छी नहीं बना सके। पशुओं में अश्व, सिंह, गधा, बकरा, हिरण, कुत्ता और विभिन्न पक्षियों के चित्र योग्यता से बनाये जाते थे। खीसोबांध के रिलीफों से यह ज्ञात होता है कि असीरिया के चित्र और आचरण के राष्ट्रीय रूप को प्रकट करते हैं।

असीरिया वालों के मन्दिर और मकान प्रायः पत्थर बने होते थे जिनमें महराबों और खम्भों का प्रयोग किया जाता है। खम्भों के प्रयोग में वे अधिक सफल

न हो सके । उनकी इमारतों में विशालता के अनुरूप सुन्दरता का समावेश कम है और यही उनकी वास्तुकला का प्रमुख दोष माना जाता है ।

कुछ पुरातत्वों की खोज के आधार पर कहा जा सकता है कि असीरियन लोग रंगीन और ग्लेज किये हुये टेम्परी चित्र बनाने में पटु थे । ईंटों और बर्तनों पर भी वे ग्लेज का प्रयोग करते थे । यद्यपि असीरियन मुद्रायें कला की दृष्टि से महत्व-शाली नहीं हैं परन्तु मुद्राओं का प्रयोग असीरिया वाले काफी संख्या में करते थे । फर्नीचर आदि का निर्माण भी असीरिया में होने लगा था ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि एशिया की अन्य सभ्यताओं की तुलना में असीरिया की सभ्यता का कोई विशेष महत्व नहीं है । असीरिया के सम्राट अपनी क्रूरता के लिए प्रसिद्ध थे अतएव असीरिया के पतन पर विभिन्न जातियों को प्रसन्नता ही हुई । धर्म, दर्शन, साहित्य और कला के क्षेत्र में जो कुछ असीरिया ने दूसरों को दिया उससे कहीं अधिक दूसरों का ऋणी है ।

सारांश

कहा जाता है कि इस साम्राज्य की नींव सन् 1276 ई० पू० में शलमनेसर ने डाली । इस साम्राज्य का प्रारम्भिक काल तिगलथ पिलेसर से प्रारम्भ होता है । इसके पश्चात् दुर्बलता का युग आया । इस युग में असुर-नासिर-पाल और शलमनेसर आदि प्रमुख राजा हुये । साम्राज्य के तृतीय खण्ड का निर्माता तिगलथ पिलेसर तृतीय था । तत्पश्चात् सारगोनी वंश के हाथ में शासन की बागडोर आई । इस वंश का संस्थापक शरुकिन था जो सारगोन द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इसके बाद से नाकेरिब गद्दी पर बैठा सारगोनी वंश का चरमोत्कर्ष असुरबनिपाल के शासन काल में हुआ । यह इस युग का सर्वश्रेष्ठ सम्राट माना जाता है । 615 ई० पू० में नेबोपले-स्सर और उवक्षत्र ने असीरिया पर आक्रमण किया इस प्रकार असीरियन साम्राज्य का पतन हुआ । इस पतन के लिए असीरियन स्वयम् उत्तरदायी थे । वे इतने क्रूर थे कि जनता उन्हें नहीं चाहती थी ।

असीरियन साम्राज्य का शासन ताकत के जोर से चला । साम्राज्य में तीन कोटि के प्रांत थे । सेना में दो प्रकार के सैनिक होते थे—सैनिक शिक्षा प्राप्त किये हुए लोग, राष्ट्रीय सेना के सदस्य । यह प्रथा सारगोनी युग की देन थी । असीरिया की दण्ड-व्यवस्था बड़ी कठोर थी । छोटे से छोटे अपराध के लिये कड़ा दण्ड दिया जाता था ।

समाज दो वर्गों में विभाजित था—स्वतन्त्र नागरिक, दास । स्वतन्त्र नागरिकों की तीन श्रेणियाँ थीं—मारबनुति (सामन्त वर्ग) उस्माने दस्तकार वर्ग खुब्शी या श्रमिक वर्ग । गुलामों को दास बनाया जाता था । शासन-व्यवस्था को देखते हुए स्त्रियों की दशा को अच्छी ही कहा जायगा । इस युग में कर प्रथा भी प्रचलित थी । गेहूँ, बाजरा और जौ की खेती मुख्य रूप से होती थी । काफिलों द्वारा विदेशों से व्यापार होता था ।

असीरिया और बेबिलोनिया वालों के धर्म में बहुत कुछ समानता थी । इनके राष्ट्र-देव असुर थे । ये लोग बड़े अन्ध-विश्वासी थे । पुजारी वर्ग का बड़ा सम्मान होता था ।

असीरियन स्वतन्त्र साहित्य उपलब्ध नहीं है। बेबिलोनिया की कुछ साहित्यिक कृतियों का अनुवाद अवश्य किया गया था। कहा जाता है कि असुरवनिपाल के पुस्तकालय में 30000 पुस्तकें थीं। ये लोग कीलाक्षर लिपि का प्रयोग करते थे। इस लिपि को असीरिया वालों ने सरल बनाने का प्रयास किया था। वैज्ञानिक क्षेत्र में भी इनकी मौलिक देन में बहुत कम है। कला के क्षेत्र में ये लोग बेबिलोनिया वालों से आगे बढ़ चुके थे। पशुओं की आकृति चिवित्र करने में ये बड़े प्रवीण थे। इनके मकान और मन्दिर पत्थर के बने होते थे। ये ग्लेज किये हुये टेम्परा चित्र बनाने में पटु थे।

इन्होंने सांस्कृतिक क्षेत्र में जो भी उन्नति की उसको इनकी लड़ने मरने की प्रवृत्ति के कारण विशेष महत्व नहीं दिया गया।

●

5

मिस्र सभ्यता का पिरामिड युग
(Pyrsmid Age of Egyptian Civilization)

प्रश्न—पिरामिड युग की राजनीतिक पृष्ठभूमि पर संक्षिप्त परिचय देते हुये इस युग की शासन-व्यवस्था पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—मिस्र उत्तर-पश्चिम में स्थित है। यह नील नदी के किनारे बसा हुआ है। इसके उत्तर में भू-मध्य सागर, पश्चिम में लीबिया के रेगिस्तान, दक्षिण में नील के महाप्रपात और पूर्व में लाल सागर है। नील नदी की मिस्र को महान देन है। मिस्र को नील नदी का 'वरदान' कहा जाता है। मिस्र मूलतः लीबियन रेगिस्तान का एक भाग है। इसके केवल मध्यवर्ती भाग में नील नदी ने 10 से लेकर 20 मील चौड़ी और 30 से लेकर 40 फीट मोटी खेती के योग्य मिट्टी की एक पट्टी बना दी है। इस प्रकार मिस्र का उर्वर प्रदेश उसके कुल क्षेत्रफल का 3·5 प्रतिशत है। परन्तु यह प्रदेश इतना उपजाऊ है कि यहाँ चावल, रूई और गन्ने की खेती बहुत अधिक मात्रा में होती है। मिस्रियों को अपने कृषि कर्म के लिये केवल नील नदी पर ही निर्भर रहना पड़ता है, इसलिये हेरोडोटस ने मिस्र को "नील नदी का वरदान" कहा है।

राजनीतिक इतिहास—इस युग में मिस्र की क्या दशा थी, इसके विषय में ठीक जानकारी नहीं है। 5000 ई० पूर्व से लेकर 3700 ई० पूर्व तक का काल प्राबंशीय युग के नाम से पुकारा जाता है विद्वानों का ऐसा मत है कि आरम्भ में मिस्र छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। ये राज्य एक दूसरे से संघर्ष किया करते थे परन्तु धीरे-धीरे य राज्य आपस में मिलने लगे। यहीं से मिस्र में राजनीतिक एकता

की भावना का जन्म हुआ और आगे चलकर मिस्र दो विशाल राज्य बन गये—(1) उत्तरी राज्य तथा (2) दक्षिणी राज्य।

उत्तरी और दक्षिणी राज्यों को संयुक्त करके राजनीतिक एकता की स्थापना मेना (मिनीज) ने की। मेना के उत्तराधिकारियों के विषय में कहा जाता है कि मिस्र के प्रथम दो वंशों के 18 राजाओं ने 420 ई० तक राज्य किया। इनके इतिहास के विषय में अधिक जानकारी नहीं है। मिस्र के राजनैतिक इतिहास को हम निम्नलिखित चार भागों में बाँट सकते हैं—

(1) प्राग्वंशीय युग, (2) पिरामिड युग, (3) मध्य युग एवं (4) साम्राज्य-वादी युग।

प्राग्वंशीय युग—इस युग में सांस्कृतिक विकास के चिह्न दृष्टिगत हैं। इस युग में पर्याप्त सामाजिक और आर्थिक उन्नति हो चुकी थी। मिस्र वाले सिंचाई की समुचित व्यवस्था जान गये थे। उनके यहाँ कानून निश्चित था। कुटुम्ब समाज की इकाई समझी जाती थी। स्त्री और पुरुष दोनों ही सौन्दर्य-प्रेमी थे। तरह-तरह के आभूषण पहनते थे जिनमें उच्चकोटि का ग्लेज होता था। मुण्ड-माण्ड कला का उनके यहाँ पर्याप्त विकास हो चुका था उनके बर्तनों में सुन्दर पालिश की जाती थी और एक प्रकार की चित्राक्षर लिपि भी प्रचलित थी। इस युग में ही संसार का सबसे पहला कलेण्डर बना जिसके अनुसार एक वर्ष में 13 महीने और 561 दिनों की कल्पना की गई थी।

पिरामिड युग—तीसरी शताब्दी ई० पू० में मिस्र में बड़े विप्लवकारी परि-वर्तन हुये। 1980 ई० पू० में तृतीय वंश की स्थापना मिस्र में हुई। इस वंश का काल मिस्र की भाँति उन्नति का एक महत्वपूर्ण काल था। जोसेर के शासन-काल में सीढ़ीदार पिरामिड बनवाये गये।

जोसेर के उत्तराधिकारियों ने भी उसकी विद्वता का लाभ उठाया। जोसेर के समय में ही लिपि में अनेक सुधार किये गये। इस वंश का अन्तिम नरेश नफ़ु था जिसने मिस्र में पहले ढलवां पिरामिड का निर्माण करवाया।

तृतीय वंश के पश्चात मिस्र में चतुर्थ वंश का शासन आरम्भ हुआ। इस युग का प्रसिद्ध शासक खफू था जिसने मिस्र का सबसे बड़ा पिरामिड बनवाया। इसके पुत्र खेफे ने सबसे छोटा पिरामिड बनवाया। इस युग के बने पिरामिडों में मेन्कुरे के बनवाये हुये पिरामिड भी प्रसिद्ध हैं। मिस्र का सबसे बड़ा पिरामिड काहिरा के निकट गिजेह में है। यह कहा जाता है कि एक लाख व्यक्तियों ने मिलकर इसे 20 वर्षों में बनाया था।

2750 ई० पू० में यूसरेकाफ ने मिश्र में पाँचवें वंश के शासन की नींव डाली। इसके पुत्र सहुरे ने मिस्र की सीमा को बढ़ाने का प्रयत्न किया परन्तु उसके शासन-काल में पुजारियों और सेनापतियों की महत्वाकांक्षा के कारण केन्द्रीय शक्ति कम होती गई। पिरामिड युग में भी मिस्र ने काफी उन्नति की थी। इस युग में सम्राट देश का सर्वोच्च पुरोहित समझा जाता था। वही अन्य पुरोहितों की नियुक्ति करता था। वही देश का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था और अपने नीचे एक न्याया-

धीश और 6 अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करता था। नगर का शासन राज्यपाल द्वारा किया जाता था जिसकी नियुक्ति सम्राट द्वारा होती थी।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इस युग में मिस्र में पिरामिडों का निर्माण बहुत अधिक मात्रा में हुआ। ये पिरामिड अपनी भव्यता और कलात्मकता के फलस्वरूप आज भी संसार के आश्चर्यों में माने जाते हैं। इन पिरामिडों में शवों के साथ मिस्रवासी वे सभी सामग्री रखते थे जो जीवित व्यक्ति के लिये आवश्यक थी। पिरामिडों की विशेषता का उल्लेख स्वेज ने बहुत ही अच्छे ढंग से किया है उसका कहना है कि, "पिरामिडों का निर्माण धार्मिक विश्वास की अभिव्यक्ति तथा मोरोह की अमरता के अक्षुण्ड तथा चिरस्थायी बनाने हेतु किया गया था।"

शासन-व्यवस्था—(1) **सम्राट**—सम्राट को फराओ भी कहा जाता था। उसे सूर्यदेव का प्रतिनिधि समझा जाता था। मिस्र में शासन-व्यवस्था के लिये जनतांत्रिक प्रणाली नहीं अपनायी गई थी। साम्राज्य की समस्त शक्ति राजा के हाथ में केन्द्रित रहती थी। वही राज्य का सर्वोच्च सेनापति, न्यायाधीश और पुजारी होता था। उसे अनेक प्रकार के अधिकार प्राप्त थे। वही विधानों का निर्माता और धार्मिक कार्यों का स्रष्टा समझा जाता था। साम्राज्य के समस्त अधिकारी उसके अधीन रहते थे और उनकी इच्छा ही उसकी इच्छा पर निर्भर करती थी। समय-समय पर सम्राट निरंकुश भी हो जाता था। यह सबसे बड़ा पुरोहित था, अतः धार्मिक क्षेत्र में भी उसे बड़ा सम्मान प्राप्त था। मिस्र के निवासी बड़े धर्मभीरु थे और धर्म का सबसे बड़ा पुरोहित होने के कारण राजा के विरुद्ध किसी प्रकार का विद्रोह करना पाप समझते थे।

इसमें किंचित् मात्र भी संदेह नहीं है कि मिस्र में सम्राट निरंकुश हो सकता था और बहुत से ऐसे सम्राट हुये जिन्होंने निरंकुशता को अपनाया परन्तु यह कार्य तभी तक चलता रहा जब तक राजा योग्य, प्रतिभाशाली और सशक्त रहे। जब अयोग्य सम्राट गद्दी पर आसीन हुये तो सामन्तों और पुरोहितों ने जोर पकड़ा। समस्त साम्राज्य में अनेक सामन्त होते जो छोटे-छोटे भूखण्डों के स्वामी होते थे। वे अपने-अपने भूखण्डों का शासन करते थे। राजा सदैव इनकी ओर से सतर्क रहता था कि कहीं से विद्रोह न कर दें। अतः योग्य शासकों ने इन सामन्तों को सदैव दबाकर ही रखा।

(2) **प्रधान मन्त्री**—शासन-व्यवस्था में सम्राट की सहायता के लिये अनेक अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। सम्राट का प्रधान-मन्त्री इन अधिकारियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान रखता था। आरम्भ में यह पद युवराज को प्राप्त होता था परन्तु कालान्तर में सम्राट किसी योग्य को इस पद पर आसीन कर सकता था। यह प्रधान-मन्त्री अपने समस्त कार्यों के लिये जनता के प्रति उत्तरदायी न होकर सम्राट के प्रति उत्तरदायी था। यह जनगणना एवं करों को जमा करवाता था, छोटे न्यायालयों के विरुद्ध जो अपीलें होती थीं उनको सुनता था। सत्य तो यह है कि प्रधान मन्त्री ही राजा के नाम पर समस्त कार्य करता था।

(3) **कोषाध्यक्ष तथा अन्य अधिकारी**—मिस्री राज्य का एक दूसरा प्रमुख अधिकारी "प्रधान कोषाध्यक्ष" होता था। उसका कार्य सम्पूर्ण देश की वित्त व्यवस्था

को नियन्त्रित करना होता। उसके नीचे दो कोषाध्यक्ष होते थे जिनका कार्य राज-प्रसादों, मन्दिरों और पिरामिडों के निर्माण की व्यवस्था था। इसके अतिरिक्त मुख्य न्यायाधीश सामन्त, लेखा निरीक्षक आदि होते थे।

(4) सुरक्षा व्यवस्था या सैन्य संगठन—मिस्रियों ने अपने साम्राज्य को बनाये रखने हेतु एक बड़ा सेना का संगठन किया था। सेना, अश्वारोहियों, रथरोहियों एवं पैदलों (पैदल चलने वाले सैनिक) से सुसज्जित होती थी। सेना तलवारों, गड़ोसों, धनुष-बाण एवं भालों आदि का प्रयोग करती थी। एक छोटी सी जल सेना भी थी इस सेना के पास मामूली जहाजी बेड़ा था जो भूमध्य सागर में पड़ा रहता था। सम्राट ही सेना का सबसे बड़ा पदाधिकारी होता है।

(5) न्याय-व्यवस्था—मिस्र में न्याय-व्यवस्था बहुत अच्छी नहीं थी। इरान की न्याय-व्यवस्था की अपेक्षा वहाँ की न्याय-व्यवस्था निकृष्टि थी। कोई संविधान न होने के कारण न्याय के लिये परम्पराओं का आश्रय लिया जाता था। ग्रामों में सामन्तों द्वारा न्याय किया जाता था और नगरों में नगरपतियों द्वारा। इनके ऊपर स्थानीय न्यायालय होते थे, जिनमें निम्न न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील की जा सकती थी। सम्राट ही देश का सर्वोच्च न्यायाधीश एवं उसकी राज्य सभा ही सर्वोच्च न्यायालय थी। राजा का निर्णय अन्तिम था और उसके विरुद्ध कहीं भी अपील नहीं की जा सकती थी। अधिकतर अर्थ-दण्ड की प्रथा प्रचलित थी। गम्भीर आरोपों के लिये मृत्यु-दण्ड देने और अंगों को काटने की प्रथा भी प्रचलित थी।

(6) प्रान्तीय व्यवस्था—पिरामिड युग में प्रशासन में सुव्यवस्था के लिये सम्पूर्ण मिस्र को लगभग 50 प्रान्तों में बाँटा गया था। उसका शासन राज्यपालों के हाथों में रहता था जिन्हें फराओ द्वारा नियुक्त किया जाता था। प्रान्तों की शासन व्यवस्था केन्द्रीय शासन-व्यवस्था की तरह ही थी। केन्द्रों और प्रान्तों के सम्बन्धों को बनाये रखने में राज्य कोषागार का बहुत हाथ था। प्रान्तीय गवर्नर कर के रूप में अनाज, शहद, पशु और अन्य, वस्तुयें इकट्ठा करते थे और उन्हें राजकोषागार में जमा कर देते थे। प्रान्तों की आय, भूमि और सिंचाई आदि से सम्बन्धित कार्यालय केन्द्रीय सरकार के सम्पर्क में ही रहते थे। इन प्रान्तों की "नोम्स" और उनके राज्य-पालों को "नोमार्च" कहा जाता था। बार्नस ने लिखा है, प्राचीन साम्राज्य में प्रशासकीय इकाइयाँ क्षेत्रीय विभाग थे जिन्हें नोम्स कहा जाता था। प्रत्येक नोम्स का मुखिया नियुक्त किया गया। एक राजघराने का अधिकारी होता था जिसे "नोमार्च" कहा जाता था। नोम साम्राज्य के आधार पर निर्मित एक छोटे राज्य के रूप में या और कुछ संस्थाओं जैसे कोषागार, भूमि विभाग एवं सिंचाई विभाग के माध्यम से केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदा.ी थे।"

"Under the old kingdom, the administrative units were the territorial divisions, the Nomes, At the head of each was an appointive royal offic'al called Nomarch. The names, constituted a small state modelled on the kingdom and bend to the central government or the land and irrigtion offices."

प्रश्न - पिरामिड युग के मिस्र के सामाजिक और आर्थिक जीवन की प्रमुख विशेषताओं का निरूपण कीजिये ।

सामाजिक जीवन

(1) **वर्ग-विभाजन**—मिस्र का समाज 5 वर्गों में विभाजित था—(1) राज्य परिवार, (2) सामन्त, (3) पुजारी, (4) मध्यम वर्ग और (5) दास । मध्यम वर्ग में लिपिक, व्यापारी, कारीगर और स्वतन्त्र किसान आते थे । राज्य परिवार में सामन्तों और पुजारियों को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त थी । वर्ग-व्यवस्था लचीली थी और हर व्यक्ति कोई भी पेशा अपना सकता था, केवल राज्य परिवार के सदस्य इस अधिकार से वंचित थे । दास वर्ग की दशा अच्छी न थी । इनका धन और जीवन अपने स्वामियों की इच्छा पर निर्भर करता था । ये लोग राजवंश, पुरोहित वर्ग और सामन्त वर्ग की सेवा करते थे और बदले में इनको अनाज और शरीर ढकने के लिये वस्त्र दिये जाते थे ।

मिस्र का वर्ग का विभाजन उतना कठोर नहीं था जितना कि भारत की जाति-प्रथा । उच्च और निम्न वर्ग में एक प्रकार का अन्तर देखने को नहीं मिलता था जिस प्रकार की भारत की जातिय-व्यवस्था देखने को मिलता है । स्वेन ने लिखा है कि दोनों वर्गों में भेद भारत और जातिवाद का ज्ञान सा नहीं था । छोटा से छोटा व्यक्ति धर्मगुरु या राज्याधिकारी हो सकता था ।

(2) **रहन-सहन**—मिस्र के उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के लोगों के रहन-सहन में बहुत बड़ा अन्तर था । उच्च वर्ग के लोग बड़े बड़े भवनों में रहते थे, जिनकी खिड़कियों और दरवाजों पर गहरे रंग में रंगे पड़े हुये रहते थे । उनकी घर की फर्स पर दरियां बिछी रहती थीं । कमरों में सुन्दर पलंग, कुर्सियां, अलमारियां और सोने, चाँदी, ताँबे पत्थर के बने हुये बहुमूल्य पात्र रखे रहते थे । उच्च वर्ग के लोगों के भवन के चारों तरफ बगीचा होता था । किन्हीं-किन्हीं घरों में कृत्रिम सरोवर भी होता था । उच्च वर्ग की स्त्रियाँ जूड़े बाँधती थीं और सुगंधित तेल, गालों में सुर्खी लिपिस्टिक आदि का प्रयोग करती थीं । 10 वर्ष से कम आयु वाले बच्चे अधिकतर नंगे रहते थे, निर्धन लोग गन्दे मुहल्लों में रहते थे । उनकी हालत अत्यन्त दयनीय थी और उनकी झोपड़ियाँ बड़ी बुरी हालत में रहती थीं । इनके वर्तन टूटे-फूटे होते थे और उनके पास फर्नीचर नाम की कोई चीज नहीं होती थी ।

(3) **पारिवारिक जीवन**—मिस्री समाज की इकाई परिवार थी । परिवार की सम्पत्ति पर उत्तराधिकार का नियम संचालित था । परिवार का मुखिया पुरुष ही होता था परन्तु स्त्री का भी सम्मान होता था । परिवार में अत्यन्त स्नेहपूर्ण वातावरण रहता था ।

(4) **स्त्रियों की दशा**—मिस्र में स्त्रियों को बहुत अधिक सम्मान प्राप्त था । उसमें पर्दे में प्रथा नहीं थी । वे पुरुषों की भाँति आर्थिक का सामाजिक कार्य कर सकती थीं और राजकीय कार्यों में भी भाग ले सकती थीं । मिस्र के समाज में नारियों की इतनी अधिक स्वतन्त्रता थी कि वे अपना विवाह स्वयं कर सकती थीं । बहुधा भाई बहन में ही विवाह हो जाता था । विवाह के पूर्व स्त्री पति से यह वचन ले लेती थी कि वह उसकी इच्छा का आदर करेगा । बहु-विवाह की प्रथा मिस्र के समाज

में प्रचलित नहीं थी, परन्तु राजवंश के लोग कभी-कभी एक से अधिक विवाह कर लेते थे। अधिक पुत्र उत्पन्न करने वाली स्त्री को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। यद्यपि वेश्यावृत्ति की प्रथा प्रचलित थी परन्तु बहुत कम लोग वेश्यागामी होते थे। पति अपनी पत्नी को आसानी से तलाक नहीं दे सकता था। उसे उस पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाना पड़ता था। मैक्समूलर ने मिस्र की स्त्रियों के अधिकारों के विषय में ठीक ही लिखा है। नील नदी घाटी की सभ्यता के समान ऊँचा स्थान किसी भी सभ्यता में स्त्रियों को नहीं था।

स्त्रियाँ अपने सौन्दर्य को बढ़ाने के लिये लिपिस्टिक, तेल पालिश आदि का प्रयोग करती थीं। इस तेल का प्रयोग व्यापक मात्रा में होता था। मिस्र की नारियों के विषय में ठीक ही लिखा गया है, मिस्र की स्त्रियों ने बहुत कम मात्रा में अलकारों और सौन्दर्य-सज्जा के विषय में सीखा।

आर्थिक जीवन

(1) कृषि कार्य—मिस्र एक कृषि-प्रधान देश था। वहाँ गेहूँ, जौ, मटर, सरसों जैतून, अंजीर, सन, अंगूर, व्यापक मात्रा में उत्पन्न किये जाते थे। मिस्र की भूमि बहुत अधिक उपजाऊ थी। बिना हल चलाये यहाँ खेती की जा सकती थी। सिंचाई का मुख्य साधन नील नदी था। सिंचाई के लिये मिस्र में तालाब और नहरों का जाल बिछाया गया था।

खेती की अधिकतर भूमि सामन्तों और पुरोहितों के ही पास थी। श्रमिकों और दासों के द्वारा भूमि में खेती करवाते थे। सम्राट के पास भी खेती के लिये बहुत अधिक भूमि थी। बहुत सामन्त स्वयं भी खेती करते थे। सरकार की ओर से किसानों की सहायता की जाती थी। किसानों की सुविधा के लिये मिस्र में सौर पंचांग का आविष्कार किया गया था। किसान अपनी उपज का 10 से लेकर 20 प्रतिशत तक राजकीय कोष में देते थे।

(2) पशु-पालन—मिस्र के निवासियों की आय का दूसरा साधन पशु-पालन था। इसका मुख्य पालतू पशु, गाय, भेड़, बकरी और गधा थे। पालतू बन्दर बोझा उठाने और फल तोड़ने के कार्य करते थे। मुर्गियाँ भी पाली जाती थीं।

(3) आखेट—मिस्र में आखेट की प्रथा भी प्रचलित थी। पशु-पक्षियों का शिकार किया जाता था। मारे गये पशुओं का माँस खाने के काम और खाल कपड़ा बनाने के काम में लायी जाती थी। नील नदी और भूमध्य-सागर में बहुत अधिक मछलियाँ होती थीं अतएव ये लोग मछलियाँ पकड़ने का काम भी करते थे।

(4) उद्योग – मिस्र में उद्योग-धन्धों के लिये अधिक सुविधा नहीं थी। इसका मुख्य कारण यह था कि वहाँ लकड़ी और खनिज पदार्थों की कमी थी। परन्तु वे लोग बहुत-सा माल पड़ोस के देशों से मँगाते थे और बदले में ताम्र, वैद्य और नीलमणि आदि पड़ोसी देशों को भेजते थे। वे ताँबे को पिघला कर अस्त्र और बर्तन बनाते थे। हाथी दाँत के कार्य में वे बड़े पटु थे। हाथी दाँतों के आयात वे असीरिया और नूबिया से करते थे। वे सुन्दर जलपोत भी बनाते थे। कुम्हार की कला और पाषाण कला का भी काफी विकास हुआ था। चाक की सहायता से अति सुन्दर प्याले, गिलास और तश्तरियाँ बनाते थे। कागज का आविष्कार सबसे पहले

मिस्र में ही हुआ था। वे अपने हाथ से रूई के कपड़े बनाते थे परन्तु ये कपड़े रेशम के कपड़ों की भाँति प्रतीत होते थे। पशुओं से प्राप्त चमड़ी से भाँति-भाँति के वस्त्र और ढोल इत्यादि बनाते थे। पिपाइरस पौधा हल्की नाव, चप्पल चटाई और खस बनाने के काम में आता था। कताई-बुनाई की प्रथा भी उनके यहाँ प्रचलित थी। वहाँ के उच्चवर्गीय लोग लिलेन के वस्त्र बहुत अधिक मात्रा में पहनते थे।

(5) व्यापार—मिस्र के निवासी फोनेशिया, सीरिया, क्रीट और भारत आदि से व्यापार करते थे। व्यापार के लिए अधिकतर जलमार्ग ही प्रयोग में लाये जाते थे। नील नदी इसके आवागमन का मुख्य माध्यम थी। मिस्र में मुद्रा प्रणाली नहीं प्रचलित थी। अतः विनिमय का माध्यम चीज का अदल-बदल ही था। व्यापारिक सम्बन्ध अवश्य लिखा-पढ़ी करके स्थापित किया जाता था। आर्डर देने और रसीद देने की प्रथा भी प्रचलित थी। वसीयतनामें भी लिखे जाते थे। रुक्का, धरोहर आदि की प्रथा प्रचलित थी। मिस्र में अनेक कारखाने थे, जहाँ अधिकतर दासों से मजदूरी का कार्य लिया जाता था।

(6) आर्थिक संगठन के दोष—मिस्री आर्थिक संगठन का सबसे बड़ा दोष यह था कि वहाँ केन्द्रीकरण अत्यन्त प्रबल रूप में विद्यमान था। वहाँ राज्य और समाज के हित को एक माना गया था और इसीलिये राज्य सबसे बड़ी व्यापारिक संस्था थी। प्राचीन राज्य में यह प्रवृत्ति इतनी प्रबल नहीं थीं। परन्तु पिरामिड जैसे विशाल भवनों के फलस्वरूप राज्य के विभिन्न क्षेत्र में आर्थिक नियन्त्रण बढ़ता गया और निजी व्यापारियों की संख्या घटती गई।

प्रश्न—पिरामिड युग के मिस्रवासियों के धार्मिक, दार्शनिक विश्वासों की विवेचना कीजिये और उनकी बौद्धिक उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिये।

अथवा

मिस्री धर्म के विकास का वर्णन कीजिये और मिस्र की कला और धर्म पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

पिरामिड कालीन मिस्र के साहित्य, विज्ञान एवं कला की विवेचना कीजिये।

धार्मिक जीवन—मिस्र के समाज में धर्म की प्रधानता थी। राज्य-व्यवस्था और धर्म एक दूसरे के पूरक हो गये थे। कला पर भी धार्मिक प्रभाव था। यूनानियों के अनुसार मिस्र के निवासी बहुत धर्मनिष्ठ थे। सम्राटों को देवता का प्रतिनिधि समझते थे। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म का विशिष्ट स्थान था। मिस्र के धर्म के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं—

(1) बहुदेववाद—मिस्र के निवासी बहुदेववादी थे। वे प्रकृति के विभिन्न रूपों में अपने देवी-देवताओं की पूजा करते थे। देवताओं में सूर्य का महत्वपूर्ण स्थान था। इसको वे अधिष्ठाता तत्व समझते थे और बड़ी श्रद्धापूर्वक उसकी पूजा करते थे। उनका विश्वास था कि सूर्य ही संसार का नियामक है। सम्राट का सूर्य-पुत्र नाम से सम्बोधित करता था। मन्दिरों में सूर्य की प्रतिमायें बहुत अधिक मात्रा में पायी गई हैं। सूर्य के अतिरिक्त वे आकाश, जल, सरिता, अग्नि, वायु की भी पूजा करते थे।

कालान्तर में अपेनहोतेप चतुर्थ ने बहुदेववाद का खण्डन किया। उसने अपने साम्राज्य में सभी देवी-देवताओं की पूजा बन्द करवाने का आदेश दिया और सूर्य देवता (एटन) की पूजा को ही स्वीकार किया। इस प्रकार उसने एकेश्वरवाद की स्थापना करने का प्रयास किया परन्तु आगे चलकर जनता ने एकेश्वरवादी विचार-धारा को फिर परित्याग कर दिया और पुनः अनेक देवी-देवताओं की आराधना होने लगी।

(2) मन्दिर और पूजा-विधि—मिस्र में मन्दिरों को देवग्रह माना जाता था और इसीलिये उनका निर्माण उसी प्रकार किया जाता था जिस प्रकार घर होते थे। पिरामिड युग के मन्दिरों में आगे की ओर एक खुला हुआ आंगन होता था। उसके पीछे एक विशाल कक्ष तथा उसके पीछे भण्डार के रूप में काम आने वाले छोटे-छोटे कमरे होते थे। इन छोटे कमरों के बीच में ही गर्भगृह होता था जिसमें लकड़ी की बनी हुई देवमूर्ति स्थापित की जाती थी। देवमूर्ति को अत्यन्त सुन्दर आभूषणों से अलंकृत किया जाता था। देव-पूजन की विधि उसी प्रकार की थी जिस प्रकार हिन्दू धर्म में पाई जाती है। मूर्ति को भोग लगाया जाता था, उसे वस्त्रादि अर्पित किये जाते थे तथा उसे गायन-वादन से संतुष्ट किया जाता था। मंदिरों की आय के दो साधन थे—राज्य की ओर से की गई सहायता और भक्तों द्वारा दान में दी गई सामग्रियाँ। जो सामग्री देवता पर चढ़ाई जाती थी उसका उपभोग पुजारी करते थे और भक्तों को प्रसाद भी बाँटा जाता था। देवाख्यानों में लिखी हुई तिथियों पर विशेष उत्सव उसी प्रकार मनाये जाते थे जिस प्रकार भारत में रामनवमी, विजय दशमी आदि मनाये जाते हैं।

(3) पशु पूजा एवं वृक्षा पूजा—मिस्र के निवासी देवी-देवताओं के अतिरिक्त अनेक पशुओं की भी पूजा करते थे। पशुओं को देवताओं का रूप उसकी उपादेयता और उपयोगिता के आधार पर दिया गया था। वे लोग भेड़ और वृषभ की पूजा करते थे। भेड़ को एमनरा देवता, वृषभ को कोटा देवता मानते थे। वृक्षों की भी पूजा करते थे। खजूर को सबसे अधिक सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

(4) कर्मकाण्ड एवं पुजारी वर्ग—प्रारम्भ में मिस्र के धर्म में कर्मकाण्ड का महत्व नहीं था। पुजारी वर्ग धर्मनिष्ठ था। पुजारी अपनी विद्वता और धर्मनिष्ठता के कारण जनता के श्रद्धा के पात्र बन गये थे। बाद में, पूजन से कर्मकाण्ड की प्रधानता हो गई। कर्मकाण्ड और अनुष्ठानों के कारण पुजारी वर्ग को बहुत अधिक महत्व दिया जाने लगा। फलस्वरूप, पुजारी वर्ग में लोलुपता और स्वार्थ की भावना ने प्रवेश किया। अंध-विश्वास और जन्तर-मन्तर में जनता का विश्वास हो गया और पुजारी वर्ग ही इन जन्तर मन्तर का सम्पादन करते थे। मिस्र के मन्दिरों में देव-दासियाँ रहती थीं जिन्होंने आगे चलकर वेश्याओं का रूप ले लिया। बहुदेववाद, पुरोहितवाद और कर्मकाण्ड ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को इतना नष्ट कर दिया कि मिस्र निवासियों के धर्म में नैतिकता का स्थान न रहा।

(5) पारलौकिक जीवन—मिस्र निवासी, पारलौकिक जीवन में विश्वास करते थे। वे आत्मा में विश्वास करते थे। पुर्नजन्म में भी कदाचित उन्होंने विश्वास किया था। उनका कहना था कि मृत्यु के पश्चात् भी मनुष्य सुख-दुख का अनुभव

करता है। इसी कारण वे मृतक के साथ खाने-पीने की सामग्री, वस्त्र, आभूषण आदि रख देते थे। पिरामिड युग में जो मृतक शरीर रखे गये हैं उनको 'ममी' के नाम से पुकारा गया है।

मिस्र के निवासियों का यह मत था कि हर मनुष्य में एक शक्ति विशेष होती है जो जन्म के समय उसके साथ आती है, जीवन भर रहती है और मृत्यु के बाद भी उससे विलग नहीं होती। इस 'का' को मिस्रवासियों ने मानव शरीर का प्रतिरूप कहा है। यही कारण था कि मिस्रवासी मृतकों के साथ भोजन सामग्री रख देते थे। उनमें यह भय रहता था कि यदि भोजन सामग्री आदि नहीं रखी जायेगी तो कहीं 'का' अपने मल का ही भक्षण न करने लगे। इस 'का' के अतिरिक्त मिस्रवासी आत्मा में भी विश्वास करते थे और उनका कहना था कि शरीर में आत्मा उसी प्रकार निवास करती है जिस प्रकार वृक्ष पर पक्षी। आत्मा और 'का' में क्या सम्बन्ध था, इस विषय में कोई निश्चित जानकारी नहीं है।

मिस्र के निवासी अपने मृतकों को इसी दुनिया का निवासी मानते हैं। 'पिरामिड टेक्स्टस' में विभिन्न स्थलों पर 'मृतकों की दुनिया' की कल्पना की गई है। जहाँ प्रतिदिन संध्या समय सूर्य देवता जाते हैं। एक स्थल पर पाताल का भी उल्लेख हुआ है जहाँ मृतक आत्मायें सूर्य देव की नाव का इन्तजार करती हैं।

'यास्लोक' का भी उल्लेख हुआ है जहाँ पुण्य आत्मायें आनन्दमय जीवन व्यतीत करती हैं। इससे स्पष्ट है कि मिस्र के निवासी पाप और पुण्य में भी विश्वास करते हैं। वहाँ के निवासियों का मत था, मृत्यु के पश्चात मनुष्य को असेरिस नामक देवता के सामने जाना पड़ता है। वहाँ उसके कामों का ब्योरा लिखा जाता है। अच्छे कर्म करने वालों को स्वर्ग की और बुरे कर्म करने वालों को नरक की प्राप्ति होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मिस्र के निवासी आत्मा को अमर मानते थे और शरीर की नश्वरता में विश्वास करते थे। वे कर्मवादी थे और उन्हें पाप-पुण्य पर भी विश्वास था।

धर्म और राजनीति का सम्बन्ध—मिस्र की राजनीति में धर्म का प्रभाव बहुत अधिक रहा। पुजारियों का राजनीति के क्षेत्र में काफी हस्तक्षेप रहा। इस सम्बन्ध में एच० वाई वार्न्स ने लिखा है, "मिस्र के धर्म ने मिस्री राजनीति में प्रमुख भाग लिया। धर्मगुरुओं का वर्ग बहुत शक्तिशाली था और मिस्र के जीवन पर गहरा असर था। शक्तिशाली राजाओं के काल में वे राजा के अधीन थे। परन्तु जब धर्मगुरुओं की शक्ति विभाजन कार्यों में लगती थी तब केन्द्रीय शक्ति कमजोर होती थी। यह धर्मगुरु वर्ग फराओ की शक्ति को क्षीण करने और अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये किसी भी आन्दोलन में हमें सहयोग करने के लिये तत्पर रहते थे।

दर्शन—मिस्र के पिरामिड युग के दर्शन का अध्ययन दो रूपों में किया जा सकता है—(1) नैतिक दर्शन तथा (2) राजनीतिक दर्शन।

(1) नैतिक दर्शन—पिरामिड युग के मिस्रियों के दार्शनिक विचार 'मैम्फिस के धर्मशास्त्र' में देखने को मिलते हैं। ग्रन्थ में मेम्फिस देवता टा का आवाहन करते हुये उसे देवताओं का हृदय और जीभ कहा गया है, दूसरे शब्दों में टा को जगत का करण और निर्माता माना गया है।

(2) नैतिक दर्शन का केन्द्र—विन्दु 'मात का सिद्धान्त' माना जाता है। 'मात शब्द का क्या अर्थ है इसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। कहीं इसका अर्थ न्याय होता है और कहीं नियम, कहीं व्यवस्था और सत्य। इस शब्द का प्रयोग सामाजिक वैधानिक आदि कथनों में भी हुआ है कदाचित भारतीय वैदिक ऋषियों के 'कृत' के समान ही इसका प्रयोग हुआ था। मिस्र के निवासियों के अनुसार समस्त देवता 'मात' पर निर्भर हैं। समस्त दैवी शक्तियाँ उसकी आज्ञानुसार चलती हैं। इसके फलस्वरूप समाज में न्याय और सत्य की प्रतिष्ठा होती है।

(3) राजनीतिक दर्शन—मिस्र के राजनीतिक दर्शन के अनुसार संसार की सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था में पूर्ण परिवर्तन नहीं होता। परिवर्तन होता है, परन्तु फिर वही अवस्था आ जाती है। जैसे दिन, राज में बदलता है और रात के बाद पुनः दिन आ जाता है। संसार का सृजन भी एकाकी घटना है। संसार की उत्पत्ति के समय सूर्य देव 'रे' अव्यवस्था को समाप्त करके देव-व्यवस्था 'मात' की स्थापना की थी। सूर्य देवता के उत्तराधिकारी सम्राट फराओ ने इस व्यवस्था को बनाने का निरन्तर प्रयत्न किया। उनके अनुसार उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी को भी भी कार्य करने का अधिकार नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मिस्र का दर्शन राजनीतिक व्यवस्था के अनुकूल था। धर्म और दर्शन ने ही मिस्र को राजनीतिक चेतना प्रदान की और इसकी संस्कृति पर बहुत अधिक विकास हो सका।

शिक्षा एवं साहित्य

(1) शिक्षा—पिरामिड युग में शिक्षा एवं साहित्य में पर्याप्त उन्नति हुई थी। मिश्रवासी लिपि से भी परिचित थे। आरम्भ में वहाँ चित्राक्षर लिपि का प्रयोग होता था जिसमें कुल मिलाकर 2000 चित्र थे। कालान्तर में वहाँ 'हाइरेटिक' लिपि का विकास हुआ। इस प्रकार की लिपि का प्रयोग पत्रादि लिखने के लिये किया जाता था। 8वीं शताब्दी ई० पू० के लगभग मिश्र में 'डिपाटिक' लिपि का प्रयोग भी होने लगा जो एक प्रकार की शार्टहैण्ड की लिपि थी। लिपि के साथ ही मिश्र निवासियों ने लिखने-पढ़ने की सामग्री का भी समुचित प्रबन्ध किया था। उन्होंने पैपिरस नाम के वृक्ष से कागज का निर्माण किया था। वे नरकुल की लेखनी बनाते थे।

पिरामिड युग में समस्त मिश्र में पाठशालाओं का जाल सा बिछा हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा मन्दिरों में स्थित पाठशालाओं में दी जाती थी और पुजारी शिक्षण कार्य करते थे। आगे शिक्षा प्रदान करने के लिये सरकार की ओर से पाठशालायें खोली गईं थीं और योग्य विद्यार्थियों के लिये निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई थी। लेखन-कार्य पर अधिक बल दिया जाता था और विद्यार्थियों को चित्राक्षर और द्रुत दोनों ही लिपियाँ सिखायी जाती थीं।

(2) साहित्य—पिरामिड युग का साहित्य अधिकतर धार्मिक और दार्शनिक है। इस युग में महाकाव्यों, नाटकों और साहित्य आख्यानों की रचना नहीं हुई 'पिरामिड टैक्स्ट्स' इस युग की प्रमुख रचना है। इसमें मिश्री सभ्यता की झाँकी सुरक्षित है। इसके साथ ही दर्शनशास्त्र की कृतियाँ प्राप्त होती हैं। केगेम्ने तथा टा आदि मन्त्रियों ने अपने ज्ञान को लिपिबद्ध किया था। ये कृतियाँ नीति ग्रन्थ

कहलाती हैं। इनके उपलब्ध संस्करण मध्यराज युग के पूर्व के नहीं हैं और इसलिये इनका अध्ययन अगले अध्याय में किया जायेगा।

विज्ञान—पिरामिड में विशुद्ध विज्ञान का प्रकाश भी नहीं है। मिश्रवासी विज्ञान के केवल उन्हीं क्षेत्रों में रुचि रखते थे जिनका जीवन में व्यावहारिक महत्व होता था परन्तु उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति की थी। नक्षत्रों और ग्रहों का भेद उन्होंने आकाश मानचित्र बनाकर मालूम कर लिया था सौर पंचांग का आविष्कार हो गया था। वे जोड़ घटाना, भाग अच्छी तरह जानते थे परन्तु गुणा से अपरिचित थे।

चिकित्सा · चिकित्सा-शास्त्र के क्षेत्र में उन्होंने पर्याप्त उन्नति कर ली थी और चिकित्सकों का एक वर्ग के रूप में जन्म हो चुका था। यद्यपि चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र में उनके कुछ नुस्खे तो अधिक उपयोगी थे परन्तु अन्धविश्वासों और ओझाओं की लोकप्रियता के कारण इस क्षेत्र में बहुत अधिक प्रगति नहीं हो पायी। इस युग में मिश्र के निवासी मानव शरीर संरचना से विशेष परिचित नहीं थे और उन्हें भौतिक एवं रसायन शास्त्र का भी ज्ञान नहीं था।

गणित —मिश्रवासी गणित के ज्ञान में प्रवीण नहीं थे। वे एक लिखने के लिए एक बिन्दु और दो लिखने के लिये दो बिन्दु का प्रयोग करते थे। उनको दशमलव प्रणाली का ज्ञान नहीं था। जोड़, गुणा, भाग व घटाना जानते थे।

ज्योतिष—मिश्री कहते थे कि पृथ्वी चौकोर है उसके चारों किनारे पर पर्वत हैं जो आकार को उठाये हैं। इसी के आधार पर नील की बाढ़ आदि की भविष्यवाणियाँ करते थे। गिश्रवासी पाँच नक्षत्रों सटर्न (Saturn) मर्करी (Mercury) मार्स (Mars), जूपिटर (Jupiter) एवं वीनस (Venus) को मान्यता देते थे। मिश्री ज्योतिषियों ने जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य किया वह था कि उन्होंने एक वर्ष का कैलेन्डर बनाया जो आगे चलकर "जियार जियन कैलेण्डर" या जुलियन कैलेण्डर" के नाम से स्वीकार किया गया। मिश्री ज्योतिषियों ने वर्ष को 12 महीनों में विभक्त किया था प्रत्येक माह तीस दिन का मानते थे, शेष 5 दिन वह बढ़ोत्तरी तथा आमोद-प्रमोद मानते थे।

कला—

(1) वास्तुकला-मिश्र के निवासियों को वास्तु-कला का प्रत्यक्ष ज्ञान उनके द्वारा बनाये गये पिरामिड़ों को देखने में मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि इन पिरामिड़ों का निर्माण राज्य की आर्थिक व्यवस्था बिगड़ने के कारण राज्यों द्वारा जनता को कार्य में लगवाने के लिये करवाया गया था परन्तु ये मत उचित नहीं प्रतीत होते। वास्तव में पिरामिड़ों की रचना राजा और फराओं की अनश्वरता और गौरव को व्यक्त करने के लिये किया गया था। अपने इस उद्देश्य में मिश्रवासी अवश्य ही सफल रहे। मिश्र के पिरामिड संसार के 7 आश्चर्यों में से एक माने जाते हैं।

प्रारम्भ में पिरामिडों के निर्माण में कच्ची ईंटों का प्रयोग किया जाता था परन्तु बाद में पाषाण खण्डों का निर्माण होने लगा। 2980 ई० पूर्व में सीढ़ीदार पिरामिड का निर्माण हुआ। इसके कुछ ही समय बाद जिन पिरामिडों का निर्माण

हुआ वे अवश्य ही प्रसंशनीय हैं। 2900 ई० पू० तक जब खिजे हेमें खूपू के सुप्रसिद्ध विशाल पिरामिड का निर्माण प्रारम्भ हुआ तो मिश्र के निवासी इस कला में दक्ष हो चुके थे। हेरोडोटस का मत है कि इस पिरामिड का निर्माण एक लाख व्यक्तियों ने 20 साल में किया था। 420 फुट ऊँचा और 755 फुट लम्बा यह पिरामिड 13 एकड़ भूमि में बना हुआ और तत्कालीन मिस्री कला का ज्वलन्त प्रमाण है।

पिरामिडों के अतिरिक्त इस युग में अनेक भवनों का निर्माण हुआ था। स्तम्भों की सहायता से बड़े-बड़े कक्ष और छतें बनाने में मिश्र के कलाकार अत्यन्त निपुण थे परन्तु तत्कालीन मिश्र की कला उज्ज्वल प्रमाण उनके पिरामिड ही हैं। मिश्र के पिरामिडों के विषय में जे० ए० स्वेन ने लिखा है—"बिना आधुनिक मशीनों के इस आकार के ढांचे के बनाने का आशातीत कार्य सभ्य मनुष्यों के लिये आश्चर्यजनक है।"

"The tremendous task involved in building a structure of such preparation modern machinery in a marvel to civilised man"

—J. A. Swen

इन पिरामिडों के निर्माण के उद्देश्य के विषय में एक विद्वान ने ठीक ही लिखा है, "इनके निर्माण का उद्देश्य तत्कालीन राज्य के गौरव को सदैव के लिये सुरक्षित रखता है।" इसमें किंचितमात्र भी सन्देह नहीं है कि मिश्र के इन विशाल पिरामिडों ने उस युग को सदैव के लिए स्मरणीय बना दिया है।

(2) मूर्तिकला—पिरामिड युग में पाषाण और धातु दोनों ही प्रकार की मूर्तियाँ बनीं। अनेक रिलीफ चित्र भी बनाये गये। पत्थर की बनी मूर्तियों में विशालता, सुदृढ़ता और रूढ़िवादिता के दर्शन होते हैं। राजाओं की मूर्तियाँ अधिकतर बैठे हुये बनायी गईं। इन बैठी मूर्तियों मे खेफ के और हैमेसेत की मूर्तियाँ, जो क्रमशः काहिरा और लेब्रे संग्रहालयों में सुरक्षित हैं, विशेष प्रसिद्ध हैं। खड़ी मुद्रा की मूर्तियों में मसे रानोफर पुजारी की मूर्ति उल्लेखनीय है। खेफ के पिरामिडों के समक्ष स्थित "विशाल स्पिक्स" नामक मूर्ति अत्यन्त भव्य है। इस मूर्ति का शरीर सिंह का है और सिर फराओ खेफे का।

मिश्र की मूर्तियों को यथार्थिक भाव-प्रदान करने के लिये उन्हें स्वाभाविक रंगों से रंगा जाता था और आँखें पत्थरी बिल्लारी से बनायी जाती थीं। परन्तु इतना होने पर भी ये मूर्तियाँ स्वाभाविक नहीं प्रतीत होती हैं। मूर्तियों में भावहीन के दर्शन होते हैं। उनमें विशालता और गौरव तो है परन्तु भावों का दर्शन नहीं होता है दूसरी ओर साधारण जनों की मूर्तियाँ यथार्थ और सुन्दर हैं। इन मूर्तियों में शेख की मूर्ति और लिपिक की मूर्ति, अत्यन्त सजीव और सुन्दर है।

पिरामिड युग के कलाकारों ने धातु की मानव मूर्तियाँ भी बनायीं। इन मूर्तियों में पैपी प्रथम की काठ के ऊपर ताम्रपत्र ,चढ़ाकर बनायी गई मूर्ति अत्यन्त प्रशिद्ध है। इसके अतिरिक्त "हियराकोनपोलिस" की पवित्र 'श्येन की प्रतिमा" भी उल्लेखनीय है। इन दोनों ही मूर्तियों की आँखें ज्वाला काँच की बनाई गई हैं।

पिरामिड युग के रिलीफ चित्रों में अस्वाभाविकता के दर्शन होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग में मोटाई और गोलाई दिखाने में मिश्री कलाकार क

कठिनाई का अनुभव होता था। इस अस्वाभाविकता के होने पर भी मिश्र में रिलीफ चित्र देखने योग्य हैं।

चित्रकला—मिश्र के कलाकार अपने रिलीफ चित्रों को अनेक रंगों में रंगते थे परन्तु पिरामिड युग तक उनकी चित्रकला अधिक उन्नति नहीं कर सकी थी। हां, यह अवश्य है कि मिश्र के चित्रकार मूर्तिकारों की अपेक्षा परम्पराओं के बन्धन में जकड़े हुये नहीं थे और वे स्वतन्त्र रूप से चित्र बनाते थे।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं पिरामिड युग में मिश्र ने पर्याप्त सांस्कृतिक उन्नति की थी। उनकी वास्तु-कला संसार में अपनी भव्यता के लिये आज भी प्रसिद्ध है और मिश्र के पिरामिड संसार के आश्चर्यों में से हैं। ये पिरामिड इतना समय व्यतीत हो जाने के बाद भी गौरव को प्रदर्शित कर रहे हैं। अरब की एक कहावत है कि "समस्त संसार समय से पीड़ित है परन्तु समय पिरामिड से पीड़ित है।"

6

मिस्र सभ्यता का मध्य युग

(Middle age of Egyptian Civilization)

प्रश्न—मिस्र के मध्य-राज्य युग की संस्कृति और सभ्यता के विषय में आप क्या जानते हैं?

अथवा

मिस्री राज्य युग की शासन और धार्मिक व्यवस्था पर एक निबन्ध लिखिये।

2475 ई० पू० 6वें वंश के पतन के प्रश्चात् मिश्र के प्राचीन राज्य पिरामिड युग का भी अन्त हो गया। इसके बाद लगभग 300 वर्ष तक मिश्र में अराजकता की स्थिति रहीं। 7वें, 8वें, 9वें, दसवें वंश के शासन-काल में मिश्र की कोई विशेष उन्नति नहीं है। मिश्र के दसवें वंश का पतन 2160 ई० पू० में हुआ। 11वां वंश 2160 से लेकर 2000 ई० पू० तक चला। 12वें वंश की स्थापना 2000 ई० पू० में हुई। इस युग का शासन 1788 ई० पू० तक चला। इस युग का संस्थापक एमेनम्हेत प्रथम माना जाता है। इसके पश्चात् इसके वंशजों ने काफी समय तक राज्य किया। इसके उत्तराधिकारियों में शेशोसुत का नाम उल्लेखनीय है। उसने नील नदी को एक नहर द्वारा लाल सागर से मिलवाया था।

शासन व्यवस्था—

(1) सामन्तवादी व्यवस्था—मिश्र के इतिहास में 11वें और 12वें वंश का

शासन-काल मध्य-राज्य-युग के नाम से पुकारा जाता था। पिरामिड युग में राजा की सत्ता सर्वोपरि थी, परन्तु मध्य युग में ऐसा नहीं था क्योंकि उस समय तक सामन्तवादी प्रथा का जन्म हो चुका था और इस युग में मिश्र में मध्यकालीन-योरोप की भाँति सामन्तवाद का प्रचलन रहा। मिश्र छोटे छोटे अनेक राज्यों में विभाजित हो गया और राज्यों में सामन्त शासन करने लगे। 12वें वंश के शासन-काल को छोड़कर मध्य राज्य युग में मिश्री सामन्त और जागीरदार अनियन्त्रित रहे। वे फराओं की भाँति ही सेना रखते थे और अपनी जागीरों के प्रधान धर्माधिकारी, सेनापति एवं न्यायाधीश के अधिकारों का खुलकर उपयोग करने लगे थे।

(2) फराओ की स्थिति - पिरामिड युग की अपेक्षा मध्य युग में फराओ अत्यन्त दुर्बल हो गया। कुछ नियम और परम्परायें इस प्रकार की थीं कि वह सामन्तों पर थोड़ा बहुत नियन्त्रण रख पाता था अन्यथा फराओं का उन पर नियन्त्रण बिल्कुल न रह पाता। बड़े-बड़े सामन्तों के पास दो प्रकार की जागीरें थीं। एक प्रकार की जागीर उत्तराधिकार में प्राप्त होती थी और दूसरी राजकीय होती थी जिसका स्वामी फराओ माना जाता था। ये भूमि सामन्त तभी प्राप्त कर सकते थे जब फराओं उनके स्वामित्व को मान्यता प्रदान कर देता था। दूसरी प्रथा यह थी कि प्रत्येक जागीर के हितों में और वहाँ पाले जाने वाले पशुओं की देख-रेख के लिये कुछ केन्द्रीय पदाधिकारी नियुक्त रहते थे। ये केन्द्रीय पदाधिकारी भी छोटे जागीरदारों पर नियन्त्रण रखते थे। तीसरा नियन्त्रण जागीरदारों पर यह होता था कि इन जागीरदारों को केन्द्रीय सरकार को वार्षिक कर भेजना होता था।

(3) आय के साधन—मध्य-राज्य में फराओ की आय पिरामिड युग की अपेक्षा बहुत कम हो गई। सामन्त बहुत कम कर देते थे और सामन्तों की जागीरें बढ़ जाने के फलस्वरूप फराओं की आय कम हो गयी। अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये ही मध्य युग के राजाओं ने नूबिया की सोने की खानों और अन्य स्थानों पर बिखरे बहुमूल्य पत्थरों की खानों से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। पुन्ट के साथ उनके व्यापारिक सम्बन्ध बहुत अधिक थे। सीरिया और फिलीस्तीन पर आक्रमण करके भी उन्होंने अपनी आय को बढ़ाया था।

(4) शासन-व्यवस्था में परिवर्तन—मध्य युग की शासन-व्यवस्था पिरामिड युग की शासन-व्यवस्था के ही समान थी। परन्तु उसमें छोटे-बड़े परिवर्तन किये गये। इस युग में प्रधानमन्त्री का स्थान फराओ से बड़ा था और वह किसी बड़ी जागीर का स्वामी होता था। प्रधानमन्त्री पद अब जागीरदारों को ही प्राप्त होता था। प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में "तीस का सदन"।

नाम की संस्था का निर्माण हुआ था। यह संस्था न्याय-व्यवस्था से सम्बन्धित थी, तीसरा परिवर्तन यह हुआ कि अब फराओ व्यक्तिगत सुरक्षा और उपद्रवी सामन्तों पर नियन्त्रण रखने के लिये अपने पास एक वेतनभोगी स्थायी सेना रखता था। यद्यपि यह सेना बहुत छोटी होती थी परन्तु फिर भी फराओ, उसके राजप्रसादों और दुर्गों की रक्षा करती थी।

सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था—मध्य राज्य युग की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था भी पिरामिड युग की भाँति ही थी। केवल थोड़े से परिवर्तन हुये

थे। इस युग में सामन्त समाज सबसे प्रतिष्ठित वर्ग हो गया था और सामन्तों की गतिविधि का केन्द्र राजधानी न होकर अपनी-अपनी जागीरें और प्रान्तीय नगर थे। इस युग में मूल्य वर्ग, अपेक्षाकृत अधिक प्रतिष्ठित और समृद्ध हो गया था। धीरे-धीरे राजपुरुष वर्ग अस्तित्व में अनेक लगा था। लिपिकों के पेशों को बहुत अधिक सम्मानित माना जाता था। कृषक और दास खेती करते थे और मौका मिलने पर वे मजदूरी भी करते थे।

धर्म और दर्शन—मध्य-राज्य युग में पिरामिड युग की अपेक्षा धर्म और दर्शन के क्षेत्र में भी कुछ परिवर्तन हुये थे। यहाँ उनकी चर्चा हम संक्षेप में कर रहे हैं—

(1) "रे" की प्रतिष्ठा में वृद्धि—मध्य राज्य-युग में पिरामिड युग की अपेक्षा सूर्य देव रे का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया। अन्य देवताओं के पुजारी भी अपने देवताओं के नाम के साथ "रे" का नाम जोड़ने लगे। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य राज्य युग में सूर्य देवता की एकेश्वरवादी प्रवृत्ति भी पनपी।

(2) ओरेसिस की प्रतिष्ठा में वृद्धि—मध्य-राज्य-युग में 'रे" के साथ ही ओरेसिस की प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई। "रे" के समान में वृद्धि का कारण मूलतः राजनैतिक था परन्तु ओरेसिस की प्रतिष्ठा का कारण उसकी साधारण जनों में लोकप्रियता थी। साधारण जनता ओसेरिस के प्रति अत्यधिक श्रद्धा रखती थी।

(3) परलोकवादी विचारधारा में अन्तर—मध्य-राज्य युग में पिरामिड युग की अपेक्षा परलोकवादी विचारधारा में भी कुछ अन्तर आ गया। पिरामिड युग में ओसेरिस को परलोक का न्यायाधीश स्वीकार किया गया था परन्तु मध्य राज्य में उसका महत्व और अधिक बढ़ गया और वही परलोकवाद का मूलाधार बन गया। मध्य राज्य युग में यह मान्यता प्रचलित हुई कि प्रत्येक मृतात्मा ओसेरिस के न्यायालय में आती है और ओसेरिस अपने 42 न्यायाधीशों की सहायता से उसके कर्मों की जाँच करता है। विभिन्न ढंगों से उसकी जाँच होती है। जो मृतात्मा इस जाँच में खरी उतरती है उसे घोर यातनायें सहन करनी होती हैं। मध्य राज्य युग में पारलौकिक जीवन को भी विभिन्न प्रकार के संकटों से पूर्ण माना गया। परलोक में भी मृतात्मा को सर्प, घड़ियाल आदि भयभीत करते हैं। यही कारण था कि इस युग में मृतक की शवपेटिका पर जादुई मन्त्र लिख दिये जाते थे।

(4) धर्म में सदाचार का स्थान मध्य राज्य युग में धर्म में सदाचार को महत्व प्रदान किया गया था। कर्मवाद को मान्यता प्रदान की गई और यह कहा गया कि जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है उसी के अनुसार उसे फल मिलता है। फलस्वरूप व्यक्ति को अच्छे कर्म करना चाहिये।

साहित्य—मध्य-युग में साहित्य और दर्शन के क्षेत्र में भी विशेष उन्नति हुई। इस युग का कथा-साहित्य अत्यन्त उच्च कोटि का था। "सिनुहे" नामक सामन्त की कथा अत्यन्त लोकप्रिय है। इसी प्रकार एक "नाविक की कहानी" भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस युग में नीति-साहित्य भी बहुत अधिक मात्रा में लिखा गया। इस नीति साहित्य में "ट" होतेप की नीति, "विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह 5वें वंश के फराओं का मन्त्री और मेम्पिस का गवर्नर था। वृद्धावस्था में उसने

अपने पुत्र को सुख देने के लिये अपने अनुभवों को 42 पैराग्राफ में लिपिबद्ध किया। उसके यह अनुभव ही नैतिक आदर्श बने। नीति-ग्रन्थों में "मुखन कृषक का आवेदन" भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। "एमेनेम्हेत के उपदेश" भी अपना अलग महत्व रखते हैं। इन उपदेशों से यह पता चलता है कि मध्य राज्य युग में मिस्रवासियों का आजीवन निराशावाद की ओर अधिक झुका हुआ था। मिस्री निराशावादी की सबसे प्रभावशाली अभिव्यक्ति "वीणावादन के मान" में हुई है "इपुवेर की भविष्य-वाणी" यहूदी बाइबिल की याद दिलाती है। इसका भी अपना अलग महत्व है।

कला

(1) **वास्तुकला**—मध्य-राज्य युग की वास्तुकला के विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है क्योंकि उस युग के भग्नावशेष प्राप्त नहीं होते। हेलियोपोलिस आदि नगरों में बनवाये गये मन्दिरों के चिन्ह भी प्राप्त नहीं होते। केवल कुछ गुहा गुहा-समाग्रियों का अधिक महत्व है। इस युग के पिरामिड बहुत छोटे और अधिकतर ईंटों के बनते थे। हवारा का पिरामिड विशेष प्रसिद्ध हैं।

(2) **मूर्ति-कला**—मध्य राज्य युग की मूर्ति कला प्राचीन राज्य युग और पिरामिड काल की अपेक्षा अधिक उन्नत दशा में थी। समनेम्हेत की 50 फुट ऊँची मूर्ति इस युग की मूर्ति कला का सुन्दर उदाहरण है।

(3) **अन्य कलायें**—मध्य राज्य युग में स्वर्ण कला का विकास भी हुआ। राजकुमारियों और रानियों के अनेक आभूषण और मुकुट प्राप्त हुये हैं। इनमें से कुछ आभूषण तो ऐसे हैं जो आज भी नहीं बनाये जा सकते हैं। इस युग की चित्र-कला भी लगभग उसी प्रकार की है जिस प्रकार की पिरामिड युग की चित्रकला है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सभ्यता और संस्कृति की उन्नति की दृष्टि से मध्य-राज्य युग विशेष प्रसिद्ध नहीं है। सत्य तो यह है कि मिस्र के इतिहास में पिरामिड युग को जो गौरव प्राप्त है वह मध्य-राज्य युग से नहीं प्राप्त है। पिरामिड युग से बने हुये पिरामिड आज भी संसार के 7 आश्चर्यों में गिने जाते हैं जबकि मध्य-राज्य युग के पिरामिडों को यह गौरव प्राप्त नहीं है।

•

7

मिस्र सभ्यता का साम्राज्यवादी युग
(Imperial Age of Egyptian Civilization)

प्रश्न—मिस्र के साम्राज्य युग की सांस्कृतिक उन्नति के विषय में आप क्या जानते हैं?

अथवा

मिस्र के साम्राज्यवादी युग की राजनीतिक स्थिति व शासन-व्यवस्था के विषय में आप क्या जानते हैं? संक्षेप में लिखें।

उत्तर—

राजनीतिक स्थिति—मिस्र के 12 राज्य-वंश का पतन 1788 ई० पू० में हुआ। इसके बाद बहुत समय तक अराजकता की स्थिति बनी रही। 18वीं वंश का प्रथम सम्राट अहमोक प्रथम था। वह बड़ा योग्य शासक था। उसने विस्तार-वादी नीति को अपनाया। सबसे पहले उसने सीरिया और फिलीस्तान पर आक्रमण किया। उसके पुत्र थुटमीज प्रथम ने भी उसी नीति का अनुसरण किया और अपनी सत्ता काशमिस तक स्थापित की। थुटमीज के बाद उसकी पुत्री हतशेपसुत गद्दी पर बैठी। यह संसार की सर्वप्रथम महिला थी जिसने अपने देश की बागडोर अपने हाथ में संभाली थी। उसने स्त्रियों की वेश-भूषा का परित्याग करके पुरुष की वेश-भूषा और दाढ़ी-मूंछ धारण की वह अपनी वीरता के लिये बहुत प्रसिद्ध थी। वह बड़ी लोकप्रिय थी। उसके शासन-काल में व्यापार को भी बढ़ावा मिला।

हस्तक्षेपसुत की मृत्यु के पश्चात् 1479 ई० में थुटमोज तृतीय गद्दी पर बैठा। वह साम्राज्यवादी शासक था उसने सीरियन, फोनेशियन, हिट्टाइट असीरियन और केन्नाइट जातियों को जीत लिया। इसका साम्राज्य समस्त भूमध्य-सागर प्रदेश में फैला हुआ था। 1411 ई० में आमेनोहोतेप तृतीय गद्दी पर बैठा। इसके काल में अनेक प्रासादों और देवालयों का निर्माण हुआ है। तत्पश्चात् 1375 ई० पू० में इसका पुत्र अमेनोतेप चतुर्थ सम्राट हुआ। वह एक शान्ति-प्रेमी शासक था। इसके शासन काल में मिस्र में बहुदेववाद की प्रथा प्रचलित हुई। इसके पूर्व के लोग एकेश्वरवादी थे। इसके बाद ही मिस्र के इस वंश का अन्त हो गया।

उन्नीसवें वंश अथवा दूसरे साम्राज्य का संस्थापक तूतेनखामेन था। उसका सेनापति हमहाव था जो बड़ा योग्य था। इसके उत्तराधिकारियों में सेती प्रथम और रेमेसिस द्वितीय के नाम प्रमुख हैं। रेमेसिस भी बड़ा साहसी और बलवान था। उसने फिलिस्तीन पर विजय प्राप्त करके हित्तियों के विरुद्ध "देश का युद्ध" लड़ा था। 1269 ई० में हित्तियों ने सन्धि कर ली और इसने लैक्सोर के मन्दिर के निर्माण कार्य को बढ़ावा दिया। करनाक के मन्दिर के पूर्व कक्ष को पूरा करवाया और अनेक मूर्तियों का निर्माण करवाया। 67 वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई।

रेमेसिस द्वितीय के पश्चात् उन्नीसवें राजवंश का पतन बड़ी शीघ्रता से हो गया। 1250 ई० पू० में सल्लाख ने बीसवें वंश की स्थापना की। इसके उत्तराधि-कारी रेमेसिस तृतीय ने भी मिश्र की ख्याति को बढ़ाया। 18वें से लेकर 20वें वंश के शासनकाल तक साम्राज्यवादी युग चला गया।

बीसवें वंश के पश्चात् इक्कीसवें वंश की स्थापना 1090 ई० पू० में हुई। 21 वें वंश के शासन-काल के पश्चात् 935 ई० पू० में मिश्र में लीबियानों का अधिकार हो गया जो 712 ई० पू० तक चलता रहा। इसके पश्चात् इथिओपियनो ने 633 ई० पू० में साम्तिक ने अथीरियनों को भगा दिया और उसके वंश का

शासन बहुत समय तक चला। नीको द्वितीय के शासन-काल में एशिया पर भी आक्रमण किये गये। इसके शासन-काल में मिश्र व्यापार का भारी केन्द्र बन गया। इसका पतन 525 ई० पू० में हुआ और ईरान में हखाम्शी सम्राज ने मिश्र को अपने राज्य में मिला लिया। मिश्र अब परतन्त्र राज्य था।

ईरानियों के पश्चात् 332 ई० पू० से 48 ई० पू० तक मिश्र पर यूनानियों ने राज्य किया और इसके पश्चात् 30 ई० पू० में मिश्र रोम का एक प्रान्त बन गया।

शासन-व्यवस्था

(1) फराओ की प्रतिष्ठा में वृद्धि—साम्राज्यवादी युग में फराओ की प्रतिष्ठा में बहुत अधिक वृद्धि हुई। सामन्तवादी युग में सामन्तों के प्रभाव के फलस्वरूप फराओ की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। परन्तु इस युग में उसकी स्थिति में सुधार हुआ और मध्यराज्य युगीन सामन्तवाद समाप्त हो गया। पुराने सामन्त फराओ के सेनापति या सभासद मात्र रह गये और फराओ का सेना पर पूर्ण नियन्त्रण हो गया। वह साम्राज्य की शासन-व्यवस्था के प्रत्येक अंग को नियन्त्रित करने लगा।

(2) मन्त्री की स्थिति—फराओं को उसके शासन में सहायता देने के लिये मन्त्री की नियुक्ति की जाती थी। साम्राज्य युग में यह पद महत्वपूर्ण बना रहा लेकिन राज्य की गतिविधियों का क्षेत्र बढ़ाने के फलस्वरूप 18वें वंश के फराओ ने एक के स्थान पर दो मन्त्रियों की नियुक्ति की। एक मन्त्री उत्तरी मिस्र के लिये नियुक्त किया जाता था जिसका कार्यालय हेलियोपोलिस में होता था। दूसरा मन्त्री दक्षिण मिस्र के लिये नियुक्त किया जाता था और वह फराओ के साथ थीबिज में रहता था। दक्षिण मिस्र में रहने वाला मन्त्री उत्तरी मिस्र में रहने वाले मन्त्री की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता था। वह राज्य के प्रादेशिक कार्यालय की गतिविधि पर पूर्ण नियन्त्रण रखता था और देश की आय-व्यय पर भी उसका पूर्ण नियन्त्रण रहता था। वह अपनी रिपोर्ट प्रति वर्ष मिस्री फराओ को देता था। जिस समय फराओ युद्ध के लिये चला जाता था उस समय उसकी शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती थी।

(3) न्याय-व्यवस्था—साम्राज्यवादी में युग में न्याय के समस्त अधिकार मन्त्री के हाथ में आ गये थे। उसके दरबार में ही सभी मुकदमें निर्णीत होते थे। साथ ही जिले की स्थानीय अदालतें भी थीं जहाँ स्थानीय पुजारी और सिविल पदाधिकारी के प्रतिनिधि की हैसियत से मुकदमों का निर्णय करते थे। न्यायाधीशों का अलग से कोई पद नहीं था। मिस्र में उस युग में विधि-संहिता विद्यालय थी परन्तु उनकी कानूनों के विषय में निश्चित जानकारी नहीं है। कानून का सबको पालन करना होता था और किसी भी अपराधी को बिना उस पर मुकदमा चलाये दंडित नहीं किया जा सकता था।

(4) सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था—साम्राज्यवादी युग में सामन्तवादी प्रथा समाप्त हो गई थी और स्थानीय शासन के लिये बहुत से राज्य कर्मचारी नियुक्त किये गये थे। परिणाम यह था कि मध्य वर्ग को आगे बढ़ने का अवसर

मिला था और एक ऐसे राजपुरुष वर्ग का उदय हुआ था जिसमें प्राचीन सामन्त और मध्य दोनों ही वर्ग के लोग सम्मिलित थे। इस वर्ग का जीवन-उच्च स्तर कुलीन वर्ग था जिसमें फराओ के सभापति और उच्च पदाधिकारी होते थे। साम्राज्य युग में मध्यम वर्ग के लोगों के लिये सैनिक-सेवा अनिवार्य थी और सैनिकों का प्रभाव अधिक बढ़ गया था। सिविल सेवा के लिये फराओ इन सैनिकों पर ही निर्भर रहता था निम्न वर्ग की अवस्था पहले की अपेक्षा कुछ सुधर गई थी।

साम्राज्य युग में राज्य की आर्थिक उन्नति के लिये अनेक प्रयास किये गये। देश की समस्त भूमि सरकारी नियन्त्रण में आ गयी। केवल मन्दिरों की भूमि को छोड़ दिया गया। इस भूमि को फराओ अपने कृपा-पात्रों को जोतने के लिये देता था। देश के उद्योगों पर राज्य का नियन्त्रण हो गया और विदेशी व्यापार पर भी राज्य का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया। इन सरकारी नियन्त्रणों के फलस्वरूप स्थिति में विशेष सुधार नहीं हुआ।

प्रश्न—अख्नाटन के धार्मिक विचारों पर प्रकाश डालिये।

साहित्य—साम्राज्य युगीन धार्मिक साहित्य से "बुक आफ डेड" का अपना अलग महत्व है। लौकिक साहित्य में अनेक प्रेम गीत लिखे गये। ये प्रेम गीत उर्दू गजलों की भाँति प्रतीत होते हैं। काव्य-साहित्य के साथ इस युग में कथा-साहित्य भी खूब लिखा गया। नवें वंश के शासन-काल में कथा-साहित्य में विशेष उन्नति हुई। कथा-साहित्य में अधिकतर जन-कथायें हैं और साम्राज्य युग में ये साहित्यिक रूप धारण करने लगी थीं। इस युग की कथाओं में "एक अभागे राजकुमार की कथा" और 'दो भाइयों की कहानी' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

कला

(1) **वास्तु-कला**—साम्राज्य युग की वास्तु-कला को वह गौरव प्राप्त नहीं है जो पिरामिड युग को प्राप्त है। इस युग में पिरामिडों का महत्व अधिक नहीं रहा परन्तु कुछ मन्दिरों का निर्माण अवश्य हुआ। इन मन्दिरों में "कार्नाट का मन्दिर" आबूस्मिबेल का मन्दिर और 'लक्सोर का मन्दिर' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कर्नाटक का मन्दिर सम्भवतः विश्व का विशालतम भवन है। लक्सोर का मन्दिर अपने सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध है।

(2) **स्थापत्य-कला**—साम्राज्य युग में स्थापत्य के क्षेत्र में भी उन्नति हुई। प्रत्येक मन्दिर में अनेक मूर्तियों का निर्माण किया था। इस युग की स्थापत्य कला पिरामिड युग की स्थापत्य कला से मिलती-जुलती है। अन्तर यह है कि समय की गति के साथ इसकी विशालता में अन्तर था। थटमोस तृतीय और रेमेसिस द्वितीय द्वारा निर्मित पाषाण-मूर्तियाँ गगनचुम्बी हैं।

अन्य कलायें—वास्तु-कला एवं स्थापत्य-कला के साथ ही इस युग में अन्य कलाओं का भी विकास। चित्रकला का जन्म पिरामिड युग में हो चुका था परन्तु उसका पर्याप्त विकास साम्राज्यवाद युग में ही हुआ। मिस्री चित्रकला का सबसे सुन्दर नमूना अख्नाटन के समय में ही प्राप्त होता है। कलाकारों ने दीवालों पर अनेक चित्र बनाये थे। इन चित्रों में, बनैले बैल की कुदान और भयभीत हिलकी दौड़ आदि चित्र विशेष सुन्दर हैं।

साम्राज्य युग में काष्ठ, चर्म और स्वर्ण-निर्मित फर्नीचर आबनूस और हाथी दांत के बक्से, सोने और बहुमूल्य पत्थरों से युक्त रथ, स्वर्ण-पत्रों से मंडित सिंहासन आदि बनाये गये। इनमें साम्राज्य युग की कलात्मकता झलकती है।

अखनाटन की धार्मिक क्रान्ति—साम्राज्यवादी युग में अखनाटन नाम का एक अत्यन्त प्रसिद्ध सम्राट हुआ। उसने धर्म के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तन किये और 'अखनाटन की धार्मिक क्रान्ति' मिस्र के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

अखनाटन से पूर्व की धार्मिक स्थिति—अखनाटन से पूर्व की धार्मिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। साम्राज्य युग में भी राजपुरुषों के और सैनिकों के साथ ही पुजारियों का प्रभाव काफी बढ़ता गया। पुजारियों को मन्दिरों की भेंट और चढ़ावों से बहुत अधिक आय होती थी। राजकीय आय का बहुत बड़ा भाग मन्दिरों को दे दिया जाता था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि मिस्र की भूमि का सातवां भाग पुजारियों के अधिकार में था जबकि वह केवल जनसंख्या की 2 प्रतिशत मात्र थी। मध्यराज युग में धर्म और सदाचार में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया था, वह समाप्त हो गया। धर्म के संरक्षक विलासमय जीवन व्यतीत करने लगे और धनलोलुपता एवं भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया। जादू-टोने पर लोगों को बहुत अधिक विश्वास हो गया और धर्माधिकारी साधारण जनता को परलोक का भय दिखला कर उससे धन वसूल करने लगे। पाप-मोचक प्रमाण पत्र बहुत अधिक मात्रा में बिकने लगे। ऐसा विश्वास हो गया कि इन पाप-मोचक प्रमाण-पत्रों को खरीदने पर पाप करने पर भी व्यक्ति को परलोक में कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा।

इसी समय मिश्र में एकेश्वरवादी प्रवृत्ति बलवती हुई। मिश्र के अन्य देशों से सम्बन्ध बढ़ जाने के फलस्वरूप अन्य देवी-देवताओं के विषय में भी मिश्रियों को जानकारी प्राप्त हुई। परन्तु वे यह मानते थे कि उनके देवता ही सर्वोच्च देवता हैं। इस भावना ने एकेश्वरवादी प्रवृत्ति को जन्म दिया।

इन परिस्थितियों में 1375 ई० पू० एमनहोतेप चतुर्थ उर्फ अखनाटन मिश्र के राजनीतिक और धार्मिक जीवन में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी।

अखनाटन का धर्म

(1) **अखनाटन का एटनवाद**—एमेनहोतेप चतुर्थ उर्फ अखनाटन मिश्र का ही नहीं समस्त विश्व इतिहास का शायद सबसे विलक्षण शासक था। वह अत्यन्त भावुक, सुकुमार, संवेदनशील विचारशील और आदर्शवादी था। परन्तु साथ ही उसमें कर्मठता और दृढ़ता भी विद्यमान थी। आरम्भ में ही उसने पुजारी वर्ग में व्याप्त भ्रष्टाचार का विरोध किया और एटन नामक एक नवीन देवता की उपासना के लिए जनता को प्रोत्साहित किया। एटन देवता की प्रसंशा करते हुए उसने अपना नाम अखनाटन रख लिया। एटन वास्तव में सूर्य देव रे का दूसरा नाम था परन्तु अखनाटन उसे केवल मिश्र का ही नहीं समस्त संसार का एक मात्र देवता मानता था। उसकी कल्पना बौद्धिक सूर्य के रूप में नहीं वरन् जीवनदायक प्रकाश के रूप में की जाती

थी। सूर्य को अखनाटन का निराकार शक्ति मानता था जो किरणों के रूप में समस्त संसार में व्याप्त रहती थी।

अखनाटन के एटनवाद में पुरानी अन्ध-विश्वासों के दर्शन नहीं होते। उसका कथन था कि एटन समस्त मनुष्यों का पिता है और संसार का नियामक है। उसने अपने धर्म में नैतिकता का समावेश किया था और उसका कथन था कि एटन न्यायाधीश और सत्यप्रिय है और वह हिंसापूर्ण—विजयों का विरोधी है। वह निराकार है और सूर्य चक्र उसका प्रतीक है।

एटन की उपासना सूर्योदय और सूर्यास्त के समय की जाती है। इस उपासना में अधिक चढ़ावे, कर्मकाण्ड, तन्त्र-मन्त्र और पुजारियों की आवश्यकता नहीं होती थी। केवल हृदय में एटन का ध्यान किया जाता था और उसकी स्तुति एवं श्रद्धा के रूप में कुछ पुष्प, पत्र और फल चढ़ाये जाते थे। अखनाटन का मत है कि एटन उसी से प्रसन्न होते हैं जो सच्चे हृदय से उनकी स्तुति करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अखनाटन एका एटनवाद सादगी, पवित्रता और नैतिकता से युक्त था और उसमें आडम्बरता का कहीं भी स्थान नहीं था।

(2) अखनाटन का परलोकवाद—अखनाटन का परलोकवाद अत्यन्त सरल था। अखनाटन ने प्राचीन पुजारियों द्वारा प्रस्तुत पारलौकिक जीवन को मान्यता नहीं प्रदान की। उमने असीरिस के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं किया। अखनाटन का मत था कि मृत्यु के पश्चात कुछ समय तक मनुष्य की आत्मा स्वर्ग में निवास करती है अथवा वह उन स्थानों पर चली है जो जीवित अवस्था में उसको अच्छे लगते हैं। वहाँ उसे अतीव आनन्द की प्राप्ति होती है। अखनाटन नरक की कल्पमा नहीं करता। उसका मत था कि देवता एटन अत्यन्त दयालु है और वह किसी भी मनुष्य को नारकीय पीड़ाएँ नहीं दे सकता। दुष्टात्माओं को वह केवल यह दण्ड देता है कि मृत्यु के बाद उसके अस्तित्व का पूर्ण विनाश हो जाता है।

(3) एकेश्वरवादी विचारधारा—अखनाटन ने आरम्भ में अन्य देवताओं के प्रति सहिष्णुता की नीति को अपनाया और धर्म का प्रचार किया। उसने अपने नवीन देवता के लिये भव्य मन्दिर बनवाया। जब प्राचीन धर्मानुयायियों को यह विश्वास हो गया कि वह एटन को ही एक मात्र देवता बना देगा तो उन्होंने उसका विरोध आरम्भ किया। परिणामस्वरूप अखनाटन ने अन्य सभी देवताओं के मन्दिरों को बन्द करवा दिया और उनके पुजारियों को बाहर निकाल दिया। इस प्रकार अखनाटन ने एकेश्वरवाद का प्रचलन किया।

अखनाटन के बाद धर्म—अखनाटन के विचार उसके समय के अनुकूल नहीं थे। परिणाम यह हुआ कि उसकी मृत्यु के बाद उसका धर्म समाप्त हो गया। उसके दामाद ने उसके धर्म को फिर से प्रतिष्ठित करना चाहा परन्तु पुजारियों के विरोध के फलस्वरूप उसे उसके कार्य में अधिक सफलता नहीं मिली और कालान्तर में पुनः प्राचीन धर्म प्रचलित हो गया।

अखनाटन का मूल्यांकन—अखनाटन के विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न विचार हैं। कुछ उसे अत्यधिक महान व्यक्तित्व वाला बतलाते हैं और कुछ निर्दयी

एवं अत्यधिक महत्वाकांक्षी। इन दोनों प्रकार के विद्वानों में प्रथम कोटि के विद्वानों का मत ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है। ब्रेस्टेड और बोगेल आदि विद्वानों ने अख्नाटन को एक महान् शासन और धर्म-प्रचारक बतलाया है। अख्नाटन को सरल और आडम्बर रहित एकेश्वरवाद को प्रचलित करने का श्रेय प्राप्त है। यह ठीक है कि उसने पुजारियों को दबाया और उसने यह कार्य तभी किया जब पुजारी उसके धर्म को चोट पहुँचाने लगे। अपने आदर्शों को पूर्ण रूप देने के लिये अख्नाटन ने अपना मूल रूप ले लिया। यदि अख्नाटन के विचार मिश्र में विद्यमान रहते और अख्नाटन धर्म का पतन न होता तो मिश्र में कालान्तर में जो भीषण रक्तपात हुआ वह नहीं होता।

●

8

ईजियन (मिनोअन) सभ्यता

(Aegean (Minoan) Civilization)

प्रश्न—मिनोअन सभ्यता के विषय में आप क्या जानते हैं?

अथवा

"रोम और पश्चिम की सभ्यता की जननी यूनानी सभ्यता, ईजियन सभ्यता की पुत्री है।" इसके सन्दर्भ में ईजियन सभ्यता के विकास पर प्रकाश डालिये।

यूरोप में सभ्यता का आरम्भ और विकास ईजियन प्रदेशों में हुआ। यूनान और एशिया माइनर के बीच के समुद्र को ईजियन सागर के नाम से पुकारा जाता है। अति प्राचीन-काल में इस सागर के अन्य छोटे-छोटे द्वीप जैसे क्रीट, ट्राय, टिरिंस और माइसीन आदि अति उन्नत दशा में थे। इन समस्त द्वीपों से जिस सभ्यता का विकास हुआ उसे ही हम ईजियन सभ्यता के नाम से पुकारते हैं।

ईजियन सभ्यता को अनेक नामों से पुकारा जाता है। क्रीट द्वीप में विकसित होने के कारण इसे क्रीटन सभ्यता कहा जाता है। क्रीट में माइनोस (Minos) नाम का एक प्रतापी राजा हुआ था और उसी नाम पर इसे मिनोअन सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है।

सभ्यता का उद्भव—इस सभ्यता का उद्भव कहाँ से हुआ। इस प्रश्न पर विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। स्पेंग्लर के अनुसार यह मिश्र-सभ्यता की ही एक शाखा है। अन्य विद्वान कहते हैं कि यद्यपि यह ठीक है कि इस सभ्यता की बहुत सी बातें मिश्र की सभ्यता से मिलती हुई हैं परन्तु इसे मिश्र की सभ्यता की उपशाखा नहीं माना जा सकता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इसका जन्म पूर्णतया एशिया माइनर की सभ्यता से हुआ है। इस सम्बन्ध में विल ड्यूरॉट महोदय

ने अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है—"हमे यह मानने का अवसर है कि क्रीट में जो संस्कृति उत्पन्न हुई, उसका आदि स्थल एशिया था परन्तु वह अलौकिक रही।"

"Let us believe that in is social origins, the Cretan culture was Asiatic in many of its arts Egyptian in essence and total st remained unique."
—Will Durant.

अतः हम यह सकते हैं कि इस सभ्यता का उदय चाहे जिस सभ्यता से हुआ हो, परन्तु इसकी कुछ विशेषताएँ हैं जो संसार की अन्य सभ्यताओं से बिल्कुल विभिन्न है।

इतिहास

उत्तर-पाषाण काल—ईजियन सभ्यता का सबसे पहले विकास क्रीट में हुआ। पूर्व पाषाण काल में ईजियन प्रदेश की सबसे प्राचीन सभ्यता उत्तर-पश्चिम पाषाण कालीन ही है। इसका समय 6000 ई० पू० से 3000 ई० पू० के बीच का माना जाता है। इस युग में मिट्टी की मूर्तियाँ, तकलियाँ, करघे आदि व्यापक मात्रा में बनाये जाते थे।

पूर्व मिलोअन-काल—इस काल तक यहाँ के निवासी ताम्र में टिन मिलाकर कांस्य बनाना सीख गये थे। इस युग तक लोगों को अक्षर ज्ञान भी हो गया था आरम्भिक कांस्य युग में ट्राय-नगर पाँच बार बना और नष्ट हुआ।

मध्य मिनोअन-काल—मध्य कांस्य युग में क्रीट की सभ्यता का बहुत अधिक विकास हुआ। इस सभ्यता के निर्माता भी वही लोग थे जिन्होंने पूर्व मिनोअन सभ्यता का विकास किया। इस युग में नोसस (Knoussus), फेस्टस (Phaestus) और मल्लिया (Mallia) में अनेक राजप्रासाद बनवाये गये। इनमें भण्डार-गृह भी होते थे अनेक मन्दिर भी बने। नालियों की सुन्दर व्यवस्था थी। इस युग में मृभाण्ड कला और भित्ति चित्र कला का भी पर्याप्त विकास हुआ। मध्य मिनो-अनल युग में एक भूकम्प आया जिससे फेस्टास, मोक्सलीस तथा ननिया के राजप्रासाद नष्ट हो गये।

उत्तर मिनोअन-काल—यह क्रीट के दीर्घ जागरण का युग है। बहुत समय के पश्चात् इस सभ्यता का पुनः विकास हुआ। इस युग के विषय में एक विद्वान ने लिखा है—सोलहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियाँ मिश्र की चरम सीमा की अवस्थाएँ हैं और एक क्रीट के लिये पौराणिक एवं स्वर्णिम युग है।

"The 16th and 17th Centuries before our era zenith of Aegean civilization, the classic and golden age of Certe."

इस काल में फेस्टस, टाइलिस, नोनस, टियाडा तथा गूदिया में विशाल महल बनवाये गए। समस्त क्रीट राजनीतिक एकता के सूत्र में बँध गया और बहुत अधिक भौतिक उन्नति हुई। इस युग में ईजियन प्रदेश के मिश्र के साथ बड़े अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध थे। इस युग में वास्तुकला, चित्रकला, और मूर्तिकला का बहुत अधिक विकास हुआ।

शासन-व्यवस्था—क्रीट की शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में जो कुछ भी जानकारी उपलब्ध हुई है। वह भित्ति चित्रों और सांस्कृतिक तथ्यों के द्वारा हुई है। इस सभ्यता में दैवीय व्यवस्था को अपनाया गया था।

सम्राट—क्रीट के नरेशों की उपाधि मिनोआ थी। सम्राट ही राज्य का प्रधान पुजारी, प्रधान सेनापति और प्रधान न्यायाधीश होता था। इसी सभ्यता के लिये अन्य कर्मचारी होते थे जो अधिकतर अभिजात वर्ग के ही होते थे। कर में राजा को खाद्यान्न और पेय वस्तुओं की प्राप्ति होती थी। राजप्रासाद विशाल भण्डार होते थे। व्यवस्था के लिये सम्राट अनेक लिपिकों की भी नियुक्ति करता था। जो आय-व्यय का निरीक्षण और रजिस्ट्री का कार्य करते थे।

सैन्य-व्यवस्था—सम्राट के पास राज्य की सुरक्षा के लिये सेना होती थी। सुरक्षा के लिये जल सेना का विशिष्ट स्थान था। राजा ही सेनापति होता था। और उसकी मदद के लिये अन्य सैनिक होते थे। इनके हथियार पतली बरछियाँ, धनुष और ढाल होती थीं ये लोग चमड़े के शिरस्त्राण और कवच धारण करते थे। कदाचित रथ का प्रयोग भी लोग करते थे जिनमें अश्वों को जोता जाता था। हेंजिया त्रियादा में राजपत्र प्राप्त हुआ जिससे इनकी सैनिक व्यवस्था का पता चलता है। इसमें एक सेनानायक राजाज्ञ प्राप्त कर सकता है।

न्याय-व्यवस्था—राजा ही देश का सर्वोच्च न्यायाधीश होता था। इन्वास में न्यायालय के ध्वंस विशेष प्राप्त हुआ है जिनमें पता चलता है कि सम्राट ऊँचे सिंहासन पर बैठकर न्याय करता था। अधिकतर कारावास का दण्ड दिया जाता था। यह कारावास अधिकतर पृथ्वी के अन्दर होते थे।

राज्य की आय—उपहार और कर, राज्य की आय के मुख्य साधन थे। इसके अतिरिक्त राज्य की आय फैक्ट्रियों, मिलों और दूकानों द्वारा भी होती थी। इसी आय के द्वारा राज्य के कर्मचारियों को वेतन दिया जाता था।

सामाजिक जीवन

जीवन के प्रति दृष्टिकोण—ईजियन नागरिक आनन्दमय जीवन व्यतीत करने के पक्षपाती थे। वे स्वतन्त्रता और सौंदर्य के प्रेमी थे। यही कारण था कि उनके राज-प्रासाद और राजमार्ग चहल-पहल से युक्त रहते थे। वे "जियो और जीने दो" सिद्धान्त को मानने वाले थे।

सम्मिलित परिवार—इनके समाज में सम्मिलित परिवार की प्रणाली प्रचलित थी। इसी कारण इनके घर भी विशाल होते थे। मिनोआकाल के एक भवन का ध्वंसावशेष मिला है जिनका निचली साजेल में ही 20 कमरे थे। परन्तु आगे चलकर सम्मिलित परिवार की प्रथा टूटने लगी थी।

रहन-सहन—यहाँ के लोगों का रहन-सहन काफी उच्चकोटि का था। इनके राजप्रासाद स्नानगृहों, वातायनों, प्रकाश-कूपों और नाट्य-गृहों आदि से युक्त रहते थे। इनकी स्वच्छता की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। जाड़े से रक्षा के लिये भट्ठियाँ होती थीं और नालियों की भी सुन्दर व्यवस्था होती थी। कदाचित ये लोग शतरंज जैसा खेल खेलते थे।

वस्त्र एवं आभूषण—ईजियन श्रीमन्तों की वेश-भूषा काफी सादी होती थी। जाँघिये के ऊपर लुंगी बाँधने की प्रथा थी। शरीर के ऊपरी भाग पर कोई कपड़ा नहीं पहना जाता था। परन्तु कभी-कभी कोई कपड़ा ओढ़ लिया जाता था। वे पैरों में जूते भी पहनते थे।

स्त्रियाँ और पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे। उनके मुख्य आभूषण नेकलेस, मुद्रिका कर्णफूल आदि थे। धनी वर्ग धातुओं के आभूषण पहनता था और निर्धन वर्ग मूँगे और कोड़ियों के आभूषण पहनता था।

आमोद-प्रमोद—ये लोग मुष्टि युद्ध, कुश्ती और मानव पशु युद्धों के शौकीन थे। आखेट प्रेमी भी थे। एक शतरंज जैसे खेल का भी चित्र मिला है। एक चौकोर खानों वाली सुन्दर मेज मिली है जिसमें हस्तिदन्त, सोना, चाँदी और बहुमूल्य पाषणों का प्रयोग किया गया है।

स्त्रियों की दशा—क्रीट के समाज में महिलाओं को बहुत ऊँची दृष्टि से देखा जाता था। सामाजिक जीवन में स्त्रियों को बहुत अधिक स्वतन्त्रता की गयी थी। परन्तु राजनीति के क्षेत्र में उनको बहुत अधिक स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त थी। पर्दे की प्रथा नहीं थी और स्त्रियाँ भी पुरुषों की भाँति उत्सवों आदि में भाग लेती थी। कुछ सीलें मिलीं हैं जिनसे पता चलता है कि स्त्रियों को मिट्टी के बर्तन बनाने का विशेष शौक था। ऐसे भी अनेक चित्र मिले हैं जिनमें मुष्टिका प्रहार के द्वारा एक स्त्री महिषों से युद्ध कर रही है। स्त्रियों और पुरुषों के नागरिक अधिकारों में कोई भेद नहीं था। स्त्रियों नवीनता को पसन्द करती थी। वे जूड़े बाँधती थी और इस प्रकार के ब्लाउज पहनती थी जिनके कालर ऊपर उठे रहते थे और बाँह, गर्दन तथा स्तन खुले रहते थे। भित्ति चित्रों में ईजियन स्त्रियों की कमर को पतली दिखाया गया है। कुछ चित्रों में स्त्रियों को हैट धारण किये हुए भी दिखाया गया है। ईजियन स्त्रियाँ भी सर्वथा आधुनिक लगने वाले वस्त्र (योरोपियन स्त्रियों के सादृश) पहनती थीं।

आर्थिक दशा—यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि ईजियन प्रदेश में कृषि की दशा अच्छी नहीं थी। इन लोगों को खाद्य पदार्थों के लिए अन्य देशों पर निर्भर रहना पड़ता था। इनकी आय के मुख्य साधन उद्योग-धन्धे ही थे। राजकीय और व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार के कारखाने मौजूद थे जिनमें कपड़ा, मृभाण्ड और धातु का कार्य होता था। राजकीय कारखाने अधिक उन्नत दशा में थे और इन कारखानों में बहुत-सी स्त्रियाँ कार्य करती थी। इस सम्बन्ध में ग्लोट्ज ने लिखा है—"सैकड़ों स्त्रियाँ जो कपड़ा मिलों में काम करती थीं, रानी की आज्ञापालक थीं।"

ईजियन लोग शक्ति संचलित यन्त्रों का प्रयोग नहीं जानते थे। ये अधिकतर मनुष्य की मेहनत पर निर्भर रहते थे। परन्तु फिर भी उसकी फैक्ट्रियों में आधुनिक प्रणाली को अपनाया गया था। उसकी दशा का वर्णन करते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार बर्न्स ने लिखा है—"यद्यपि वे शक्ति के चलने वाली मशीनों का उपयोग नहीं करते थे फिर भी उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता था और उस काल में मजदूरों का केन्द्रीयकरण और नियन्त्रण भी होता थे तथा कार्यों का बंटवारा भी होता था।

यहाँ का उत्पादित माल सुदूर देशों में जाकर बिकता था। ईजियन लोग

कुशल व्यापारी थे और उपनिवेश स्थापना में भी वे बड़े जागरूक थे। व्यापार के लिए जलमार्ग का ही अधिक प्रयोग होता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि ईजियन निवासियों ने औद्योगीकरण की नीति को अपनाया था जो अति प्राचीन काल में अपने ढंग का पहला प्रयास था।

धर्म—ईजियन धर्म के विषय में विशेष जानकारी नहीं है। परन्तु फिर भी जो कुछ कल्पना और कुछ चित्रों के आधार पर ज्ञात हुआ उसकी चर्चा यहाँ की जा रही है। इनके धर्म के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं।

बहुदेववाद—ये लोग बहुदेववादी थे। पुजारी का इनके यहाँ बहुत सम्मान होता था। ये लोग देवी-देवताओं के अतिरिक्त पाषाण-पूजा, आयुध-पूजा, वृक्ष-पूजा, पशु-पूजा भी करते थे।

(क) पाषाण-पूजा—ईजियन निवासियों का मत था कि पर्वतों की चोटियों के पत्थरों में देवी शक्तियाँ वास करती हैं। अतः ये लोग पत्थरों को पूजा उन्हें विभिन्न आकार देकर करते थे। कभी ये लोग स्तम्भ बनाकर उनकी पूजा करते थे और कभी परशु पूजा करते थे। ये लोग परशु को देवलोक से फेंका हुआ वज्र समझते थे। प्रारम्भ में परशु के पत्थर होते थे परन्तु कालान्तर में धातु के बनाने लगे।

(ख) शास्त्र-पूजा—यहाँ के निवासी शस्त्रों की भी पूजा करते थे। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि ये लोग आयुध-पूजा में विश्वास करते थे। ये लोग ढाल को देवी पूजा प्रतीक मानकर उसकी पूजा करते थे। ढाल को ये लोग बहुत पवित्र मानते थे। यहाँ ये अनेक पूजा-गृहों, पवित्र वृक्षों और मुद्रिकाओं आदि पर ढाल के चित्र प्राप्त होते हैं।

(ग) पशु-पूजा—ईजियन संसार में पशु-पूजा का भी विशेष महत्व था। एक चित्र में पूजा के लिए जाते हुए लोग गधे की खाल को ओढ़े हुए हैं और दूसरे चित्र में स्त्रियाँ गीदड़ों की खाल पहने हुए हैं। पशुओं के अनेक चित्र उपलब्ध हो रहे हैं।

(घ) पशुओं के साथ ही ये लोग पक्षियों की भी पूजा करते थे। पक्षियों में कपोतों को बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था। अनेक पूजा-ग्रहों, पात्रों, स्तम्भों और वृक्षों आदि पर पक्षियों के चित्र मिलते हैं।

(च) पादपपूजा—विश्व के अधिकांश देशों में किसी काल में पादपपूजा प्रसिद्ध रही है। ईजियन निवासी प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के उपासक थे। अतः उन शक्तियों के प्रतीक वृक्षों की पूजा करते थे। वृक्ष पूजा से सम्बन्धित अनेक चित्र प्राप्त हुए। एक चित्र में सृष्टि देवी एक वृक्ष के नीचे चित्रित की गयी है। एक अन्य चित्र में सागर देवी अपनी नाव एक लता के नीचे विराजमान है। एक चित्र में दानव वृक्षों को सींचते हुए चित्रित किये गये हैं।

(छ) मातृ-देवी की पूजा जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि ईजियन समाज में स्त्रियों का स्थान बहुत ऊँचा था। कदाचित इसी के फलस्वरूप मातृ-देवी की उपासना को विशेष महत्व दिया गया। यह देवी समस्त ब्रह्माण्ड की अधिकारिणी और पृथ्वी, स्वर्ग तथा रसातल की साम्री समझी जाती थी। जगमाता के रूप में इनकी उपासना होती थी। वे माता को जगतः जननि मानते थे। माता

के प्रतीक सर्प तथा फाख्ता माने जाते थे। यही दोनों माता के 'चरसंगी समझे जाते थे। माता के अनेक चित्र मिलते हैं। कभी वह बालकों का पोषण करती हुई चित्रित की गयी है, कभी पशुओं के मध्य में विराजमान है और फूलों से युक्त वृक्षों के नीचे आसीन है। ईजियन समाज में देवी-देवताओं का मानवीकरण किया गया था। यही कारण है कि मातृ-देवी का स्वरूप स्त्रियों जैसा ही है।

यह विश्वास किया जाता था कि माता पर्वत की ऊँची-ऊँची चोटियों पर निवास करती हैं। परन्तु स्वेच्छा से सागर बिहार भी करती है। स्वर्ग में भी निवास करती है। परन्तु सेवकों के आर्तनाद से व्याकुल होकर भू-लोक पर आती है। प्रकाश और अन्धकार माता की इच्छानुसार ही होते हैं। एक चित्र में सूर्य और चन्द्रमा को मातृ-देवी की आराधना करते हुए चित्रित किया गया है।

माता जगत् पालक होने के साथ ही साथ जगत् संहारक भी है। विश्व-माँ" को ईजियन लोगों ने दुर्गा की भांति चित्रित किया हैं। भित्ति चित्रों में "विश्व माँ" को एक हाथ में पशु तथा दूसरे में धनुष्य-वाण लिए हुए सिंहासन पर विराज-मान प्रदर्शित किया है। उनका दुर्गा का रूप भी चित्रित किया गया है। एक चित्र में वह सिंह के सहित और वेश में चित्रित की गयी और उनके हाथों में धनुष-वाण और परशु है।

देवता की पूजा—ईजियन लोग मातृ-देवी के साथ ही एक देवता की भी उपासना करते थे। इस देवता को माता के पुत्र अथवा प्रेमी रूप में चित्रित किया गया है। इस प्रकार इसका धर्म द्विदेववादी था। कभी-कभी उसे पुत्र के रूप में अंकित किया गया है। कभी वह सिंहों से खोलता हुआ और कभी माता के पीछे जाता हुआ चित्रित किया गया है। यूनानी उसे "वेल्केनोस" और "क्रीट का जियस" नाम से पुकारते हैं।

कुछ विद्वानों का यह मत है कि आरम्भ में इस देवता को माता का पुत्र ही माना जाता था। परन्तु कालान्तर में उसे देवी के प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। उसका प्रतीत वृषभ था। उसका और मातृदेवी दोनों का प्रतीक "दोहरा पशु" था। क्रीटवासियों का वह विश्वास था कि जिस स्थान पर यह चिन्ह मना दिया जाता था वह स्थान देवता द्वारा रक्षित रहता है। इस देवता को संसार का पालक और संहारक दोनों ही माना गया हैं : इस देवता की संतुष्टि के लिए अनेक प्रकार के यज्ञ किये जाते थे। जिनमें बैलों की बलि दी जाती थी।

धर्म-प्रतीक—वृषभ, दोहरे पशु तथा नाम आदि प्रतीकों के अतिरिक्त ईजि-यन अन्य देवी शक्तियों और उनके प्रतीकों की पूजा करते थे, सूर्य-चन्द्र, स्वास्तिक तथा 3 का चिन्ह घना अत्यधिक पवित्र माने जाते थे। अनेक वेदियों, नर्तनों तथा मूर्तियों पर स्वास्तिक का चिन्ह बना हुआ मिलता है। तीन की संख्या, इनमें बड़ी कल्याणकारक मानी जाती थी। उत्खनन में प्रत्येक पवित्र वस्तु अधिकतर तीन की संख्या में उपलब्ध हुई जैसे तीन स्तम्भ, मूर्तियाँ, तीन वृक्ष और तीन डालें।

उपर्युक्त चिन्हों के अतिरिक्त वृषभ का सींग भी धर्म चिन्ह माना जाता था। और उसे राजमहलों की छतों और वेदिकताओं पर बनाया जाता था।

मन्दिर और पूजा-विधि—प्रारम्भिक काल से क्रीटवासियों के पूजा ग्रह नहीं

होते थे। वे खुले मैदान में वृक्षों के नीचे और पर्वतों के ऊपर देवताओं की उपासना करते थे। कालान्तर में अपने देव-स्थान की रक्षा के लिए उन्होंने ईंट, पत्थर का घरोंदा बनाना आरम्भ किया। तत्पश्चात् उपहार आदि में आयी हुई सामग्री की रक्षा के लिए कक्ष बनने लगे। इस प्रकार मन्दिरों का श्रीगणेश हुआ। यह मन्दिर सामाजिक उपासना के लिए होते थे और इनका निर्माण पर्वतों के ऊपर अथवा किसी अन्य उच्च स्थान पर होता था। व्यक्तिगत पूजा के लिए घरों में स्वम्भ बनाये जाते थे, मूर्तियाँ और वेदियाँ भी बनायी जाती थीं। देवालय में अनेक प्रकार के उपकरण संग्रहित रहते थे।

उपासना विधि—मन्दिर के प्रवेश के पूर्व उपासक अपने को जल और तेल से पवित्र करता था तत्पश्चात् वह अर्घ्य देता था और देवी को खाद्यान्न, पेय तथा फल-फूल समर्पित करता था। बलि की प्रथा भी प्रचलित थी। गाय, बैल, भेड़े और बकरों की बलि दी जाती थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि क्रीट का समाज नारी प्रधान था। अतः देवालय में अधिकतर स्त्रियाँ ही रहती थीं। जो मनुष्य को देवता के समीप ले जाने वाला स्रोत समझी जाती थीं पुजारियों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती थी। पुजारियों की वेश-भूषा धारण करता था। क्रीट का राजा भी धार्मिक कार्यों के अवसर पर स्त्रियों जैसी वेश-भूषा धारण करता था। इन वेश-भूषा में चर्म की बनी हुई स्कर्ट प्रमुख था। पूजा करने वालों में भी स्त्रियों की संख्या अधिक होती थीं। अनेक ऐसे चित्र मिले हैं जिनमें स्त्रियाँ सामूहिक पूजन कर रही हैं। मन्दिरों में धूप बत्ती जलाने की प्रथा भी प्रचलित थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस स्त्री प्रधान समाज के धर्म में कर्मकार का विशेष महत्व था। यहाँ के उत्सव भी धार्मिक भावना से प्रेरित रहते थे।

ईजियन लिपि—ईजियन लिपि की सबसे बड़ी समस्या यह है कि यह लिपि आज तक भली भाँति पढ़ी नहीं जा सकी है। उनकी लिपि को चित्रकाक्षर लिपि ही कहा जायगा। इसमें लगभग 135 चिन्ह होते थे। इस लिपि के 40 अक्षर हित्ती लिपि से मिलते जुलते हैं तथा कुछ चिन्ह मिस्त्री चित्राक्षरों के सदृश हैं। इजियन क्यूनीफार्म (कालाक्षर) लिपि के समान ही मिट्टी की पाटियों पर लिखते थे। क्रीट का सबसे महत्वपूर्ण अभिलेख 1908 ई० में मिला है। साढ़े छः इंच व्यास की मिट्टी की तश्तरी पर लिखे हुए इस लेख में 241 चित्राक्षर है। ब्यूरी का मन है कि यह लेख कोई मन्त्र है और इसे क्रीट मानकर उन्होंने इसे विदेशी बताया है। जो भी हो परन्तु आज तक यह लिपि पढ़ी नहीं जा सकी है। इतिहासकार इसको पढ़ने का प्रयास कर रहे हैं।

मिनोअन कला में चित्राक्षर लिपि के साथ ही रेखा लिपि का भी विकास हुआ। यह लिपि तो बाएँ से दायें लिखी जाती थी। अथवा पहली पंक्ति बाएं से दाएँ और दूसरी दाएँ से बाएँ लिखी जाती थीं। इसमें लगभग 90 चिन्ह थे और इस लिपि को भी अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है।

वैज्ञानिक प्रगति—ईजियनों की लिपि के न पढ़ने जाने के कारण प्राप्त उनकी वैज्ञानिक प्रगति की भी जानकारी नहीं है। जो कुछ थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त हुई है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसका गणित दशमलव पद्धति पर

आधारित था। भार-प्रणाली पर बेबिलोनियों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। वे खगोल विद्या की भी थोड़ी बहुत जानकारी रखते थे और शायद उनके पास उनका पंचांग भी था। इन्जीनियरिंग के क्षेत्र में भी उनकी थोड़ी बहुत जानकारी थी।

ईजियन-कला—कला के क्षेत्र में ईजियन निवासियों ने बहुत अधिक उन्नति की थी। वे सौंदर्योपासक थे और प्रकृति की प्रत्येक वस्तु को सुन्दरतम रूप देने का प्रयास करते थे। उनकी कला की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(अ) वैयक्तिकता—ईजियन कला में वैयक्तिकता के दर्शन होते हैं। उनकी सील मुहरों में कलाकारों के स्वयं में व्यक्तित्व की झलक है। यद्यपि उन्होंने विभिन्न कलाओं के कुछ न कुछ ग्रहण किया परन्तु उसे चित्रित करने में इन्हें अपनी सूझ-बूझ और व्यक्तित्व का परिचय दिया है।

(ब) सर्वांगीणता—मेसोपोटामिया और मिश्र की कलाएँ एकांगी कलाएँ हैं। वे या तो राजाओं की छत्रछाया में पनपी हैं या धर्म का आधार लेकर विकसित हुई हैं। परन्तु ईजियन कला सर्वांगीण है। उसमें जीवन का वास्तविक रूप चित्रित किया गया है। यह धार्मिक राजाओं की कला न रहकर हमारी और आपकी कला बन गयी है।

(स) रूढ़िविहीनता—ईजियन कला रूढ़ियों के बन्धक से बँधकर नहीं रही है। उस कला में कलाकारों के हृदय का उन्मुक्त रूप में प्रस्फुटन हुआ है कलाकार की कल्पना ने कला को और अधिक सजीव बना दिया है। क्रीट के कलाकारों ने किसी भी कला का अन्धानुकरण नहीं किया।

(द) सारग्रहिता—क्रीट के कलाकारों ने विभिन्न कलाओं से सीखा है। बेबिलोनियन सिलेण्डर्स एवं ट्राय के दो हाथ वाले प्यालों की तरह की चीजें क्रीट में भी बनीं। मिश्र की धार्मिक परम्परा का भी क्रीट की कला पर प्रभाव मिश्र के कलाकारों की तरह ही यहाँ के कलाकारों ने स्त्रियों को गोरे रंग का और पुरुषों को ताँबे से रंग का चित्रित किया है।

(य) सामग्री का प्रभाव—यहाँ की कला पर उसकी सामग्री का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। उनकी कला में संगमरमर का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है। परन्तु चूना प्रस्तुत स्टेटाइट अधिक मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं। इसका कारण यह था कि यहाँ संगमरमर नहीं प्राप्त होता था और चूना प्रस्तुत और स्टेटाइट की अधिकता थी। पिसी मिट्टी की अधिकता के कारण उसका प्रयोग भी व्यापक मात्रा में हुआ है।

(र) विभिन्न कलाओं का सामंजस्य—क्रीट में विभिन्न कलाओं में सामंजस्य स्थापित हुआ है। स्वर्णकार की कला और कुम्हार की कला में एकरूपता के दर्शन होते हैं। जो भाव चित्रकार अपने चित्र में प्रदर्शित करता था वही अब मूर्तिकार अपनी मूर्ति में। इस समानता ने ईजियन कला के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया।

(ल) सजीवता—क्रीट के कलाकारों ने सजीवता की ओर विशेष ध्यान दिया है। कई-कई चित्र तो बिल्कुल, वास्तविक प्रतीत होते हैं। पत्तों से रहित वृक्षों का

बसन्त को निहारना, गड़रिया के लड़के द्वारा उछलते हुए वृषभों के कान पकड़ना, दूध पिलाती हुई गायों के चित्रों में बड़ी सजीवता है।

(ब) प्राकृतिकता—ईजियन कला नैसर्गिक कला है। प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण इस कला में हुआ है। यहाँ के चित्रकारों ने प्रकृति के विभिन्न रूपों को अपनी तूलिका में बाँध लिया है।

(स) पूर्णता—ईजियन कला में पूर्णता के दर्शन होते हैं। यहाँ जीव के विभिन्न रूपों के चित्र मिलते हैं। सिंहासन पर विराजमान राजमहिषी के चित्रण में जो पूर्णता है वही पूर्णता बालू पर क्रीड़ा करते हुए मल्लाह के चित्र में परिलक्षित होती है।

(ह) लघुता - क्रीट की कला में विशालता के दर्शन नहीं होते। उसमें सत्यता और सुन्दरता तो हैं परन्तु भव्यता नहीं। उनके सभी चित्र काफी छोटे हैं। सीलों, मुद्रिकाओं और हाँथी दांत की लघु-कृतियों में उनकी कला का वास्तविक रूप प्रकट हुआ है। उनकी समाधियाँ और मूर्तियाँ आदि भी लघु हैं। क्रीट के कलाकारों ने अपनी दक्षता का प्रदर्शन लघु-मात्र, प्याले और तस्तरियाँ आदि बनाने में किया है।

(1) वास्तु-कला —ईजियन वास्तु-कला का ज्ञान हमें नोसोस, माइसिनी, फेप्टस टिरिस टथा ट्राय के राजप्रासादों, अन्य भवनों और मकबरों से होता है। नोसोस का राजप्रासाद ईजियन वास्तु-कला का सर्वोत्तम नमूना है। नौसंस पहाड़ी कीट के उत्तरी तट के बीच में थोड़ी दूर पर स्थित थी। यहाँ यह विशालकाय प्रसाद बनवाया गया था जो लगभग साढ़े छः एकड़ भूमि में विस्तृत था। इसमें घुसने के लिए दक्षिण की ओर प्रवेश द्वारा था। केन्द्रीय प्रांगण बहुत बड़ा था। जिसके चारों ओर फैक्ट्रियाँ, राजकीय कार्यालय, भण्डार-गृह आदि थे। इसमें स्नान-गृह, शौचालयों, प्रकाश फूलों तथा जल एवं सफाई की भी सुन्दर व्यवस्था थी। दीवालों पर चित्र बने हुए थे। इसमें एक दोहरे परशु का कक्ष' था जिसमें दोहरे परशु का चिन्ह बना था। फेप्टास में निर्मित क्रीट का राजप्रासाद भी बहुत भव्य था। टिरिस का राजप्रासाद तो इतना भव्य था कि उसे देखकर यूनानियों ने कहा था कि मानव निर्मित है ही नहीं।

राजप्रासादों के अतिरिक्त अन्य भवनों के ध्वंसावशेष भी मिले हैं। वासलिकी में पूर्व मिनोअन काल का एक भवन मिला है जो आयताकार है। इसको बनाने में ईंट, मिट्टी और लकड़ी का प्रयोग किया गया है। इसकी निचली मंजिल में ही 20 कमरे हैं। चमेली में एक अन्य भवन प्राप्त हुआ है जो सिनोअन-कालीन प्रतीत होता है। इसमें 12 कमरे हैं और हर कमरे में एक द्वारा है। भवन के बाहर भी एक द्वार है फर्श मिट्टी के ही बने हुए हैं।

ईजियन लोगों में सामूहिक दफन की प्रथा प्रचलित थी। गोनियाँ में कुछ मकबरे और अनेक अस्थि-पंजर मिले हैं। मकबरे मधु-मक्खी के छत्ते की तरह गोलें होते थे। शवों के साथ हाथी दांत की सिलें पत्थर संगमरमर के बर्तन, हथियार और मूर्तियाँ भी मिली हैं।

क्रीट की वास्तु-कला अन्य कलाओं की अपेक्षा गिरी हुई थी। उस काल में भव्यता तो है परन्तु सुन्दरता के दर्शन नहीं होते। उपयोगिता की भावना के दर्शन

नहीं होते। क्रीट की वास्तु-कला के विषय में विल ड्युरान्ट ने ठीक ही लिखा है कि, "क्रीट का निर्माण आधुनिक काल के अन्तर्राष्ट्रीय ढंग का था। उसमें त्याग की भावना प्रबल थी। आन्तरिक विकास को बाह्य से अधिक महत्व दिया जाता था।"

"The Architecture of Grete may be said to have ressembled the modern international style in its sacrifice of form to utility and in its emophasis upon a pleasing and libable interior as more important than external beauty." —Will Durant.

(2) तक्षण और स्थापत्य—क्रीट की तक्षण और स्थापत्य काल बहुत उच्च-कोटि की थीं। तक्षण-कला में विशालता का प्रभाव है। मिश्र के कलाकारों की भांति यहाँ कलकारों में विशाल मूर्तियों को नहीं बनाया है। परन्तु उन्होंने लघु-पात्र, मुहरें, तश्तरियाँ और फूलदान आदि बड़ी सुन्दरता से बनाये हैं। ये सब चीजें मिट्टी, हाथी-दांत और अन्य धातुओं की बनती थीं। परवर्ती मिनोअन युग की 6 इंच ऊँची नागदेवी अथवा पुजारिन की मूर्ति हाथी दांत द्वारा बनायी हुई है। इस मूर्ति के दोनों हाथों में सर्प है और वह लंहगा, चुस्त ब्लाउज और ऊँचा हैट पहने हुए है। एक प्रकार की खेलखड़ी के बने हुए कृषकों के पात्र भी बहुत सुन्दर हैं। स्टोटाइट के बने हुए "राजा के पात्र" में एक शासक को अपने सैनिकों का स्वागत करते हुए दिखाया गया है। "घूंसेबाजों के पात्र" में घूंसेबाजी को चित्रित किया गया है। स्वर्णकारी की कला के उत्कृष्ट नमूने सोने के बने हुए दो प्याले हैं। इन प्यालों में बनैले वृषभों की मूर्तियाँ तक्षित की गयी हैं। इस नमूने के अतिरिक्त एक कांस्य की बनी हुई उपासक की मूर्ति, मुरलीधर की मूर्ति, सर्प-देवी का चित्र भी प्रसिद्ध है।

(3) भु-न्-ार कला—प्राचीन मिनोअन युग में मिट्टी के बर्तन हाथ से बनाये जाते थे। अतः वे सुन्दर नहीं होते थे। मध्य मिनोअन युग में चाक और मिट्टी का आविष्कार हुआ और फलस्वरूप अनेक सुन्दर घड़े, प्याले और तश्तरियाँ बनायी गयीं ये बर्तन बड़े चिकने और सुडौल हैं। सर्पिल रेखाओं वाले मिट्टी के बर्तन अधिक रंग के वो अष्टपाद हैं।

(4) चित्रकला—चित्रकला में ईजियन कलाकार अत्यन्त प्रवीण थे। उनके चित्रों में जीवन के विविध रूपों को चित्रित किया गया है। चित्र गोले प्लास्टर पर किए गए चूने के लेप पर बनाते थे। अधिकतर प्राकृतिक दृश्यों और वनस्पतियों को चित्रित किया गया है। परन्तु उसमें यथार्थता के दर्शन नहीं होते। "कप बेयरर" चित्र उनकी कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है। इसमें एक लम्बे व्यक्ति को अपने हाथ में एक प्याला लिये हुए दिखलाया गया है। हेगिया, टियाडा में प्राप्त एक चित्र में एक काली बिल्ली को तीतर की ओर बढ़ते हुए दिखलाया गया है। इस चित्र में बड़ी सजीवता है। शिलाओं के मध्य उड़ते हुए पक्षी का चित्र, उड़ती हुई मछली का चित्र उनकी कला का निश्चित रूप हमारे सम्मुख रखते हैं। नृत्य करती एक स्त्री का चित्र भी बहुत सुन्दर है। माईसीनियन नगरों के भित्ति चित्रों में सैनिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गयी है।

ईजियन चित्रकला का सबसे बड़ा दोष यह है कि इन चित्रों के निर्माण में बहुत जल्दबाजी की गयी है। चूने के लेप पर शीघ्रता से चित्रकारी करने के कारण

कहीं-कहीं चित्रों में फूहड़पन की झलक भी देखने को मिलती है जैसे गुलाब को हरा भी चित्रित किया जा सकता था और पौधों को उल्टा भी बनाया जा सकता था।

नृत्य एवं संगीत कला—इन लोगों में नृत्य और संगीत-कला का भी प्रचार हो चुका था। इनके राजप्रासादों में नाटक के लिए कमरा होता था। इनके नाटक संगीत और नृत्य का सम्मिश्रण होते थे। नाचते गाते हुए पुरुषों और स्त्रियों के बहुत से चित्र मिलते हैं। नृत्य करती हुई एक स्त्री का चित्र तो बहुत सुन्दर है। ये लोग वीणा, बाँसुरी और शंख बजाना जानते थे।

ईजियन सभ्यता का मूल्यांकन – ईजियन सभ्यता पाश्चात्य सभ्यताओं की जननी है। विश्व की अनेक सभ्यताओं की ईजियन लोगों की बहुत बड़ी देन है। क्रीट निवासी सर्वप्रथम नाविक थे, सामुद्रिक व्यापार और औपनिवेशीकरण का आरम्भ यहीं से हुआ। यूनानी धर्म पर यहाँ के निवासियों के धर्म का प्रभाव है। क्रीट के नागरिक संगठन, राजनीतिक पद्धति और माप-तौल की प्रणाली से भी यूनानियों ने बहुत ग्रहण किया। साइप्रस के धर्म और भाषा सिसली के पात्रों और तलवारों, इटली के बर्तनों साइबेरिया के परशु और कपौती तथा फीनोशिया की वर्णमाला पर ईजियन सभ्यता का प्रभाव प्रतीत होता है। रेने ने इस सभ्यता के यूनान और अन्य देशों पर प्रभाव को चित्रित करते हुए ठीक ही लिखा है—"ग्रीक सभ्यता जो यूरोपीय और रोम की सभ्यता की जननी है, वह ईजियन सभ्यता की पुत्री थी।"

"Greek Civilization, the mother of Civilization of Rome and the West is the daughter of Aegean Civilization."

—Reinach.

●

9

यूनानी सभ्यता का माईसीनियन और क्लासिकल युग

(Mycenean & Classical Age of Greek Civilization)

प्रश्न—माईसीनियन युग की सभ्यता के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?

अथवा

होमर कालीन सभ्यता की संक्षेप में विवेचना कीजिए।

यूनानी सभ्यता संसार की सभ्यताओं में अपना अलग स्थान रखती है। अध्ययन की सुविधा के लिये यूनान के प्राचीन इतिहास को 3 कालों में बाँटा जा सकता है—(1) होमर युग, (2) क्लासिकल युग (प्रारम्भिक काल), (3) पेरीक्लिज

युग। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान सिकन्दर महान के बाद के युग को भी यूनान सभ्यता के इतिहास के अन्तर्गत रखते हैं, परन्तु वास्तव में उस युग को हेलेनिस्टिक युग के नाम से पुकारना अधिक उत्तम होगा। इस युग की सभ्यता यूनानी सभ्यता से बिल्कुल भिन्न थी।

होमर काल—यह काल 1200 ई० पू० से 800 ई० पू० तक माना जाता है। इस युग को वीरगाथा काल के नाम से भी पुकारा जाता है। इसे महाकाव्यों का युग भी कहा है। यूनान में सर्वप्रथम कवि होमर ने ओडसी और इलियड नाम के दो महाकाव्यों की रचना की जिनमें यूनान के वीरों की गौरव गाथाएँ अंकित की गयी हैं। इन काव्यों का प्रभाव यूनान की जनता पर बहुत अधिक पड़ा और फलस्वरूप इस युग का नाम होमर युग रखा गया।

डोरियनों के आगमन के फलस्वरूप यूनान में अशान्ति, अव्यवस्था एवं अराजकता फैल गई थी क्योंकि इनकी नीतियाँ दमनकारी एवं विध्वंसक थीं। फलस्वरूप 300 वर्षों का इतिहास अन्धकारमय हो गया इसलिये इतिहासकार इस अन्धकार मय युग को "संक्रमण काल" या अन्धकार युग" के नाम से पुकारते हैं।

राजनीतिक व्यवस्था—इलियड और ओडसी नामक महाकाव्यों में राजनीतिक व्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इन्हीं के आधार पर इस युग की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक व्यवस्थाओं का विवेचन करेंगे।

(1) राजा—सम्राट शासन का सर्वोच्च पदाधिकारी होता था। न्याय का वह मूल श्रोत था और उसे ही राज्य का वास्तविक पुरोहित माना जाता था। देखने में ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे वह बिल्कुल निरंकुश हो परन्तु राजा किसी व्यक्ति पर अत्याचार करने का अधिकारी नहीं था। सैद्धान्तिक रूप से तो उसे सर्वोच्च न्यायाधीश माना गया था। परन्तु वास्तविकता यह थी कि अधिकतर वह मध्यस्थ का ही कार्य करता था। इसका कारण यह था कि यूनान में कोई सुसंगठित विद्वान नहीं था और परम्पराओं के आधार पर ही निर्णय किये जाते थे। सत्य तो यह है कि जनता स्वयं अपना निर्णय कर लेती थी और राजा को बहुत कम कार्य करना पड़ता था।

होमर युग रक्तपात से परिपूर्ण था। अतः उस युग में सैनिक शक्ति के सुदृढ़ होने की अधिक आवश्यकता थी। सम्राट ही देश का सर्वोच्च सेनापति था। राजा की सहायता के लिये सेना थी जिसके शिक्षण, निवास आदि का प्रबन्ध राजा की ओर से होता था। युद्ध के अवसर पर सम्राट स्वयं ही सेना का नेतृत्व करता था। सैनिकों के लिये अस्त्र शस्त्र जैसे भाले, बरछियाँ, तलवार, कवच, शिरस्त्राण आदि बनाने का भी राजा का ही अधिकार था।

होमर काल में सम्राट को सर्वोच्च पुरोहित भी माना जाता था। राजनीतिक और धार्मिक दोनों ही दृष्टियों से सम्राट का महत्वपूर्ण स्थान था।

(2) अन्य सभायें—वीरगाथा काल में समाज की इकाई परिवार थी। परिवारों से फ्रैट बनता था। हर फ्रैट का एक सामन्त होता था और सामन्त ही अपने बीच में सबसे अधिक शक्तिशाली सामन्त को सम्राट बना देते थे। शासन के कार्य

सम्राट को परामर्श देने के लिये इनकी सभायें होती थीं—(1) ब्यूल तथा (2) एगोरा।

एगोरा स्वतन्त्र नागरिकों की सभा थी और ब्यूल में केवल सामन्तों का ही स्थान रहता था। ये सभायें राजा के समस्त कार्यों पर विचार करने का अधिकार रखती थीं परन्तु इनके अधिकारों और कर्तव्यों का निश्चय नहीं किया गया था। फलस्वरूप ये दोनों सभायें भली-भाँति कार्य नहीं कर पाती थीं। सत्य तो यह है कि इस युग में राजनीतिक चेतना का अभाव था और इसी कारण साम्राज्य की अधिक उन्नति नहीं हो सकी। इसी सम्बन्ध में बर्न्स का मत है—"होमर काल में ग्रीक लोगों की संस्थायें अत्यन्त आरम्भिक थीं। सभी छोटी-छोटी जातियाँ बाह्य नियन्त्रण न स्वतन्त्र थीं। राजनीतिक शक्ति इतनी क्षीण थी कि उसे राज्य की संज्ञा देना ही कठिन है।"

"The political illustrations of Homeric Greek were exceedingly primitive. Each little community of villages was independent of external control but political authority was so thewous that it would not be much to say that the state scarcely existed at all."

—Burns.

सामाजिक व्यवस्था

परिवार—परिवार ही समाज की इकाई थी। अनेक परिवार एक ही समूह में रहते थे। प्रत्येक सदस्य को पिता की आज्ञा माननी पड़ती थी। वह परिवार के किसी सदस्य को दण्ड दे सकता था। अपने बच्चों को वह देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिये भेंट कर सकता था। यद्यपि यह ठीक है कि परिवारों में पिता का महत्वपूर्ण स्थान था परन्तु ऐसा बहुत कम होता था कि किसी पिता ने परिवार के अन्य सदस्यों पर अत्याचार किया हो।

स्त्रियों की दशा—होमर-कालीन समाज में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। उनका मुख्य कार्य बच्चों का पालन-पोषण ही था परन्तु वे समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपना दखल रखती थीं। गृह-लक्ष्मी के रूप में तो उनका आदर था ही साथ ही वे सार्वजनिक कार्यों में भी भाग लेती थीं। नारी ही इस युग के पुरुषों की प्रेरणास्रोत थी। इस युग के बड़े-बड़े संघर्ष स्त्रियों के कारण ही हुये थे।

विवाह प्रथा—होमर कालीन समाज में विवाह स्वयं स्त्री-पुरुष द्वारा तय न किया जाकर युवती के पिता और होने वाले दामाद द्वारा तय किया जाता था। वास्तव में स्त्रियाँ खरीदी जाती थीं। कोई पुरुष किसी स्त्री के पिता को तय किया हुआ धन देकर उसकी कन्या को प्राप्त कर सकता था।

आभूषण—होमर-कालीन समाज में आभूषण धारण करने की प्रथा प्रचलित थी। स्त्री एवं पुरुष दोनों ही आभूषणों के शौकीन थे। होमर-कालीन चित्रों में स्त्रियों एवं पुरुषों को आभूषण धारण किये हुये चित्रित किया गया है।

रहन-सहन—होमर-कालीन समाज में लोगों का रहन-सहन बड़ा साधारण था। पुरुष अपने शरीर के ऊपरी भाग पर एक बिना सिला हुआ वस्त्र डाल लेते थे।

उसी वस्त्र के द्वारा नीचे के हिस्से को भी ढकते थे। जांघिया और लंगोट का भी प्रयोग करते थे। पुरुष वड़े-बड़े बाल और दाढ़ी मूंछ रखते थे तथा स्त्रियों के समान ही आभूषणों का प्रयोग करते थे।

आमोद-प्रमोद—आमोद-प्रमोद का मुख्य साधन आखेट था। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की दौड़ों का प्रचलन भी इस युग में हो चुका था।

खान-पान—यहाँ के निवासियों का मुख्य अन्न, तरकारी और मछली आदि था। परन्तु निर्धनों और धनिकों के भोजन में काफी अन्तर था। निर्धन व्यक्ति तवे व गर्म पत्थर पर तैयार किये हुये केक, मछली व सब्जियाँ आदि खाते थे जबकि धनिक वर्ग शहद, वसा तथा सामिष भोजन करते थे। साथ में मदिरा-पान भी करते थे। होमर युग में खाने को स्वादिष्ट बनाकर खाया जाने लगा था।

वर्ग-व्यवस्था का रूप—होमर कालीन समाज में वर्ग-व्यवस्था थी। साधारणतः समाज अभिजात, मध्य और निम्न श्रेणी में विभाजित किया गया था। परन्तु इस वर्ग व्यवस्था की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि परिश्रम का महत्व सभी वर्गों के लिये अधिक था। अभिजात वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों की नियुक्ति तो करते थे परन्तु अपना कार्य करने के लिये स्वयं तैयार रहते थे।

आर्थिक दशा

होमर युगीन समाज का आर्थिक जीवन कृषि पर निर्भर ही था। कृषि के साथ-साथ विनिमय का भी प्रचलन था। सामान्य जीवन की आवश्यकता पूर्ति हेतु कुछ लघु कुटीर उद्योगों का भी सृजन किया गया था। समाज में जो लोग तलवार तु मिट्टी के बर्तन व आभूषण बनाने का कार्य करते थे उनको आदर की दृष्टि से देखा जाता था। इस सम्बन्ध में प्रो० बर्न्स ने भी लिखा है कि, "उस समय गृहस्वामी अपनी आवश्यकतानुसार वस्त्रों तथा कृषि यन्त्रों का भी निर्माण स्वयं कर लेते थे और आवश्यकता पड़ने पर आपस में एक-दूसरे की वस्तुओं का आदान-प्रदान कर लेते थे।

ये लोग अधिकतर घोड़े, बकरी, गाय-बैल तथा भेड़े पालते थे। लोग इस पर विश्वास करते थे। परिश्रम करना उनका मुख्य ध्येय था। यहाँ तक कि उच्च वर्ग के लोग भी परिश्रम करने को तैयार रहते थे। वे अपनी स्त्रियों से भी आवश्यकतानुसार कार्य लिया करते थे।

व्यापार—होमर युगीन यूनानी—"व्यापारी" शब्द से अनभिज्ञ थे। सामान्य व्यवसाय विनिमय (Barter System) द्वारा ही होता था। व्यापार करने की प्रथा नहीं थी। उस समय जो भी व्यापार था उस पर फी-फी निशियन लोगों का एकाधिपत्य था। यूनान प्राकृतिक बन्दरगाहों से युक्त होने के कारण विदेशी व्यापार से पर्याप्त रूपेण उन्नत था। मुद्रा सोने, काँसे तथा लोह पिण्डों में होती थी। उस समय "टैलेण्ट" का मूल्य अधिक होता था। एक टैलेण्ट का भार 57 पाउन्ड के लगभग होता था। जल-दस्युओं की अधिकता थी। शासन द्वारा भी जल-दस्युओं का संगठन किया जाता था।

यातायात—यातायात के लिये समुद्री मार्गों का प्रयोग किया जाता था।

दैनिक जीवन में चार पहिये वाली गाड़ियों, खच्चरों तथा घोड़ों का प्रयोग किया जाता था।

कानून—होमर युग में कोई लिखित विधि-संहिता नहीं थी। ये विधि या नियम जातिगत परम्परावादी थे।

आर्थिक जीवन—होमर कालीन समाज में कृषि का महत्व बहुत अधिक था। चूंकि यहाँ की सभ्यता आक्रमण प्रधान सभ्यता थी अतः कृषि कर्म की ओर विशेष ध्यान दिया गया था। इस युग में यूनान में विभिन्न प्रकार के कुटीर उद्योग प्रचलित हो गये थे, परन्तु व्यापार पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया था। दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाले वस्त्र अधिक मात्रा में बनाये जाते थे। तलवार बनाने वाले, सुनारों, कुम्भकारों, घड़ो बनाने वालों को अच्छी दृष्टि से देखा जाता था। इस युग के लोग दूसरों पर निर्भर रहने के पक्षपाती नहीं थे। वे गाय, बैल, भेंड़, बकरी, सुअर, घोड़े आदि पशुओं को पालते थे और दैनिक जीवन के वस्त्रों को निर्माण करने का स्वयं प्रयत्न करतें थे। इस सम्बन्ध में बर्न्स लिखता है, "अधिकतर प्रत्येक घर अपने औजार स्वयं बनाता था, अपने बनाये कपड़े पहनता था और अपना खाद्यान्न स्वयं उत्पन्न करता था।"

"For the most part every household made its own tools, wore its own clothing and raised its own food."

"मर्चेन्ट्स" नामक शब्द का प्रयोग होमर-कालीन युग में नहीं हुआ था। चीजों के आदान-प्रदान द्वारा ही लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी परन्तु आगे चलकर कुशल व्यापारी होने लगे थे।

दर्शन एवं धर्म—होमर के महाकाव्यों का अध्ययन करने से तत्कालीन धर्म के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इस युग के मनुष्य सांसारिक और आशावादी थे। वे अपना जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत करना चाहते थे; अतः धर्म का स्वरूप भी स्वरूप वास्तविक था। नैतिकता की ओर अधिक ध्यान न देकर यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया गया था। आत्मा और परमात्मा, यम, नियम, प्राणायाम और लोक, परलोक के विषय में ये लोग चिन्तित नहीं थे। पाप, पुण्य पर भी ये लोग विचार नहीं करते थे। इस युग में प्राकृतिक तत्वों का पूजन किया गया था और अनेक देवी-देवताओं को मान्यतायें प्रदान की गई थीं। देवताओं का निवास ओलम्पिक पर्वत पर माना जाता था और विश्वास किया जाता था कि देवता है। इस युग के देवताओं में जियस (आकास देव), अपोलो (सूर्य देव) और एथियाना (युद्ध देवी) का स्थान मुख्य था।

यूनान के निवासियों का यह विश्वास था कि यदि देवताओं की आराधना की जायेगी तो देवता प्रसन्न होकर मनुष्य को सुख और शान्ति प्रदान करेंगे। देवताओं की पूजा सर्वत्र की जाती थी। पुजारी वर्ग का धर्म में कोई स्थान न था।

यह ठीक है कि होमर युग में यूनानी बड़े यथार्थवादी थे, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उसमें नैतिक भावना बिल्कुल नहीं थी। वे माता-पिता, गुरुजनों आदि के प्रति बड़े विनम्र थे। परोपकार को भी महत्व प्रदान करते थे। परन्तु शत्रुओं के प्रति किसी भी प्रकार की दया दिखलाने के पक्षपाती नहीं थे।

साहित्य और कला—होमर काल यूनानी इतिहास में संघर्ष काल के नाम से प्रसिद्ध है। संघर्ष मध्य साहित्य और कला की उन्नति की कल्पना नहीं की जा सकती। यही कारण था कि इस युग में साहित्य और कला की कम उन्नति हुई। इस युग में चारणों द्वारा गीत गाये जाते थे जाते, यही इनका काव्य था और यही इतिहास।

कला के क्षेत्र में भी महाकाव्यों द्वारा कुछ प्रकाश नहीं डाला गया। वास्तु-कला के विषय में अवश्य कुछ संकेत दिया गया है। इस कला के क्षेत्र में यूनानियों ने थोड़ी उन्नति की थी। वे मकानों का निर्माण पक्की ईंटों द्वारा करते थे। फर्श और छत बनाने में बाँस, मिट्टी आदि का प्रयोग किया जाता था। कला की दृष्टि से इनके घर सुन्दर नहीं होते थे। उपयोगिता की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया था, साधारण घरों में किसी भी स्नानागर अथवा पाकशाला का उल्लेख नहीं मिलता। इस युग में कुछ राजभवन भी बनवाये जो अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर थे।

सत्य तो यह है कि होमर काल में यूनान की ओर विशेष सांस्कृतिक उन्नति नहीं हुई। कला आदि के क्षेत्र में इन लोगों ने कोई विशेष उन्नति नहीं की थी। इस युग की सभ्यता यूनान की आरम्भिक सभ्यता के नाम से पुकारी जाती है। अतः इस बात की आशा नहीं की जा सकती थी कि इस युग में यूनान ने वैसी ही उन्नति की होगी जैसा कि उसके आगे आने वाले कालों में हुई।

प्रश्न—क्लासिकल युग के यूनान का परिचय देते हुए उस युग की शासन-व्यवस्था पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

क्लीस्थेनिज के सुधारों पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिये।

अथवा

स्पार्टा की शासन-व्यवस्था और उसके पतन के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?

यूनान के इतिहास में 800 ई० पू० से लेकर 469 ई० पू० तक का युग विशेष महत्व रखता है। इस युग में यूनान में नागरिक-राज्यों का उदय हुआ। होमर-काल की सभ्यता ग्राम सभ्यता है। इस युग में नगरों का बहुत अधिक विकास हुआ। नगरों के उदय का मुख्य कारण यह था कि 800 ई० पू० तक राज्यों के सामन्तों की शक्ति इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि ऐसा प्रतीत होता था कि वे सम्राट को पद से हटा देंगे। 800 ई० पू० और 700 ई० पू० के मध्य यूनान में यह सामन्तवादी अथवा कुलीनतन्त्रीय व्यवस्था चलती रही। 800 ई० पू० के पहले यूनान में राजतन्त्रीय व्यवस्था थी।, परन्तु 800 ई० पू० के लगभग कुलीनतन्त्रीय (Oligarchical) व्यवस्था स्थापित हुई। इसका विनाश करके टिरिस ने एक नई व्यवस्था स्थापित की। 600 ई० पू० और 500 ई० पू० के मध्य यूनान में जन-तन्त्रतात्मक शासन पनपा। अनेक छोटे-छोटे नगर-राज्य स्थापित हुये और इसमें जनतन्त्रात्मक प्रणाली को अपनाया गया। इन नगर-राज्यों में एथेन्स, थेबीज, मेगारा, कोरिन्थ, मिलीटस और स्पार्टा प्रमुख थे।

नगर राज्य का लघुत्व—जितने भी नगर-राज्य थे वे सब बहुत छोटे थे। ये

व्यवस्था विभिन्न कारणों से यूनान के अनुकूल थी। यूनान की भौगोलिक स्थिति ने छोटे-छोटे नगर-राज्यों के बनने में सहयोग दिया। साथ ही यूनान में यातायात और आवागमन के साधन इतने अच्छे नहीं थे कि पर्वतीय प्रदेशों में सुचारु रूप से शासन-व्यवस्था की जा सके। इस कारण भी नगर-राज्य अधिक उपयोगी सिद्ध हुये। यूनानियों की आवश्यकताएँ बहुत कमी थी। वे साधारण और सरल जीवन व्यतीत करते थे, अतः छोटे-छोटे नगर-राज्यों में ही उनकी वास्तविक आनन्द की प्राप्ति हो सकती थी। सदैव से ही यूनानी जनतान्त्रिक थे, अतः उन्होंने नगर-राज्यों को अपने लिये बहुत उपयोग समझा।

इन समस्त राज्यों में जनता द्वारा शासन होता था और सभी मनुष्यों को शासन में देखने देने का अधिकार था।

विभिन्न नगर-राज्यों में स्पार्टा और एथेन्स का विशेष महत्व है। अतः हम विस्तार से इन राज्यों की चर्चा करेंगे।

स्पार्टा—स्पार्टा पेलीपोनेसस अर्थात् दक्षिणी यूनान के लेकोनिया प्रदेश का प्रधान नगर था। यह उत्तर पूर्व और पश्चिम में पर्वतीय श्रेणियों से घिरा हुआ था। इस राज्य में कोई बन्दरगाह न था, इस कारण शेष यूनान से कटा हुआ था। यही कारण है कि जिस समय यूनान में जनतन्त्रवादी विचारधारा का उदय हो रहा था, स्पार्टा में सैनिकवाद और निरंकुशवाद को अपनाया गया था। जनतान्त्रिक युग में स्पार्टा एक ऐसा अपवाद था जहाँ सैनिकवादी व्यवस्था को अपनाया गया था। इसका मुख्य कारण यह था कि यहाँ के निवासी 'डोरियन' जाति के थे जिन्होंने यूनान में बाहर से प्रवेश किया था। अर्थात् वहाँ के मूल निवासियों को परास्त करके अपने शासन की स्थापना की थी। इस जाति को सदैव इस बात का डर बना रहता था कि कहीं यूनान के मूल निवासी विरुद्ध विद्रोह न कर दे। अतएव उन्होंने निरंकुश और कठोर सैनिकवादी शासन को अपनाया था।

लाइकर्गस स्पार्टा—600 ई० पू० के लगभग स्पार्टा में एक यही व्यवस्था को लागू किया गया था जिसे लाइकर्गस के नाम से पुकारा जाता है। 626 ई० पू० में लाइकर्गस नाम का एक व्यक्ति पैदा हुआ। इस समय स्पार्टा की दशा बहुत चिन्तनीय थी। देश में अशान्ति थी और सदैव वाह्य आक्रमण का भय रहता था। इन्हीं संकटकालीन परिस्थितियों में स्पार्टा के पदाधिकारियों ने लाइकर्गस को निमन्त्रित करके एक नये संविधान का निर्माण करने का आदेश दिया। इसके बनाये हुए सिद्धांत ही स्पार्टा में प्रचलित हुए। इस संविधान के अनुसार स्पार्टा की राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन किये गये। संविधान के चार मुख्य अंग थे—(1) सम्राट, (2) सेनेट, (3) असेम्बली तथा (4) डायरेक्टरी।

(1) सम्राट—स्पार्टा में द्विराजात्मक व्यवस्था को अपनाया गया था। दो राजाओं की नियुक्ति निरंकुशता को रोकने के लिए की गयी। ये दोनों सम्राट ही राज्य के सर्वोच्च सेनापति, पुरोहित और न्यायाधीश होते थे। ये दोनों सीनेट की राय से ही कार्य करते थे। दोनों के पद वंशानुगत होते थे।

(2) सीनेट—सीनेट को जेरूसिया (Gerusia) नाम से पुकारा जाता था। इसमें 28 सदस्य होते थे। जो असेम्बली द्वारा चुने जाते थे। इनके सदस्यों की

आयु 60 वर्ष से अधिक होना अनिवार्य थी साथ ही इनका उच्च-वर्ग का होना अनिवार्य था। दोनों सम्राट भी इसके सदस्य होते थे। सीनेट ही स्पार्टा की व्यवस्थापिका सभा व सर्वोच्च न्यायालय थी।

(3) असेम्बली—असेम्बली को अपेला के नाम से पुकारा जाता था। इसके लगभग 8,000 सदस्य होते थे। राज्य के प्रत्येक स्वतन्त्र नागरिक जिसकी आयु 30 वर्ष की होती, को इनका सदस्य माना जाता था। इसी के द्वारा जेरूसिया और डायरेक्टरी के सदस्यों को चुना जाता था। जेरूसिया पारित बिलों का कानून रूप देना भी इसी सभा का कार्य था। आरम्भ में इस सभा का अध्यक्ष सम्राट हुआ करता था परन्तु बाद में डायरेक्टरी के सदस्य ही इसके अध्यक्ष होते थे। इस सभा को केवल मत देने का अधिकार था।

(4) डायरेक्टरी—इसके सदस्यों को 'एफर' (Ephors) के नाम से पुकारा जाता था। जिनकी संख्या 5 थी। ये असेम्बली द्वारा निर्वाचित किये जाते थे। 556 के बाद एफरो की शक्ति का बहुत अधिक विस्तार हो गया। यही नागरिकों की शिक्षा की व्यवस्था करती और विदेशी नीति का संचालन करती थी। जेरूसिया और अपेला की मध्यस्थता भी यही करती थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्पार्टा का शासन न तो मूल में राजतन्त्र था और न अभिजाततन्त्र था, न कुलीनतन्त्र था और न प्रजातन्त्र था। इसके सम्बन्ध में एक विद्वान ने लिखा है—'स्पार्टा की सरकार आकार में राजसत्तात्मक थी, सिद्धान्त में गणराज्य थी और वस्तु वर्ग तन्त्रात्मक थी।'

संविधान और अन्य विशेषतायें -स्पार्टा के संविधान में नागरिकों को स्वस्थ अनुशासित और सैनिक शिक्षा में दक्ष करने वाली बातों का समावेश किया गया था। नागरिक तन्दुरुस्त बन सकें इसके लिए कुछ निश्चित नियम बनाये गये थे, जो निम्न हैं—

(1) नये पैदा हुए कमजोर बच्चों के वध करने का अधिकार उसके पिता को था। तन्दुरुस्त बच्चों को भी 3 दिन तक पहाड़ की खोह या जंगलों में छोड़ दिया जाता था। यदि वहाँ बच जाते थे तो उन्हें उनकी माँ के पास लाया जाता था।

(2) 7 से 20 वर्ष तक की आयु के बालकों को राजकीय शिविरों में सैनिक शिक्षा देना अनिवार्य था। वहाँ इनकी शिक्षा इस प्रकार होती थी कि उनका स्वास्थ्य बढ़ सके।

(3) 20 वर्ष की आयु में विवाह करते थे। परन्तु 'स्त्री-पुरुष गृहस्थ-जीवन नहीं व्यतीत कर सकते थे। वे बैठकों में रहते थे और पति-पत्नी चोरी से एक दूसरे से मिलते थे।

(4) 30 वर्ष की आयु में युवक वयस्क समझा जाता था। इस समय वह असेम्बली में भाग लेने का अधिकारी होता था। 30 वर्ष और 60 वर्ष की आयु के मध्य भी लोगों को सैनिक-शिक्षा मिलती थी।

(5) विवाह सबके लिए आवश्यक था और अविवाहित लोगों को मत देने का अधिकार नहीं रहता था। विवाह का मूल उद्देश्य हृष्ट-पुष्ट सन्तान उत्पन्न करना

था। स्वस्थ बच्चे के लिए कोई भी पुरुष परस्त्री से सम्पर्क स्थापित कर सकता था और कोई भी स्त्री पर पुरुष से मिल सकती थी।

(6) स्त्रियाँ अधिकतर घरों में रहती थी परन्तु वे भी शारीरिक व्यायाम एवं मल्लयुद्ध में भाग लेती थीं। सार्वजनिक समारोहों से वे नग्न अवस्था में नाचती थीं। उन्हें भी स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखना पड़ता था।

इस संविधान के अनुसार पूँजीवादी मनोवृत्ति को दबाया गया था और लोगों को देश-भक्ति का पाठ पढ़ाने का प्रयास किया गया था। इस युग में लोहे की मुद्राएँ प्रचलित थीं और सोने-चांदी के आयात पर प्रतिबन्ध लगाया गया था। विदेश यात्रा करने पर भी मनाही थी। स्वतन्त्र नागरिकों के लिए व्यापार व्यवसाय करना भी वर्जित था।

स्पार्टा में यह व्यवस्था हेलोटी को वश में करने के लिए लागू की गयी थी। यह स्वतन्त्र नागरिकों के अधीन रहते थे और उन्हें सैनिकों की सेवा भी करनी पड़ती थी। इनकी देख-रेख के लिए गुप्तचर व्यवस्था भी अपनाई गयी थी।

संविधान की आलोचना—जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि यहाँ की शासन-व्यवस्था पूर्ण रूप से राजतान्त्रिक थी और न गणतान्त्रिक अथवा कुलीन तान्त्रिक। इस व्यवस्था में समाज को बहुत अधिक महत्व दिया गया था और समाज के लिए व्यक्ति का बलिदान किया जा सकता था। इस व्यवस्था का दुष्परिणाम यह था कि स्पार्टा में साहित्यकारों, वैज्ञानिकों और कलाकारों का अभाव हो गया। इस व्यवस्था की आलोचना करते हुए लेखक ने लिखा है, "सोलन ने एथेन्स वालों को मनुष्य बनाया था तो लाइकगर्स ने स्पार्टा वालों को यन्त्र बना डाला।"

स्पार्टा में मनुष्य का जीवन इतना यन्त्रवत हो गया कि जीवन से आनन्द दूर हो गया। वहाँ के निवासी सभी प्रकार के सुखों से वंचित कर दिये गये थे।

स्पार्टा का पतन—स्पार्टा का शासन सैनिक शक्ति के जोर पर चलता था। कालान्तर में स्पार्टा का एथेन्स से युद्ध हुआ जिनमें एथेन्स की पराजय हुई। उसके कुछ समय बाद 371 ई० पू० में ल्यूक्ट्रा के युद्ध में स्पार्टा को थेंबीज के हाथों पराजय का मुख देखना पड़ा। इसके पश्चात् कुछ समय के लिए स्पार्टा पुनः स्वतन्त्र हुआ परन्तु अन्त में सिकन्दर महान् के हाथों इसका पतन हुआ।

स्पार्टा के पतन के बहुत से कारण थे। वहाँ का कठोर शासन इसके पतन का मूल कारण था। जनता का राज्य के प्रति विश्वास नहीं था। इस कारण स्पार्टा पतन का जनता ने स्वागत किया। फारस और स्पार्टा का युद्ध तथा थेंबीज और स्पार्टा का युद्ध भी स्पार्टा के पतन के कारण थे। इसके साथ ही मेसीडोनिया के अभ्युदय ने स्पार्टा की प्रगति को धक्का लगाया था। इन्हीं सब कारणों से स्पार्टा का पतन हुआ। इसके पतन की चर्चा करते हुए एक विद्वान ने लिखा है—"स्पार्टा का पतन अवश्यम्भावी था। इसकी नीवें पहले ही हिल चुकी थीं और अनेक धक्कों ने इसे जर्जरित बना दिया था। आश्चर्य तो यह है कि स्पार्टा का पतन हुआ और उसके लिए कोई रोया भी नहीं।"

एथेन्स—प्राचीन-काल में एथेन्स यूनान का सबसे प्रमुख नगर था। यहाँ यूनानियों की आयोधिनन शाखा निवास करती थी। आरम्भ के एथेन्स में राजतन्त्रा-

तन्त्रक व्यवस्था थी। इस राजतन्त्रीय व्यवस्था का अन्तिम शासक केड्रस था। उसकी मृत्यु के पश्चात शासन की समस्त सत्ता सामन्तों के हाथ में आ गयी। इन सामन्तों की दो सभाएँ थीं जिनमें से एक सभा में 9 आर्कन अथवा संरक्षक होते थे जो राज्य कार्य के लिए उत्तरदायी होते थे। दूसरी सभा कौंसिल आफ एरियोपेगस थी, जिसके सदस्य भूतपूर्व आर्कन होते थे। वास्तव में इस सभा के सदस्य आर्कनों को निरंकुश होने से रोकते थे। इस सभा को अनुशासनहीन नागरिकों को दण्ड देने और अति गम्भीर मुकदमों पर विचार करने का अधिकार था।

इस समय तक एथेन्स के कानूनों को कोई लिखित रूप नहीं प्राप्त हुआ था। कोई न्याय-व्यवस्था न होने के फलस्वरूप सामन्त वर्ग कृषकों पर अत्याचार करता था और उनकी दशा दासों से भी गिरी हुई थी। 632 ई० पू० में साइलोन नामक सामन्त ने एथेन्स में अपना शासन स्थापित करने का प्रयास किया। उसे सफलता नहीं मिली परन्तु इस प्रयत्न से प्रेरणा पाकर 621 ई० पू० में डेक्रो नामक व्यक्ति ने कानूनों को लिखित रूप देने का प्रयास किया। उसके सामाजिक दशा में भी कोई सुधार नहीं हुआ। फलस्वरूप 590 ई० पू० सोलन नामक व्यक्ति को आर्कन चुना गया और उससे सुधारों की आशा की गयी।

सोलन के सुधार—सोलन बहुत अधिक बुद्धिमान राजनीतिक था। उसने एथेन्स की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन करने का प्रयास किया। समाज को चार भागों में विभाजित किया था—

(1) 500 बुशल से अधिक आय वाले।
(2) 300 से 500 बुशल की आय वाले।
(3) 200 से 300 बुशल की आय वाले।
(4) स्वतन्त्र श्रमिक।

प्रथम सेनापति और आर्कन, द्वितीय से अन्य उच्च अधिकारी और तृतीय से पदातियों और चतुर्थ से सामान्य सैनिकों की नियुक्ति होने लगी। सोलन ने शासन के क्षेत्र में पर्याप्त सुधार किये। उसने "कौंसिल ऑफ एरियोपेगस" में कोई परिवर्तन नहीं किया। ब्यूल की सदस्यता तीसरे वर्ग के लोगों के लिए खोल दी। इसके सदस्यों की संख्या 400 थी। असेम्बली (एक्लेसिया) के सदस्य श्रमिक वर्ग के लोग भी हो सकते थे। चारों वर्गों के लोग देश के सर्वोच्च न्यायाधीश हो सकते थे। उच्च न्यायालयों में आर्कनों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनी जाती थीं।

सोलन ने निर्धन वर्ग की दशा को सुधारने के लिए विशेष प्रयास किया। उसने बहुत से लोगों के ऋणों का माफ कर दिया और ऋण न चुका सकने के कारण दास बनाये गये लोगों को मुक्ति प्रदान कर दी। उसने देश की आर्थिक नीति को भी सुधारने का प्रयास किया। भूमि नापने की प्रणाली प्रचलित हुई। मुद्रा नीति में सुधार किये गये। विदेशी व्यापारियों और दस्तकारों को नागरिकता दे दी गयी और खाने पीने की चीजों के निर्यात पर बड़ी पाबन्दी लगा दी गयी। प्रत्येक पिता को अपने पुत्र को किसी न किसी प्रकार की व्यापारिक शिक्षा देना अनिवार्य था। उसने पंचांग में भी सुधार किये और लोरियम में चांदी की खानों की खुदाई आरम्भ करवाने का प्रयास किया।

सोलन मनुष्य के केवल शारीरिक उन्नति को महत्व नहीं देता था बल्कि बौद्धिक उन्नति को भी आवश्यक मानता था। जहाँ उसने एक ओर वेश्यावृत्ति को वैध घोषित किया वहाँ बलात्कार को जघन्य अपराध ठहराया गया। उसने यह भी व्यवस्था की कि युद्ध में मारे गये व्यक्तियों के बच्चों के पालन के लिए राज्य ही उत्तरदायी होगा।

सोलन का मूल्यांकन—सोलन की गणना यूनान के महानतम राजनीतिज्ञों में होती है। वह विभिन्न वर्गों के बीच सामंजस्य स्थापित करना चाहता था। उसने एक बार पूछी कि राज्य की स्थिरता कैसी है तो उसने उत्तर दिया था—"जब जनता शासक का और शासक अधिनियमों की आज्ञा का पालन करते हैं।" सोलन मध्य मार्ग पर चलने वाला था। एक ओर उसने उग्रदलीय नेताओं के इस मांग को ठुकरा दिया कि भूमि का समविभाजन हो और दूसरी ओर उसने इस बात को भी ठुकरा दिया कि सामान्य लोगों को मताधिकार न दिये जायें। परन्तु यह प्रगतिवादी मे एथेन्स जनतन्त्र का निर्माता था।

क्लीस्थेनिज के सुधार—सोलन के पश्चात कुछ दिनों तक टायरेन्टस एथेन्स का निरंकुश शासक बना। परन्तु कुछ ही दिनों बाद उसका पतन हो गया और क्लीस्थेनिज के नेतृत्व में जनतन्त्रवाद का विकास हुआ।

क्लीस्थेनिज ने बहुत से सुधार किये। उसने सामन्त वर्ग की शक्ति को कम कर दिया और समाज को 10 वर्गों में विभाजित कर दिया। शासन की व्यवस्था को जनतान्त्रिक बनाने के लिये ब्यूल को समाप्त करके 500 सदस्यों की सभा की स्थापना की। इसमें प्रत्येक जाति के 50-50 सदस्य होते थे। इस कौंसिल को सर्वोच्च अधिकार प्रदान किये गये थे, परन्तु उसके द्वारा पारित बिल असेम्बली के हाथ में आते थे जो उन्हें अस्वीकृत या संशोधित कर सकती थी। अर्थ-व्यवस्था और युद्ध की घोषणा का कार्य भी असेम्बली ही पूर्ण करती थी। एरियोपेगस के अधिकार कम कर दिये गये।

क्लीस्थेनिज के आन्ट्रेजियम का नियम चलाया जिसके अनुसार बहुमत से किसी व्यक्ति को देशद्रोही घोषित कर सकता था। उसने सेना का पुनर्गठन किया और दस सेनापतियों की एक समिति बनायी।

क्लीस्थेनिज के पश्चात् जनतन्त्र प्रणाली और अधिक पनपती रही और पेरिक्लीज के काल में तो यूनान की बहुत उन्नति हुई। उसका समय 861 ई० पू० से से 429 ई० पू० तक का माना जाता है। उसके युग को यूनान के सांस्कृतिक इतिहास का स्वर्ण युग कहा जाता है।

प्रश्न—पेरिक्लीज युग में यूनानी की विदेश-नीति, शासन-नीति एवं न्याय-व्यवस्था पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

पेरिक्लीज कौन था ? उसके युग में यूनान की विदेश नीति, न्याय-व्यवस्था एवं शासन नीति की क्या स्थिति थी ? संक्षेप में प्रकाश डालिये।

पेरिक्लीज युग प्राचीन यूनानी संस्कृति के इतिहास का गौरवशाली युग है। इस युग का प्रारम्भ 493 ई० पू० तथा अन्त 429 ई० पू० में हुआ था। पेरिक्लीज

एक प्रसिद्ध नौसेना नायक का पुत्र था। इसकी माँ क्ली वंश के एक प्रतिष्ठित घराने से सम्बन्धित था। पेरिक्लीज की शिक्षा-दीक्षा जनेकक्षा गौरस नामक प्रसिद्ध दार्शनिक की देख-रेख में हुई थी। यह साधारण प्रकृति का एक क्रांतिकारी युवक था। पेरिक्लीज संसार के उन महान् पुरुषों में है जो बहुत काल तक युगान्तकारी गिना जाता रहा। उसने यूनानी विचारधारा को परिवर्तित, सम्बन्धित और प्रवाहित किया तथा इतिहास पर अमिट छाप डाली। इसी कारण उसके काल को यूनानी साम्राज्य का स्वर्ण युग कहा जाता है।

पेरिक्लीज ने शौर्य और समाज-सुधार अपनी माता और पिता के गुणों से प्राप्त किया था। अतः ये गुण उसकी पैतृक सम्पत्ति थे। प्रारम्भिक अवस्था में उसे प्रसिद्ध विद्वानों और कलाकारों के सम्पर्क का अवसर मिला। जिसके कारण पेरिक्लीज में संस्कृति के आवश्यक गुण अनायास उत्पन्न हो गये थे। वह अत्यन्त उदारवादी शासक, सुधारक, कला-प्रेमी और जनतन्त्रवादी था। एथेन्स का जीर्णोद्धार इसी के काल में हुआ।

पेरिक्लीज सिद्धान्तवादी और आचार का अनुरागी न था। वह राजनीति को एकमात्र रंगमंच समझता था जिस पर सारे समाज का कल्याण आधारित होता है और राजनीतिज्ञ को समय-समय पर सत्य, असत्य, दया और कठोरता आदि का आश्रय लेना पड़ता है। उसका व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त शुद्ध था। जब यूनान में स्वाभिमान और देश-प्रेम का क्रय-विक्रय हो रहा था, पेरिक्लीज एथेन्स से निवासियों को शिष्ट जीवन मार्ग प्रदर्शित कर रहा था। वह गम्भीर प्रकृति का अल्पभावी व्यक्ति था। परन्तु आवश्यकतानुसार वह आग-बबूला भी हो उठता था। यद्यपि उसका जन्म उच्च श्रेणी में हुआ था परन्तु राजनीतिक क्षेत्र में उसने जनता के आन्दोलन में साथ दिया और एथेन्स में जनतन्त्रवाद का विकास किया।

पैरिक्लीज की विदेशी नीति—पैरिक्लीज राज्य का विस्तार चाहता था और उसकी यह भी इच्छा थी कि एथेन्स संसार की रानी बन जाय। उसे यह ज्ञात था कि विस्तार की इस योजना में स्पार्टा उसका प्रतिद्वन्द्वी होगा। इसलिए स्पार्टा को अलग कर देने की विस्तृत योजना बनायी गयी। उसने आर्गेतः हेमली और मेगारा आदि नगरों से संधि की और शक्ति संचय के लिए डेमीस संघ को भी अपने अधीन कर लिया। ईजिना, ट्रायजेन और एकिया से भी मित्रता की गयी। एरान से उसने केरियम की सन्धि की और ईरानी सम्राट ईजियन प्रदेश तथा एथेन्स पर आक्रमण न करने का वचन दिया। स्पार्टा से जो सन्धि की गयी थी उसमें दोनों ने समझौता किया था कि एक देश दूसरे के मित्र देशों से अलग सन्धि नहीं करेगा।

फारस का सामना करने के लिए यूनान और ईजियन सागर के तटवर्ती देशों ने एक संघ का निर्माण किया था। इस संघ का नेता एथेन्स था। पेरिक्लीज ने अपने पद का लाभ उठाकर से नेक्साज, थेसाज को अपने अधीन किया तथा कैरिस्टन नामक नगर को संघ में सम्मिलित होने के लिए बाध्य किया। इस संघ में एक यह भी शर्त थी कि सभी सदस्य नगर-राज्य को जहाज देंगे। परन्तु आगे चलकर जहाजों के स्थान पर नगर-राज्य, संघ पर एथेन्स का पूरा अधिकार हो गया पेरिक्लीज ने अपनी शक्ति बढ़ाने में समुद्री बेड़े और संघ से धन का पूरा उपयोग किया। जिन

नगरों ने पेरिक्लीज की नीति का विरोध किया उन सबको उसने पराजित डीलेस संघ समुद्र मार्गों की रक्षा करता था। पेरिक्लीज ने स्थल मार्गों से अपने देश की रक्षा करने के लिए दोनों ओर मजबूत दीवारें बनवायीं। उसके शासन के ही अधीन राज्यों में एथेन्स के उपनिवेश बनाये गये और इन उपनिवेशों से कर लिए जाते थे और उपनिवेशों के मुकदमों का फैसला एथेन्स में ही किया जाता था। इस प्रकार एथेन्स की प्रभुत्ता में और वृद्धि हुई।

एथेन्स का पतन— पेरिक्लीज की विस्तारवादी नीति के कारण एथेन्स ने अभूतपूर्व उन्नति की परन्तु उसकी उग्र नीति के कारण शत्रुओं की संख्या भी बढ़ी। बोशिया (Boetia) वालों ने एथेन्स के विरुद्ध राजद्रोह किया और कारोनिया के युद्ध में उसे पराजित कर दिया। इस हार से लाभ उठाकर मेगारा, लोक्रिस, फोसिस आदि नगरों ने भी अपने को एथेन्स से स्वतन्त्र घोषित कर दिया। पेलोपोनिसस के युद्ध में स्पार्टा से हार कर एथेन्स को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी। इस काल में 429 ई० में पेरिक्लीज की मृत्यु हो गयी।

एथेन्स के बहुमुखी विकास में पेरिक्लीज का योग सदा स्मरण रखा जायगा; यद्यपि साम्राज्यवादी नीति में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

शासन-नीति—जब पेरिक्लीज के हाथ में एथेन्स की बागडोर आयी उस समय दो परस्पर विरोधी वर्गों में एथेन्स का समाज विभाजित था। पहली श्रेणी में सामन्त और उच्च वर्ग के लोग थे जिनके हाथ में शासन की बागडोर थी और यह वर्ग जनता के शोषण में ही अपनी भलाई समझता था। एरियोपेगस इस वर्ग की प्रतिनिधि संस्था थी जिसके द्वारा राज्य का संचालन धनी वर्ग करना चाहता था। दूसरा वर्ग प्रगतिवादियों का था जिसमें गरीब और अधिकारों से हीन व्यक्ति सम्मिलित था। परन्तु इन लोगों की संख्या बहुत अधिक थी और इनमें राजनीतिक चेतना का विकास हो चुका था। यह लोग अपनी प्रतिनिधि संस्था असेम्बली द्वारा शासन-सूत्र को अपने अधीन करना चाहते थे।

पेरिक्लीज ने प्रगतिवादी दल का साथ दिया और जिसके कारण जनतांत्रिक प्रणाली पनपने लगी। जैसा कि बर्न्स ने कहा है—"पेरिक्लीज के काल में एथेन्स के लोकतन्त्र की अपनी प्रवीणता प्राप्त हुई।"

"The Athenian democracy attained its full perfection in the Age of pericles." —Burns.

पेरिक्लीज ने असेम्बली की सदस्यता प्रत्येक वर्ग के लिए खुलवा दी। फलस्वरूप लुहार, सुनार तथा मोची आदि सभी असेम्बली में बैठ सकते थे। प्रारम्भ में आर्कन पद पर केवल कुलीन वर्ग के लोगों की नियुक्ति की जाती थी। परन्तु बाद में पेरिक्लीज ने 457 ई० पू०.में यह अधिकार सारे वर्गों को दे दिया। अधिकार देने के साथ यह प्रतिबन्ध भी लगा दिया कि एथेन्स की नागरिकता केवल उसी को दी जायगी जिसके माता-पिता दोनों ही एथेन्स के निवासी हों। शासन के किसी भी पद पर किसी को नियुक्त किया जा सकता था। इसके लिए किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता न थी।

असेम्बली (Assembly)—यह सभा जनता के मध्य श्रेणी और निम्न श्रेणी

के व्यक्तियों की प्रतिनिधि सभा थी। पेरिक्लीज के समय में हर एक स्वतन्त्र नागरिक इस सभा का सदस्य हो सकता था और उसे मतदान का अधिकार प्राप्त था। इस सभा के अधिवेशन प्रायः प्रति सप्ताह होते थे और प्रत्येक सदस्य को कोई भी बिल पेश करने का अधिकार प्राप्त था। परन्तु यदि एक वर्ष के अनुभव के बाद उस बिल पर बने हुए नियम में दोष निकलता था तो प्रस्तावक को दण्ड दिया जाता था। इसलिए लोग बहुत जल्दबाजी में बिल नहीं पेश करते थे। प्रत्येक बिल लोक-सभा में पास हो जाने के उपरान्त ब्यूल नामक संस्था में भेजा जाता था।

ब्यूल—ब्यूल के सदस्यों की संख्या 500 थी और प्रत्येक वर्ग के 50 सदस्य इससे चुने जाते थे। इन सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता था। सदस्य बारी-बारी से सभापति होते थे। प्रशासन के कार्यों के लिये पचास पचास सदस्यों की 10 उपसमितियां बनायी जाती थीं जो सार्वजनिक निर्माण, पदाधिकारियों के आचरण वैदेशिक नीति और अर्थ-परीक्षा इत्यादि के कार्य करती थीं। ब्यूल को लोक सभा के किसी बिल को अस्वीकार करने का अधिकार नहीं था। वह केवल पुनर्विचार के लिए अपनी सम्मति के साथ बिल को लोक-सभा को वापस कर सकती थी।

न्याय-व्यवस्था—पेरिक्लीज के पूर्व एरियोपेगस देश का प्रमुख न्यायालय था। परन्तु पेरिक्लीज ने एक सार्वजनिक न्यायालय का निर्माण किया जिसे हेलियास कहा जाता था और एरियोपेगस के सभी अधिकार इस न्यायालय को दे दिये गये। इस न्यायालय में 6000 जज थे जिनकी नियुक्ति क्रमानुसार नागरिकों में से होती थी। इन्हें जूरर कहा जाता था। समस्त जूरर 500-500 की दल समितियों में बाँटे गये थे और 1090 जूरर आपत्ति-काल के लिए सुरक्षित रखे गये थे। इनको वेतन दिया जाता था। इनके अतिरिक्त 30 न्यायाधीश विभिन्न प्रदेशों में घूम-घूम कर तात्कालिक न्याय करते थे। एरियोपेगस के अधीन चार अन्य न्यायालय थे और एरियोपेगस केवल हत्या और हिंसा के मुकदमों का फैसला करता था। इस काल में दीवानी और फौजदारी कानून एक से थे। दासों को और सम्पत्ति का हरण करने वालों को शारीरिक दण्ड दिया जाता था। नागरिकों को यह अधिकार था कि भ्रष्ट आचरण करने वाले अपनी माता-बहन, पुत्र और स्त्री की हत्या कर सकें। दीवानी के मुकदमों में जिन लोगों को डिक्री मिलती थी स्वयं प्रतिवादी को उसका पालन करने के लिए बाध्य करते थे।

शासन की समालोचना—पेरिक्लीज के शासन में सभी पदों पर केवल एथेन्स के ही नागरिक नियुक्त किये जाते थे। योग्यता अथवा शिक्षा को कोई विशेष महत्व नहीं था। डैसा विल ड्यूराण्ट ने लिखा है—"एथेन्सवासियों का विशेषज्ञों की सरकार में विश्वास नहीं था।

"Athenians do not believe in government of experts."

—Will Durant.

नागरिकों का जनतन्त्र में विश्वास था। केवल वही व्यक्ति नागरिक हो सकते थे जिनके माता-पिता दोनों एथेन्स के नागरिकों पर आगे चलकर विदेशियों से विवाह-सम्बन्ध करने पर भी रोक लगा दी गयी। इस नीति से एथेन्स के निवासियों को अपनी नागरिकता पर गर्व हो गया। इससे सभी नागरिकों को समान अधिकार तो प्राप्त

हुए परन्तु प्रशासन में शिथिलता आ गयी क्योंकि कभी-कभी अयोग्य और अकर्मण्य व्यक्तियों की नियुक्ति महत्वपूर्ण पदों पर हो जाती थी। जनतन्त्रवाद की इस नीति से केवल 107 जनसंख्या एथेन्स की नागरिक हो सकती थी। दासों, स्त्रियों तथा विदेशियों को नागरिकता के अधिकार प्राप्त थे जिनके कारण उन पर घोर अत्याचार किये जाते थे।

एथेन्स में विचारों को प्रकट करने की और इच्छानुसार देवताओं की पूजा करने की स्वतन्त्रता बहुत कम थी। परम्पराओं और प्रथाओं की आलोचना करने वालों को अपराधी समझा जाता था। केवल उन्हीं देवताओं की पूजा की जाती थी जो राजसत्ता द्वारा मान्य थे।

उपर्युक्त लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि पेरिक्लीज ने जनतन्त्र का अत्यधिक विकास किया और निम्न कोटि के व्यक्तियों को ऊँचे पद प्राप्त करने का अवसर मिला। इसी कारण स्पार्टा के लोग एथेन्स वालों से जलते थे। विल ड्यूराण्ट ने लिखा है कि स्पार्टा से जो व्यक्ति एथेन्स जाते थे उन्हें ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह किसी सैनिक-शिविर से क्रीड़ा-स्थल पर आ गये हों।

प्रश्न—धर्म और दर्शन के क्षेत्र में पेरिक्लीज युग की क्या देन है ?

धर्म तथा दर्शन के क्षेत्र में पेरिक्लीज युग की महान देन है। यहाँ हम पेरिक्लीज युग के धर्म और दर्शन पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं। साधारणतया धर्म का अर्थ यह होता था कि कोई वर्ग कुछ ऐसे सिद्धान्त स्वीकार कर लेता है। जिनके द्वारा आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध सम्भव हो जाता है। धार्मिक संस्थाओं में मन्दिर और पुरोहितों का संगठन आवश्यक होता है परन्तु यूनान में न कोई मत था और न कोई मन्दिर। पुरोहितों को सिर्फ धार्मिक क्रियाएँ कराने का अधिकार था। एक वैज्ञानिक ने लिखा है कि यूनान में प्रकृति के विभिन्न रूपों को देखा कर और समझकर देवी-देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित किया गया और इस वाह्य जगत् तथा अन्तर्गत के साथ सम्बन्ध स्थापित किया गया। यूनानियों ने काम, क्रोध, मद, लोभ, घृणा आदि मनोवृत्तियों को भी देवी-देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित किया और इस प्रकार यूनान में भी देवी-देवताओं की बाढ़ सी आ गयी।

यूनानी कल्पना में व्यवहार की मान्यता इतनी अधिक थी कि लोग धन का आदान-प्रदान, सेनाओं का संचालन आदि सब देव-वन्दना के उपरान्त ही करते थे। सभी जातियों और वर्गों के लोग किसी न किसी देवी-देवता से अंरक्षित थे। इस प्रकार धर्म व्यावहारिक जीवन से घुल-मिल गया था इसीलिए यूनानियों ने भी मन्दिर या धार्मिक संस्था अलग स्थापित करने की चेष्टा नहीं की। यूनानियों के सभी देवी-देवताओं की प्रकृति मनुष्य के समान थी केवल उनमें सौन्दर्य और अमरत्व का दैवीय गुण था।

कालान्तर में यूनानी लोग अन्ध-विश्वासों, भविष्यवाणियों तथा शकुन-अपशकुनो में अधिक विश्वास करने लगे और दैवीय-शक्ति को सन्तुष्ट करने के लिए पशुओं की बलि दी जाने लगी। धार्मिक उत्सवों को भी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए मनाया जाने लगा। इन उत्सवों में आमोद-प्रमोद, कला-प्रदर्शन नृत्य-संगीत और रास-रंग को महत्व दिया जाता था। कुछ स्थान में देव-मन्दिरों का

निर्माण भी कालान्तर में हुआ। यहाँ भक्त-जन उपहार और दान आदि से देवता को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते थे, और इच्छित फल की याचना करते थे।

भारत, ईरान, आदि देशों में जिस प्रकार धार्मिक क्रान्तियाँ हुईं उसी प्रकार एथेन्स में भी उपर्युक्त धार्मिक कृत्यों के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हुए। सबसे पहले पिण्डर ने साहित्य रचना द्वारा जनता का ध्यान अन्ध विश्वासों के विरुद्ध दिलाया। इसी प्रकार यूरिपिडीज ने नाटक रचना करके धार्मिक कथाओं में बतायी हुई देवताओं के न्याय की अराजकता पर क्षोभ प्रकट किया। एस्कोइजस और साफोक्लीज ने यूनान के बहुदेववाद पर प्रहार किया और एकेश्वरवाद का साफोक्लीज. ने जियस को देवताओं के सम्राट के रूप में प्रतिष्ठित किया।

दर्शन—यूनान की स्वतन्त्र विचारधारा को दर्शन ने सबसे अधिक प्रोत्साहित किया। यूनानी दर्शन का प्रारम्भ 600 ई० पू० में हुआ और नित्यवादी तथा अनित्यवादी सम्प्रदायों का जन्म हुआ। 5वीं शदी ई० पू० में अणुवादियों ने दोनों में मेल कराने का असफल प्रयास किया और यह स्वीकार किया कि विश्व के निर्माण करने वाले तत्व अनश्वर और असंख्य हैं। यद्यपि इनके आकार में भिन्नता है फिर भी उनके गुणों में समानता है। पेरिक्लीज का मित्र एनेक्जेगोरास इस विचार से पूर्ण रूप से सहमत नहीं था। उसने चेतन और अचेतन में भेद किया और यह माना कि विभिन्न तत्वों के संगठन और विघटन से ही चेतन और अचेतन वस्तुओं का निर्माण होता है।

5वीं शताब्दी ई० पू० में एक नयी तर्क-सम्मत विचारधारा का जन्म हुआ, जिनमें धार्मिक कथाओं में वर्णित दैवीय न्याय पर सहमति और असन्तोष प्रकट किया।

इसी युग में बहुत से विदेशियों ने आकर एथेन्स में नये सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रतिपादन किया। इन विचारकों को सोफिस्ट कहा जाता है। सर्वप्रथम सोफिस्ट गोरास थे, जिसने यह सिद्धान्त निकाला कि मनुष्य ही सब वस्तुओं का मापदण्ड है। अर्थात् सत्य, न्याय, सौन्दर्य और सदाचार मनुष्य की आवश्यकताओं पर ही निर्भर होते हैं। परन्तु ज्यों-ज्यों परिस्थितियों के कारण आवश्यकताएँ बदलती हैं त्यों-त्यों आदर्श भी बदलते जाते हैं। वैज्ञानिकों ने गोरास के इस सिद्धान्त को शांकावाद कहा और जोर्नियस से इसको दूसरे रूप से ही समझाया। उसने कहा कि ज्ञान की प्राप्ति बिल्कुल असम्भव होती है क्योंकि किसी-किसी वस्तु का अस्तित्व है ही नहीं, इसीलिए मनुष्य उसे जान नहीं सकता और यदि जान भी जाय तो उस ज्ञान को प्रकाशित नहीं कर सकता। थेसीमेक्स ने यह सिद्धान्त रखा कि व्यक्तियों के आचरण के समस्त नियमों का निर्माण शक्तिवादन अपने-अपने हित में करते हैं। न्याय नाम की कोई वस्तु संसार में नहीं है इसलिए चतुर मनुष्य वही है जो अपने शक्ति-बल से अपना हित पूरा कर सके। सोफिस्टों ने सामान्य जनों के अधिकारों का समर्थन और दास-प्रथा तथा युद्धों का विरोध किया। परन्तु वे समाज के उत्तरदायित्वों को न समझ सके और सामाजिक परम्पराओं द्वारा निर्धारित आदर्शों को जड़ से उखाड़ने का प्रयत्न करने लगे। इसी युग में एथेन्स में एक ऐसे विचारका जन्म हुआ जिसने

सत्य को स्थायित्व और आदर्शों को दृढ़ता प्रदान की। इस महावीर का नाम सुकरात था।

सुकरात के कारण यूनानी दर्शन मुख्य रूप से एथेन्स का दर्शन बन गया। वह सोफिस्टों के सिद्धान्त का विरोधी था। यद्यपि उसने स्वयं कुछ नहीं लिखा परन्तु उसके शिष्यों के लेखों से उसकी भावनाएँ ज्ञात होती हैं। वह न तो विशुद्ध दर्शन के अध्ययन में, न क्लिष्ट धार्मिक समस्याओं के समाधान में विश्वास करता था। उसका मुख्य विषय आचार शास्त्र था। वह कहा करता था कि देवता देखे नहीं जा सकते। यदि मनुष्य सच्चाई के साथ अपना कार्य करे तो स्थायी सत्य के दर्शन कर सकता है। उसने अपने जीवन का लक्ष्य सत्य की खोज बनाया था। सुकरात के विचार अत्यन्त प्रगतिशील थे जिसके कारण एथेन्स के शासकों ने उस पर बालकों को भड़काने और एथेन्स की मान्यताओं की आलोचना करने का दोष लगाया। उसका मत था कि एथेन्स की देव शक्ति, सदाचार और जनतन्त्रवाद में विश्वास, वास्तविकता के विरुद्ध है। यह केवल ढोंग मात्र है। शासकों ने सुकरात को विषपान करके शरीर त्याग करने के लिए बाध्य किया। जिस वर्ष सुकरात ने शरीर त्याग दिया उसी वर्ष पेरिक्लीज भी मरा।

पेरिक्लीज युग के बाद सुकरात के दो अनुयायी प्लेटो और अरस्तू (Aristotle) के नाम आते हैं जिन्होंने एथेन्स के सामाजिक जीवन में क्रान्ति उत्पन्न की। प्लेटो के अनुसार मनुष्य में सत्, रज और तम गुण प्रधान होते हैं और मनुष्य इन्हीं गुणों को समझकर कार्य करता है। जगत् भी दो प्रकार का होता है—भौतिक और आध्यात्मिक। आध्यात्मिक जगत् ऊँचा और स्थायी है जिसे बुद्धिमान व्यक्ति ही प्राप्त कर सकते हैं। ईश्वर को पहचानना ही सबसे उत्तम विचार है। भौतिक जगत् में हम जिन इन्द्रियों द्वारा वस्तुओं को देखते हैं और परखते हैं से आध्यात्मिक जगत् के लिये अपूर्ण है। ज्ञान ही ऐसी शक्ति है जो आध्यात्मिक जगत् का साक्षात्कार करा सकती है।

अरस्तू के विषय में कहा जाता है कि वह अपने समय का प्रकाण्ड विद्वान था और उसने कई शास्त्रों और विद्याओं का सूढ़ अध्ययन किया था। अरस्तू मनुष्य को राजनीतिक जीव मानता था और समाज के बाहर मनुष्य के अस्तित्व की कल्पना नहीं करता था। उसके विचार से आदर्श राजनीतिक संगठन पॉलिटी (Polity) जो अधिनायकतन्त्र (वर्गतन्त्र) और जनतन्त्र के बीच की स्थिति है। शासन-सत्ता को वह मध्य वर्ग के हाथ मे रखना, अधिक उचित समझता था। उसके विचार से संसार में दो ही तत्व हैं और दोनों एक-दूसरे पर आश्रित हैं। इन दोनों तत्वों के संयोग से ही सृष्टि का निर्माण होता है। उसके विचार से वही मनुष्य उन्नति करता है जो भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों का विकास कर लेता है। वह वैराग्य और तप का पक्षपाती नहीं था। बल्कि जीवन व्यतीत करने का उपदेश देता था।

प्रश्न—पेरिक्लीज युग के वैज्ञानिक, कलात्मक और आर्थिक उन्नति पर प्रकाश डालते हुए उस युग का मूल्यांकन कीजिए। कला और साहित्य के क्षेत्र में पेरिक्लीज काल की उपलब्धियों की विवेचना कीजिए।

पेरिक्लीज युग प्राचीन यूनानी संस्कृति के इतिहास का गौरवशाली युग है।

इन युग में विज्ञान, साहित्य और कला के क्षेत्र में भी विशेष उन्नति हुई। यहाँ हम उनकी उन्नति पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं।

विज्ञान—प्राय: लोग समझते हैं कि यूनानी लोग विज्ञान के बहुत बड़े ज्ञाता थे; परन्तु वास्तव में यह धारणा गलत है। विज्ञान-दर्शन एशिया की देन है। यूनान वालों ने केवल उनसे घनिष्ठता दिखलाई। यूनान के वैज्ञानिक थैलीज ने प्रारम्भ में कुछ बीजगणित की खोजें कीं। पैथागोरस की खोजें उससे अधिक महत्वपूर्ण थीं। हिप्पोक्रेटिज और डिमोक्रेनिज ने इस विज्ञान को अधिक विकसित किया। हिप्पो-क्रेटिज ने रेखागणित की प्रथम पुस्तक का निर्माण किया।

पेरिक्लीज काल के वैज्ञानिकों ने चिकित्सा-शास्त्र में प्रगति की थी। एम्पिडो-क्लीज ने यह सिद्ध किया था कि रक्त हृदय से प्रवाहित होता है और शरीर के छोटे-छोटे छिद्र स्वास्थ्य प्रक्रिया में सहायक होते हैं। इटली निवासी अल्क्मेयन ने यह बतलाया कि विचारों का केन्द्र-बिन्दु मस्तिष्क है। उसने पशुओं की शल्य चिकित्सा प्रारम्भ की, निद्रा-प्रक्रिया का अनुसंधान किया और आप्टिव नर्व (Optive nerve) का ज्ञान प्राप्त किया। इसी काल में यूराईफोन ने प्लूरिसी को फेफड़ों की बीमारी बतलाया और यह भी बताया कि कब्ज अनेक रोगों का कारण होती है। हिप्पोक्रेटिज ने चिकित्सा-शास्त्र को धर्म और दर्शन-शास्त्र से अलग करके संक्रामक रोगों का पता लगाया और यह बतलाया कि रोग प्राकृतिक कारणों से होते हैं न कि दैवीय शक्तियों के प्रकोप से।

ज्योतिष के क्षेत्र में एम्पिडोक्लीज, पामेनिडिल और काइलोसीस तथा डिलोक्रेटिज के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होंने कई महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की खोज की—

(1) विश्व का निर्माण चार तत्व—क्षिति, जल, पावक और वायु से हुआ।
(2) प्रकाश एक स्थान से दूसरे स्थान तक तक पहुँचने में समय लेता है।
(3) पृथ्वी गोल है।
(4) चन्द्रमा को सूर्य से प्रकाश मिलता है।
(5) आकाश—गंगा अनन्त विश्वों का समूह है।
(6) पृथ्वी सूर्य-मण्डल में एक ग्रह मात्र है।
(7) चन्द्रमा पृथ्वी का निकटतम ग्रह है।
(8) ग्रहण का कारण सूर्य-चन्द्र है।

इन क्रान्तिकारी विचारों ने एथेन्स में बहुत हलचल मचायी और धर्म-गुरु विशेष रूप से पामेनिडिज की हत्या के लिए छटपटाने लगे। एनेक्जेगोराज को एथेन्स से भाग कर अपनी जान बचानी पड़ी।

नाटक—पेरिक्लीज युग के दुखान्त नाटकों के ही एथेन्सवासियों से साहित्यि गुणों की छटा मिलती है। यूनान नाटक कई दशाओं में अन्य देशों में नाटकों भिन्न थे—

(i) नाटकों की आधारभूत कथाएँ धार्मिक थीं,
(ii) रंगमंच पर बहुत कम दृश्य दिखाये जाते थे,

(iii) नारी के प्रेम का अभाव होता था, एवं
(iv) ये नाटक अधिकतर दुःखान्त होते थे।

नाटकों का प्रारम्भ डायोनाइसस के सम्मान में उत्सव से आरम्भ होता है। इस उत्सव में कुछ लोग बकरे का रूप बनाकर एक वेदी के चारों ओर नाचते और गाते थे तथा घटनाओं का गीतों में वर्णन करते थे। आगे चलकर नाच-गाना कम हो गया और संवाद के रूप में कथा का विकास होने लगा जो कालान्तर में नाटक के रूप में प्रस्तुत हुआ।

दुःखान्त नाटकों का संस्थापक एस्काइलस था। इसने 80 नाटक लिखे थे। जिसमें रूढ़िवादी भावनाओं की अधिकता है। यह स्वयं भाग्यवादी और आस्तिक था और सांसारिक जीवन की सत्ता में विश्वास नहीं करता था। दूसरा नाटककार सोफोक्लिस था। उसकी रचनाओं में संसार के प्रति अविश्वास और जीवन की क्षणभंगुरता के प्रति गहरा क्षोभ प्रकट किया गया है। यूरोपिडीज ने धार्मिक कुरीतियों, अनैतिक परम्पराओं, स्त्रियों और दासों पर किये गये अत्याचारों की कड़ी आलोचना की। उसने नारी जाति का प्राणदायक चरित्र प्रस्तुत किया है।

सुखान्त नाटककारों में एरिस्टोफेनिज सबसे अधिक प्रसिद्ध है। उसने जीवन की साधारण घटनाओं को लेकर धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक कुरीतियों पर आक्रमण किया है तथा राजनीतिज्ञों की खिल्ली उड़ाई है। इसके विषय में एक इतिहासकार ने लिखा है—"जिसने एरिस्टोफेनिज का अध्ययन नहीं किया वह एथेन्सवासियों को नहीं जान सकता।"

"No one who has not read Aristrophenes, can know the Athenians."

काव्य—यूनान के इस युग का सबसे बड़ा कवि पिंडार कहा जाता है। यह यूनान के कई राजदरबारों में राजकवि नियुक्त हुआ और अत्यन्त कुशल नायक तथा वीणा-वादक था। उसकी रचनाओं में आकुलता, श्रद्धा, देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी थी। राजनीतिक क्षेत्र में वह कुलीन वर्ग का समर्थक था। एथेन्सवासियों ने इसी कारण उसकी एक मूर्ति स्थापित करायी थी। सिकन्दर महान् ने जब थीब्रिज का नाश किया, उस समय उसने पिंडार के निवास-स्थान को सुरक्षित छोड़ दिया।

इतिहास—हेरोडोट्स और थ्यूसीडीडज दो प्रमुख इतिहासकार इस युग में हुए। थ्यूसीडीडिज को वैज्ञानिक इतिहास का जन्मदाता और हेरोडोट्स को इतिहास शास्त्र का पिता कहा जाता है। हेरोडोट्स ने मुख्य रूप से ईरान और यूनान के संघर्ष की कथा लिखी है परन्तु राजनीतिक घटनाओं के साथ-साथ साहित्य, कला, वेश-भूषा, धर्म और श्रृंगार के साधनों आदि का भी विस्तृत वर्णन किया है। अतः उसके ग्रन्थ राजनीति से कम सम्बन्धित हैं और साहित्य से अधिक। थ्यूसीडीडिज कुशल सेनानी और योग्य सेनापति था। उसने एथेंस और स्पार्टा के संघर्ष का वर्णन किया है। हेरोडोट्स की भाँति उसने सुनी हुई बातों को बिना सत्य की खोज किये हुए लिखने का प्रयास नहीं किया बल्कि तथ्यों की आलोचना निष्पक्ष भाव से काफी छान-बीन के बाद की है। इसी कारण वह स्वयं अपने ग्रन्थ को स्थायी निधि कहता था और मैकाले ने उसे महानतम इतिहासकार [illegible]ना है। अपने ग्र[illegible] में उसने राज-

नैतिक पक्ष पर बल दिया है, सामाजिक और आर्थिक पक्षों पर प्राय: बिल्कुल प्रकाश नहीं डाला है।

कला—पेरिक्लीज ने जर्जरित एथेन्स को राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र बिन्दु बनाने के लिए महान् प्रयत्न किया। देश की सुरक्षा के लिये सड़क चौड़ी करायीं, दीवारें बनवायीं और राजधानी को बन्दरगाहों से मिलाया। उसने नगर सफाई का भी उचित प्रबन्ध किया।

एथेंस के मुख्य भवनों में सभा-भवन, संगीत-भवन और पार्थेनीन नाम का देवालय अत्यन्त प्रसिद्ध है जहाँ सम्राट स्वयं जाया करता था और वक्तृताएँ देता था अथवा संगीत तथा नृत्य प्रतियोगिताएँ आयोजित करवाता था। पार्थेनीन के देवालय को सफेद संगमरमर से बनाया गया था और टुकड़ों को इस प्रकार जोड़ा गया था कि कहीं निशान मालूम न होता था। पेरिक्लीज के समय में यूनान की डौरिक और आयोनिक शैलियों का पूर्ण विकास हुआ जो कालान्तर में अत्यन्त लोकप्रिय हुई।

पेरिक्लीज युग के कारीगरों ने सोने, काँसे और हाथी दांत की उतनी ही सुन्दर मूर्तियों का निर्माण किया जितनी कि संगमरमर की मूर्तियों का आगोस के कलाकारों में सबसे अधिक पोलिक्लीट्स प्रसिद्ध है। उसने डेरा की स्वर्ण और हाथी दांत की मूर्तियां इतनी सुन्दर बनवायी थीं कि उनकी तुलना फीडियास की एथेना की मूर्ति से की जाती है।

इसी युग में चित्रकला की तीन शैलियाँ विकसित हुई हैं। फ्रेस्को विधि में ताजे प्लस्टर पर चित्र बनाये जाते थे। टेम्परा विधि में अण्डे की सफेदी मिलाकर गीले रंगों से कपड़े या बोर्ड पर चित्र बनाये जाते थे और एन्कास्टिक विधि में मोम मिलाकर रंगों का प्रयोग किया जाता था। इस काल की चित्रकला में वास्तु-कला अधिक सहायक थी। इस युग में प्रमुख विचारकों में पोलिग्नोटस और परेसियन ज्यूक्सिन आदि के नाम प्रमुख हैं।

मूल्यांकन—सांस्कृतिक दृष्टि से यूनान सदा अमर रहेगा। यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से उसका पतन हो चुका था। यूनान की सांस्कृतिक निधि पाश्चात्य सभ्यता में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इसी कारण बर्न्स लिखता है—"ग्रीक लोग उन आदर्शों के जन्मदाता जो आधुनिक युग में पश्चिम की देन माने जाते हैं।"

"The Grekes were the founders of nearly all those ideals which we commonly think of as peculiar to the west." —Burns.

राजनीतिक चेतना का सर्वप्रथम प्रसूति-गृह यूनान को ही कहा जाता है। यहाँ बनतन्त्र के विधि उपकरणों जैसे प्रतिनिधि सभाओं, निर्वासन मताधिकार न्याय की शाखाओं का विभाजन प्रचुर मात्रा में विकसित हुआ। एकतन्त्र की भलाइयों, बुराइयों का ज्ञान भी सर्वप्रथम यूनानी साम्राज्य में ही दिखलाई पड़ता है। यूनानी योद्धा अपने देश की स्वतन्त्रता, अपने विश्वास की स्वतन्त्रता और पूर्वजों की समाधियों की स्वतन्त्रता के लिए अपनी सन्तान और स्त्रियों की स्वतन्त्रता के लिए बहुत काल तक लड़ते रहे। उनकी स्वतन्त्र भावना, उनके चिन्तन, दर्शन और विचार प्रकाशन में स्पष्ट रूप से दिखलायी पड़ती है। यूनानियों ने सांसारिक जीवन को

सुखी बनाने का सतत् प्रयत्न किया और इसीलिए देवी-देवताओं की कल्पना मानव रूप में की और कला तथा भाषा को रहस्यमयी न बनाकर प्राकृतिक रूप दिया। यूनानियों से अनुशासन और सन्तुलन की शिक्षा मिलती है। उन्होंने यथार्थवाद और आदर्शवाद में समन्वय किया, आर्थिक जीवन में भी उनकी सन्तुलन भावना महान् है।

यूनान की इन सभी विचारधाराओं के मानव-जाति के सांस्कृतिक और बौद्धिक विकास में जो योगदान दिया है वह चिरन्तन और चिरकालीन है। यूनानी दर्शन बहुमुखी है जिसके अन्तर्गत भौतिकवाद, अध्यात्मवाद, आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, आत्म-दर्शन, आचार-शास्त्र, समाज-शास्त्र, चिकित्सा-शास्त्र और मनोविज्ञान आदि पर समान रूप से सफलतापूर्वक कार्य किया है। यूनान के दर्शन पर प्लेटो को इतना विश्वास है कि उसने लिखा—

"Until philosophers are kings of the kings and princes of this world have the spirit and power of philosophy, cities will never have rest from there evils."

—Plato.

10

ईरान की सभ्यता—पूर्व-पुरातात्विक युग

(Iranian Civilization—Pre-Archaeolgical Age)

प्रश्न—ईरान की भौगोलिक स्थिति का संक्षिप्त परिचय दीजिये और वहाँ की प्रारम्भिक आर्य-सभ्यता पर प्रकाश डालिये। इन सभ्यता पर अन्य सभ्यताओं का क्या प्रभाव पड़ा ?

भूमिका—पश्चिमी एशिया के जिन देशों में सभ्यता के प्रारम्भिक चरण के दर्शन हुए उनमें ईरान का महत्व सबसे अधिक है। विश्व के इतिहास में ईरान की सभ्यता, जिसे "पारसीक" सभ्यता (Persian Civilization) भी कहते हैं, अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आज भी पैसारगेड (Passargade) या पर्सीपोलिस (Persepolis) के खंडहर, उनकी जीर्णशीर्ण दीवारें और समाधियाँ अनायास ही तत्कालीन वैभव और उनके निर्माता महान् सम्राटों की शूर-वीरता, जाति, भाषा और संस्कृति का गुण-गान करते प्रतीत होते हैं। अभी तक सेमेटिक जातियों के नेतृत्व में मेसोपोटामिया सूसा, बेबिलोन और निनेव सभ्यता के प्रमुख केन्द्र थे, जहाँ से विशाल भू-खण्डों पर शासन करते थे, लेकिन ईरान ने आर्य जाति के नेतृत्व में एक मोड़ लिया था। परिणामस्वरूप विश्व के रंगमंच पर "आर्यों" के उत्कर्ष के रूप में एक नयी जाति की सभ्यता सामने आयी है।

ईरान की भौगोलिक स्थिति—ईरान का मूल नाम "एर्यान" है, जिसका अर्थ है "आर्यों की भूमि"। ईरान का पुराना नाम पर्सिया भी है जो प्राचीन शब्द पार्स तथा फार्स (Fars) से बना है। इसी शब्द से "पर्सिसं" (बाद में फारसी) और प्राचीन राजधानी पर्सीपोलिस नाम की उत्पत्ति हुई।

ईरान को भौगोलिक दृष्टि से निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा गया है—

(क) उत्तरी ईरान,

(ख) पश्चिमी ईरान एवं

(ग) दक्षिणी ईरान।

उत्तरी ईरान—पूर्व में सिन्धु नदी के घाटी से लेकर पश्चिम में दजला की घाटी तक फैला हुआ पठारी भाग हो उत्तरी ईरान कहलाता है। इस पठार के पश्चिम में आधुनिक ईरान और उत्तर-पूर्व में अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान के प्रान्त हैं। ईरान के उत्तर में एल्बुर्ज (Elburz) पहाड़ की श्रेणियाँ हैं। इसकी सबसे ऊँची चोटी 18,000 फीट ऊँची है जो तेहरान से पूर्व में है। ये पर्वत श्रेणियाँ ईरान को रूस से अलग करती हैं। दूसरी श्रेणी जेगरोस की है जो ईरान की पश्चिमी सीमा को छूती हुई दक्षिणी में फारस की खाड़ी और अरब सागर से होती हुई पाकिस्तान में समाप्त होती है। इस पठारी भाग के प्रमुख स्थानों में उत्तर-पूर्व में गुर्गान और खुरासान के प्रसिद्ध प्रान्त हैं। यहाँ का प्रसिद्ध नगर मेशोद है, जो ईरान का धार्मिक स्थल है। यहाँ अफीम की पैदावार बहुत होती है। मध्य भाग में ओरगिलन तथा उत्तर-पश्चिमी में असरबेजान नामक प्रमुख प्रान्त हैं, जो अधिक वर्षा के कारण बहुत उपजाऊ है। यहाँ बहुत घने जंगल भी पाये जाते हैं। यहाँ की मुख्य पैदावार चावल और रेशम है, जो विदेशों में भी प्रसिद्ध है। अजरबेजान में कई पहाड़ी मार्ग जो अन्य देशों से ईरान को मिलाते हैं।

मध्यवर्ती ईरान—यह विस्तृत भू-भाग विश्व का सबके सूखा प्रदेश माना गया है। यहाँ दो बड़े रेगिस्तान, दशते कविर (Dashte Kavir) और दशते लुट (Dastte Lut) हैं। इनमें नमक के भण्डार पाये जाते हैं। सूखा होने पर भी जहाँ कृत्रिम सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं। यह प्रदेश बहुत ही उपजाऊ है और अच्छी खेती होती है। प्राचीन काल से ही मध्यवर्ती भाग कला और संस्कृति के केन्द्र रहे हैं। तेहरान (Tehran), इस्फहान (Isfahan) और हमादान (Haumadan) मुख्य नगर हैं, जो राजधानी रह चुके हैं। इस भाग के दक्षिण की ओर फार्स (Fars) का प्रांत है, इस्लाम से पूर्व ईरान की मातृभूमि थी। यहाँ का मुख्य नगर शीराज (Shiraz) है। पूर्व की ओर किरमान प्रान्त जिसकी राजधानी किरसान और बाम प्रसिद्ध नगर है। सच तो यह है कि ये प्रदेश भी सूखे हैं परन्तु मानव द्वारा सिंचाई के साधन बना देने पर कुछ सीमा तक उपजाऊ हो गया है।

पश्चिमी-दक्षिणी ईरान—ईरान दक्षिण की ओर फारस की खाड़ी अरब सागर से घिरा है तथा पश्चिम में दक्षिण की ओर जगरोस पर्वत और मकरान पर्वत है। दक्षिण-पश्चिमी भाग करुन (Karun) नदी से सिंचित प्रदेश है। यहाँ प्राचीन एलम और सूसियाना का प्रदेश था, जिसकी राजधानी मूसा ईरान की सभ्य और वैभवपूर्ण नगरी थी। इस प्रदेश के पश्चिम में ईराक, उत्तर में लूरिस्तान, पूर्व

में किमिन और फार्स के अनुपजाऊ प्रान्त हैं। दक्षिण-पूर्व में विलोचिस्तान शुष्क प्रदेश है। फारस की खाड़ी के निकट खुजिस्तान (Khuzistan) का प्रान्त है जहाँ मिट्टी के तेल की खानें हैं। पहले यहाँ बहुत अच्छी खेती होती थी परन्तु अब तेल के कारखानों को प्रधानता दी गयी है। यहाँ अबादान का टापू है जहाँ विश्व का सबसे बड़ा मिट्टी का तेल-शोधक कारखाना है।

ईरान की भौगोलिक विशेषताएँ

इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ ईरान में ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं, वहीं रेगिस्तान भी हैं। बीच में कुछ मैदान भी हैं, जिसके कारण यहाँ के निवासियों में एकता की भावना के साथ-साथ अनेकता भी हैं। यहाँ नदियों की कमी है। कोई प्राकृतिक बन्दरगाह नहीं है अतः ईरानी कभी कुशल नाविक न बन सके। यहाँ की उपजाऊ घाटियों में अच्छी नस्ल के घोड़े पाये जाते हैं जो आर्यों के साम्राज्य विस्तार में अत्यन्त सहायक हुए। ईरान होकर ही मध्य एशिया से पूर्व भारत की ओर पश्चिम ईराक और अरब की ओर जाने का मार्ग है। इस देश में अन्य देशों की राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं के साथ-साथ वहाँ की सभ्यताओं को प्रभावित किया है। हेनरी बर्न ने लिखा है, 'प्राचीन काल में देश को और पश्चिम को जोड़ने वाली एक कड़ी थी। इस देश ने व्यक्तियों और फौजों का सुमानी की खाड़ी तथा कैस्पियन सागर के मध्य में अति प्राचीन काल से स्थान परिवर्तन करते हुए देखा है। यह देश दो सभ्यताओं के मेल का स्थान रहा है।

ईरान की प्राचीन जातियाँ—ऐसा विश्वास किया जाता है कि अति प्राचीन काल में ईरान में द्रविड़ जातियाँ रहती थीं। दूसरी शहस्त्राब्दी ई० पू० ईरान पर आर्य ईरानियों ने आक्रमण किया जो इण्डो-योरोपियन की शाखा के थे। युद्ध में विजय प्राप्त कर वे वहीं रहने लगे।

3 000 ई० पू० के अन्त में भारत से लेकर योरोप एक इण्डो-योरोपियन अथवा आर्य जाति निवास करती थी। एकरिन, डोरियन, रोगन, केल्ट आदि इसी परिवार की शाखाएँ थीं। पश्चिमी एशिया के हित्ती, कसाइट और मितन्नी जातियों के शासक भी आर्य ही थे। सम्भवतः कसाइट और मितन्नी जाति के शासक आर्य जाति के ईरानी शाखा के थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि अति प्राचीन काल में ईरान में आर्य जाति ही निवास करती थी।

ईरान की प्रारम्भिक आर्य—सभ्यता

आर्य-सभ्यता की जानकारी के साधन—प्राचीन काल की ईरानी आर्य सभ्यता की जानकारी साहित्य, अभिलेखों आदि के द्वारा होती है। ईरानी इतिहास जानने का मुख्य श्रोत 'अवेस्ता' है। 'अवेस्ता' का इतिहास में वही स्थान है जो वैदिक सभ्यता में वेदों का है। 'अवेस्ता' का रचयिता जरथुस्ट्र माना गया है। लेकिन यह ग्रन्थ अब मूल रूप में नहीं प्राप्त है। समय-समय पर इनमें परिवर्तन होते रहे हैं। हेरोडोट्स की 'हिस्ट्री' तथा अन्य यूनानी लेखकों के वर्णन से भी ईरानी इतिहास जानने में सहायता मिलती है।

हित्तियों की राजधानी बोगजकोई (Boghaz-koy) से प्राप्त अभिलेखों से, जो इण्डो-यूरोपियन परिवार से सम्बन्धित था, तथा उत्तरी मेसोपोटामिया के मितन्नू

(Mitannu) नामक स्थान से प्राप्त अभिलेखों से कई महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं जो ईरानी आर्यों से सम्बन्धित हैं।

राजनीतिक इतिहास—ईरानी प्राचीन इतिहास को सात कालों में विभाजित किया है; जो निम्नलिखित है—

(1) पिशदादि काल, (4000 ई० पू० से 2000 ई० पू० तक)
(2) किमानी काल, (2000 ई० पू० 1000 ई० पू० तक)
(3) मादिया मीडियन काल, (850 ई० पू० से 600 ई० पू० तक)
(4) हखाम्सी या हखाम्शी काल, (600 ई० पू० से 324 ई० पू० तक)
(5) यूनानी काल (325 ई० पू० से 120 ई० पू० तक)
(6) पार्थियन काल (120 ई० पू० से 226 ई० तक)
(7) ससैनियन काल (225 ई० से 651 ई० तक)।

हखामशी युग से ईरान के इतिहास की विस्तृत जानकारी उपलब्ध होती है। अतएव मादिया युग तक के इतिहास को ही हम प्रारम्भिक इतिहास के अन्तर्गत स्थान दे सकते हैं।

(1) पिशदादि और किमानी काल—चौथी सहस्त्राब्दी ई० पू० से लेकर प्रथम सहस्त्राब्दी ई० पू० तक का इतिहास इन युगों के अन्तर्गत आता है। इस इतिहास के विषय में विशेष जानकारी नहीं है। दूसरी सहस्त्राब्दी ई० पू० की प्रारम्भिक शताब्दियों तक ईरानी आर्य ईरान को पूर्ण रूप से उपनिवेश बनाने और नयी संस्कृति का प्रयोग करने में संलग्न रहे। इस कार्य के लिए उन्होने अपने को बहुत-सी शाखाओं में विभाजित कर लिया। इनमें मीडियन्स, जिकीजें, पर्सियन्स, पार्थव, हरैव, हेरोडोटप्स के एरियन, हायरकेनियन, अवैस्ती, ड्रेजन एशकोशियन, ब्राख्वी अथवा बैक्ट्रियन कोरोस्मियन, मारजियन और साण्डियन आदि उल्लेखनीय हैं। इन जातियों में बहुत सी आर्येत्तर जातियाँ मिल गईं। कसाइटों और मिन्नियों का उल्लेख भी मिलता है जो ईरानी आर्यों की उपशाखाएँ मानी जाती हैं।

यह समस्त जातियाँ अपने अस्तित्व के लिए निरन्तर संघर्ष करती रहीं और अन्त में ईरान के बहुत बड़े भाग पर इनका अधिकार हो गया। अतः हम कह सकते हैं कि ईरानियों के इतिहास का पिशदादि और किमानी काल संघर्ष युग था जिसमें इस जाति ने अपने को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया।

(2) मादिया काल अथवा मीडियन युग—ईरान के इतिहास में मादिया का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। मादिया या मीडिया ईरान की उत्तरी पश्चिमी भाग था। टोलेमी के विवरणों से प्रतीत होता है। इसकी प्राचीन राजधानी "हगमतन" जिसे आधुनिक काल में हमदन कहते हैं, थी। इस शब्द का शाब्दिक अर्थ मिलने का स्थान होता है। डायोडोरस का मत है कि इसका क्षेत्र 60 वर्गमील था। इस युग में अनेक प्रतिभाशाली सम्राट हुए जिनकी चर्चा हम नीचे कर रहे हैं—

डियोकोज (Deioces)—हमदन का प्रथम शासक डियोकीज माना जाता है। यह मिडिस जाति का था। मीडियस असीरियनों के बहुत निकट थे। इसलिए इन्हें बार-बार आक्रमणों का सामना करना पड़ता था फलस्वरूप वह एकता के सूत्र में बंध गये। हेरोडोटस का मत है कि उनके संयुक्त राज्य की स्थापना डियोकीज

नामक नागरिक ने की। उसने अपने साथियों के झगड़ों को निपटाना प्रारम्भ किया और फलस्वरूप उसे कीर्ति मिली जब उसके पास बहुत से मुकदमे आने लगे तो उसने इसका कार्य परित्याग कर दिया। फलस्वरूप देश में अराजकता फैल गई और अन्त में एकबटना को अपनी राजधानी बनाया। उसने दरबार के रीति-रिवाज निश्चित किये और राजाज्ञाएँ प्रेषित कीं। वह असीरिया की शक्ति को नष्ट करने में सफल हुआ। सारगोन द्वितीय (722-705 ई० पू०) के एक अभिलेख के अनुसार उसने अपने शासनकाल में उर्तु नरेश से मिलकर एक संघ की स्थापना की।

फ्रवर्तिश अथवा क्षस्त्रतरित (Gyaxares)—हेरोडोट्स का मत है कि डियोपीज की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र फ्रवर्तित सिंहासनारूढ़ हुआ। परन्तु असीरियन अभिलेखों में इस समय (लगभग 680-653 ई० पू०) वहाँ क्षस्त्ररित नामक राजा का राज्य बताया जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार ये दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इसके शासन-काल में मीडिस जाति ने असुरों की राजधानी नानेव को उजाड़ डाला और मारडिस नगरी पर आक्रमण कर दिया। ऐसे समय में सूर्य ग्रहण पड़ा और उसकी सेना को वापस लौटना पड़ा। इसके एक साल बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। उसके जीवन-काल में मीडिया जाति ने बहुत उन्नति की। उसने किस्मरियन और सीथियन जातियों को हरा कर एक संघ बनाया।

अस्तवेगु या अष्टागीज (Astyagees)—अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् अष्टागीज गद्दी पर बैठा। वह बहुत अधिक विलासी था। राज-काज में उसकी रुचि न थी। उसके शासन-काल में उच्च वर्गों में विलासिता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी। उसके शासनकाल में सान प्रान्त के शासक कम्बुजिक प्रथम ने अपनी शक्ति बढ़ा ली और उसकी शक्ति से प्रभावित होकर अष्टागीज ने अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया। परन्तु कम्युजिक के पुत्र कुरुष द्वितीय ने उसके असन्तुष्ट सामन्तों से मिलकर 553 ई० पू० में विद्रोह कर दिया और 500 ई० पू० में मीडिया को अपने अधीन कर लिया।

आर्यों का प्रारम्भिक संगठन—अपने प्रारम्भिक जीवन में आर्य लोग कबीले का जीवन व्यतीत करते थे। उनके पालतू पशुओं में गाय, भेड़, बकरी, घोड़े और कुत्ते होते थे। वे लोग आरम्भिक काल में गाड़ी और रथों का प्रयोग करते थे। धीरे-धीरे आर्यों ने अपना साम्राज्य विस्तार किया। मीडियन काल में पूरा आठ प्रान्तों में बंटा हुआ था। राज्य का प्रधान राजा स्वयं ही होता था, वही न्याय भी करता था। राजा डियोकीज ने इनके नियमों का निर्माण किया था, जिससे देश में सुरक्षा स्थापित की गयी थी।

समाज का आधार परिवार था। एक गाँव में एक परिवार से सम्बन्धित परिवार का आधार पैतृक प्रणाली (Patriarchal) थी। समाज में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी। एक कबीले के लोग दूसरे कबीले की स्त्रियों का हरण कर लेते थे। परिवार में पुत्र को प्रधानता दी जाती थी।

प्रारम्भिक काल में साहित्य कला और कौशल—मीडियनों की सांस्कृतिक उन्नति के विषय में नहीं मालूम है क्योंकि न तो कोई तत्कालीन साहित्य प्राप्त हुआ है न अभिलेख। साकिज से प्राप्त कोष से कला के विषय में कुछ जानकारी हुई

है। आर्य लोग बहुत ही शान-शौकत में रहते थे। बाद में हखाम्शी शासकों ने मीडिज शासकों की वेश-भूषा और शासन-पद्धति को अपनाया था।

बदख्शां की खानों से लाजवाई निकाला जाता था। सोने और कांसे का इन्हें ज्ञान था। परन्तु दस्तकारी से ये परिचित नहीं थे। पर्सीपोलिस के खंडहर इस बात के प्रमाण हैं। इन पर कला के क्षेत्र में भी 'मिस्री और असीरियन प्रभाव पड़ा है। यद्यपि इनके भवन आकार में विशाल (काफी बड़े) और भद्दे बने हैं, फिर भी मिस्रियों के भवनों की भाँति इनके भवनों में भी स्तम्भों की अधिकता होती थी, जो काफी पतले और लम्बे होते थे। ये विशालकाय भवन ईरानी सम्राटों की अधीनता में बनवाये गये थे। दूसरी विशेषता यह है कि इन भवनों को अनेक चटक रंगों से अलंकृत किया गया था जिससे उनमें खूब चमक-दमक आ गयी थी। ये रंग सुन्दर और चमकदार होते थे। इसके अतिरिक्त ईरानी मूर्ति-कला पर यूनानी प्रभाव दिखायी पड़ता है जो आकार में काफी सुडौल है। ईरानियों से ही वास्तु-कला और मूर्तिकला को अरबों ने सीखा। इसी काल से इत्र और अंगूर से शराब का उत्पादन प्रारम्भ होता है तथा अनेक प्रकार की कलाओं का जन्म होता है। आर्यों ने सुमेरियन लिपि को ही अपनाया तथा लिखना-पढ़ना सीखा।

प्रारम्भिक आर्यों का धर्म—आर्य जाति प्रारम्भ काल से ही प्रकृति-पूजक थी। वे लोग वृक्षों, नदियों और पर्वतों की पूजा करते थे। साथ ही अहुर-मज्दा (Ahur-Mazda) इनका प्रमुख देवता था। असुर या अहुर उनके ईश्वर हैं। अहुर ही वैदिक असुर तथा मज्जा वैदिक देव का पर्यायवाची है। उनके यहाँ मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य की पूजा होती थी।

आर्यों का विश्वास था कि असुर रथों पर चलते हैं और मनुष्यों पर दया करते हैं। इस काल में बलि प्रथा का भी प्रचलन था। प्राचीन पारसीक धर्म बहुदेव-वाद, यज्ञ-वाद और अन्धविश्वास पर आधारित था। जनता मिथर (मिथ्र,-सूर्य) अनाहित (सृष्टि देवी) तथा सोम आदि की पूजा करती थी। यज्ञ करने वालों को "देवो-जुस्तो" (देवप्रिय) माना जाता था। भूत-प्रेतों से रक्षा के लिए तन्त्र-मन्त्रों की भी व्यवस्था थी। ऐसे ही वातावरण में महान् धर्मोपदेशक और सुधारक व्यक्ति जुरथुस्त्र का जन्म हुआ जिससे आर्य धर्म में अनेक सुधार हुए। इस महान धर्मोपदेशक और सुधारक के काल के विषय में पर्याप्त मतभेद है। इसके सम्बन्ध में हमने इस अध्याय के प्रश्न (2) में विस्तार से प्रकाश डाला है।

प्राचीन ईरानी आर्य-सभ्यता पर अन्य सभ्यताओं का प्रभाव—ईरानियों की प्राचीन आर्य-सभ्यता अन्य देशों की सभ्यताओं की अत्यधिक ऋणी है। अन्य प्राचीन सभ्यताओं ने ईरानियों की सभ्यता को अत्यधिक प्रभावित किया है। यहाँ इसकी चर्चा हमने संक्षेप में की है—

(अ) सुमेरियन सभ्यता का प्रभाव—सुमेरियन सभ्यता दजला और फरात नदियों के बीच में पनपी, और ईराक में काबुल तथा नैनवे आदि को बसाने का श्रेय सुमेरियनों को प्राप्त है। सुमेरियन लगभग चार हजार वर्ष ई० पू० में फारस में प्रवेश कर चुके थे। फारस के पश्चिमी किनारे पर इनका एक प्रसिद्ध मन्दिर था। यह ईरान के रास्ते ही आते थे। इसलिए ईरानियों पर अत्यन्त व्यापक प्रभाव

डाला। गणित, ज्योतिष और कला के क्षेत्र में ईरानियों की सुमेरियनों की महान् देन है। एक विद्वान का यह कथन पूर्णतया उचित है, कि सुमेरियन सभ्यता ने ईरानी सभ्यता को अपने पूरे रंग में रंग दिया।

(ब) एलम एवं असीरिया की सभ्यता का प्रभाव—एलम की सभ्यता ने भी ईरानी सभ्यता को बहुत अधिक प्रभावित किया। एलम का राज्य रुन की घाटी में स्थित था और इनकी राजधानी सूसा थी। इन्होंने ईरानियों पर अत्यन्त व्यापक प्रभाव डाला। बहुत समय तक एलम और बाबुल के बीच संघर्ष हुआ। जब असीरिया ने एलम पर आक्रमण किया और सूसा को नष्ट-भ्रष्ट किया तो सूसा के मिट जाने पर एलमवासी असीरियनों के नियन्त्रण में आ गये। असीरियनों ने ईरान में भी अपना राज्य स्थापित किया और इस प्रकार एलम तथा असीरिया की मिली-जुली सभ्यता ने ईरान की सभ्यता को प्रभावित किया।

(स) सिन्धु-घाटी की सभ्यता एवं प्रभाव—प्राचीन ईरानी सभ्यता पर सिन्धु-घाटी की सभ्यता का प्रभाव पड़ा। ईरान की खुदाई में अनेक ऐसी वस्तुएं प्राप्त हुई हैं जो सिन्धु-घाटी की सभ्यता से मिलती जुलती हैं। यह समानता अधिक देखने को मिलती है। वास्तव में सुमेरियन सभ्यता और सिन्धु-घाटी की सभ्यता बहुत कुछ मिलती-जुलती है। बाबुल की खुदाई में जो चीजें प्राप्त हुई हैं वैसी ही चीजें मोहनजोदड़ों की खुदाई में भी प्राप्त हुई हैं। सुमेरियन की सभ्यता और सिन्धु-घाटी की सभ्यताओं में ईरानी सभ्यता पर प्रकाश डाला।

(द) भारतीय आर्यों की सभ्यता का प्रभाव—प्राचीन भारतीय आर्यों की सभ्यता और प्राचीन ईरानी सभ्यता बहुत कुछ मिलती-जुलती है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि आर्य ईरान से भारत आये इसलिए ईरानी सभ्यता ने भारतीय सभ्यता को प्रभावित किया न कि भारतीय सभ्यता ने ईरानी सभ्यता को, परन्तु विद्वानों का दूसरा वर्ग भारत को ही आर्यों का आदि स्थान मानता है और उनका कथन है कि भारतीय आर्यों की सभ्यता ने ईरान की सभ्यता को प्रभावित किया है।

अवेस्ता की भाषा और संस्कृत भाषा में बहुत अधिक साम्य है। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण हैं·

अवेस्ता की भाषा	संस्कृत
यातु	यातुः
पितर	पितृ
अप	आप
हुरा	सुरा
प्रदम	प्रथम
ब्रांच	भ्रातृ
इन्द्र	इन्द्र

इन समस्त तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि भारतीय और ईरानी आर्य वंश की दो शाखाएँ हैं। दोनों वंशज एक ही थे और दोनों की धमनियों में आर्यों का रक्त ही प्रभावित हो रहा है।

प्रश्न—जरथुस्ट्र (Zoraster) कौन था ? उसके जीवन, धर्म का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

जरथुस्ट्र की शिक्षाओं पर संक्षिप्त लेख लिखें।

जरथुस्ट्र का जीवन-परिचय—अति प्राचीन काल में ईरान में आर्यों ने उन्नत सभ्यता को जन्म दिया। प्राचीन युग के प्रारम्भ में अन्धविश्वासों और कर्मकाण्डों का बोलबाला था। ऐसे समय में एक ऐसा व्यक्ति पैदा हुआ जिसने ईरान के धार्मिक जीवन को ही पूरी तरह से बदल दिया और वहाँ के समाज पर भी अपना व्यापक प्रभाव डाला। इस व्यक्ति का नाम था जरथुस्ट्र।

जन्म और जन्म-स्थान—जरथुस्ट्र (Zoraster) के साथ इतनी अधिक अलौकिक घटनाओं को बांध दिया गया है कि बहुत से विद्वान उसकी ऐतिहासिकता पर सन्देह करते हैं। उनका जन्म कब हुआ। इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि जरथुस्ट्र का जन्म अजरबेजान के उसमिया नामक स्थान में हुआ था इनका बचपन का नाम स्पितमा था। ईरानी जनुश्रुतियों के अनुसार वह "कपि विस्तास्प" नामक राजा के संरक्षण में रहा। यूनानी दार्शनिकों के अनुसार जरथुस्ट्र का जन्म प्लेटो से भी 6,000 वर्ष पूर्व हुआ था बबिलोनियन इतिहासकार बेरोसस के अनुसार उसका जन्म 2000 ई० पू० में हुआ। विलियम जैक्सन उसे 660 ई० पू० का मानता है और विल डयूराण्ट भी उसको छठी शताब्दी ई० पू० का मानता है। विलियम जैक्सन के अनुसार उसका जन्म 663 ई० पू० से 583 ई० पू० में हुआ था परन्तु मिथर के अनुसार छठी शताब्दी ई० पू० का मानना उचित नहीं है। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये गये हैं:—

(1) जरथुस्ट्र का धर्म हखाम्शी शासन-काल में बहुत लोकप्रिय हो चुका था, अतः उसे उस शासन के पूर्व का मानना चाहिए।

(2) असुरबनिपाल जिसका समय 7वीं शताब्दी ई० पू० माना जाता है, एक लेख में "अस्सर मजश" उसके साथ सात अंगिगियों तथा उसका विरोध करने वाली प्रेतात्माओं का वर्णन मिलता है जिस पर जोरेस्टर धर्म का प्रभाव प्रतीत होता है। यह वर्णन और किसी का नहीं बल्कि अहुर-मज्दा उसके साथ अमेशस्पेन्तो और सात देवों का है।

(3) हमदन में एक स्वर्ण अभिलेख मिला है जिसमें हखाम्श के पौत्र अरियम्न ने लिखा है कि उसके राज्य में "जिस पर अहुर-मज्दा की कृपा के कारण उसका अधिकार है, बहुत अच्छे घोड़े मिलते हैं, इससे यह स्पष्ट है कि सातवीं शताब्दी ई० पू० में जोरेस्टर धर्म प्रचलित हो चुका था।

(4) हखाम्शी नरेश डेरियस प्रथम अपने एक अभिलेख में अपने को अहुर-मज्दा का उपासक बताता है।

(5) हखाम्शी नरेशों के शासन-काल में जिस धर्म का उल्लेख किया गया है, वह जोरेस्टर धर्म का विकसित रूप प्रतीत होता है।

(5) हखाम्शी अभिलेखों की भाषा जोरेस्टर की गाथाओं की भाषा से बहुत भिन्न है। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार जोरेस्टर की गाथाओं की भाषा हखाम्शी अभिलेखों की भाषा से लगभग 500 वर्ष पुरानी है।

इस सब तथ्यों के अनुसार जोरेस्टर का काल 600 ई० पू० न मानकर 1000 ई० पू० मानना अधिक समीचीन होगा।

ऐसा कहा जाता है कि जोरेस्टर का जन्म पश्चिमी ईरान के अजरवेजान नामक प्रान्त में हुआ था। उसके पिता का नाम पोमशष्पा (Pomshaspa) और माता का नाम दुगोधा (Dughedha) था।

ज्ञान प्राप्ति और प्रचार—जोरेस्टर अपने आरम्भिक जीवन से ही बड़ी विलक्षण बुद्धि वाला था। वह आरम्भ से ही बड़ा विचारशील था। उसने 15 वर्ष की आयु में अपनी शिक्षा समाप्त कर ली। 20 वर्ष की आयु में उसने संसार का परित्याग कर दिया और सांसारिक तथा पारलौकिक विषयों के गहन अध्ययन के लिए पर्वत की कन्दराओं में रहने लगा। दैवीय शक्तियों ने उसके कार्य में बाधा डाली परन्तु वह उनसे विचलित नहीं हुआ। तीस वर्ष की आयु में सबलान पर्वत पर उसे ज्ञान की प्राप्ति हुई। कहा जाता है कि जब वह अवेतक नामक सरिता के किनारे बैठा हुआ था तो वहाँ एक देवदूत उपस्थित हुआ और उसे अहुर-मज्दा के पास ले गया। अहुर-मज्दा ने उसे अवेस्ता दी और कहा कि इसका प्रचार करो।

इसके पश्चात् वह अपने धर्म के प्रचार के लिए इधर-उधर घूमता रहा। पश्चिमी ईरान में उसे धर्म के प्रचार में सफलता नहीं मिली। इसके पश्चात् वह पूर्वी ईरान गया और खुरासान में विस्तास्प (Vistasp) नामक राजा से मिला। बहुत परिश्रम के बाद उसने उसे अपने धर्म का अनुयायी बनाया। बहुत से विद्वान विस्तास्प को डेरियस महान का पिता मानते हैं। अहुर-मज्दा ने अपने तीन फरिश्ते भेजकर विस्तास्प को जोरेस्टर को अपना गुरु मानने और 325 वर्ष तक जीवित रहने का आदेश दिया। इस प्रकार जोरेस्टर को राज्य-संरक्षण की प्राप्ति हुई और धर्म राजकीय संरक्षण में पनपने लगा।

विवाह और मृत्यु—विस्तास्प को अपना शिष्य बनाने के पश्चात् जोरेस्टर ने तीन विवाह किये। इस बीच पड़ोसी संघों ने विस्तास्प पर आक्रमण किया। कदाचित जोरेस्टर धर्म की इतनी अधिक उन्नति देखकर ही एशिया की तुरानी ताजियों ने ईरान पर आक्रमण किया। कुछ विद्वानों का मत है कि उनके विरुद्ध दूसरे धर्म-युद्ध में जोरेस्टर मारा गया।

जरथुस्ट्र-धर्म—जरथुस्ट्र का धर्म ईश्वर के द्वारा दिये गये ज्ञान पर आधारित था। भारत में प्रचलित धर्म के अलावा जोरेस्टर का ही धर्म एक ऐसा धर्म है जिसने यह घोषणा की थी कि ईश्वर के द्वारा दिया गया धर्म है। यहूदी धर्म ने भी यह घोषणा बाद में की। जोरेस्टर ने अपने देश में प्रचलित धर्म की बुराइयों को दूर करके एक क्रान्तिकारी धर्म का श्रीगणेश किया। उसके धर्म की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं।

(1) एकेश्वरवाद (Monotheism)
(2) द्वन्द्वात्मक (Dualism)
(3) सदाचारिता,
(4) आशावादिता,
(5) स्वर्ग और नरक की कल्पना,

(6) सांसारिकता,
(7) शरीर और आत्मा का सम्बन्ध,
(8) सृजन पर विचार,
(9) कर्मकाण्ड,
(10) नैतिकता।

(1) एकेश्वरवाद—जोरेस्टर एकेश्वरवाद का समर्थक था और बहुदेववाद का विरोधी उसके पूर्व फारस के लोगों का बहुत से देवताओं पर विश्वास था। जोरेस्टर ने एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया और यह बतलाया कि जितने भी देवता हैं वह सब अहुर-मज्दा ही इच्छानुसार चलते हैं। उसके धर्म में अहुर-मज्दा को इतना मुख्य स्थान दिया गया है कि बहुत से आलोचकों ने उसके धर्म को मज्दाइज्म (Mezdaism) के नाम से पुकारा है। अहुर-मज्दा में सदाचारिता का विकसित रूप है। वे सद्भावना की मूर्ति हैं। शक्ति, स्वास्थ्य और पवित्रता उनमें विद्यमान है और वे अमर हैं—ऐसा जोरेस्टर का विश्वास था। एक अभिलेख में डेरियस महान् ने लिखा है—

"अहुर-मज्दा महान् देवता है जिसने पृथ्वी और स्वर्ग की रचना की, जिसने मनुष्य का निर्माण किया और उसके लिए गृह-सुख की व्यवस्था की, जिसने अकेले दारायबोध को बहुसंख्यक मनुष्यों का राजा बनाया है। अहुर-मज्दा की अनुकम्पा से राजा हुआ है। ऐ मनुष्यों, अहुर-मज्दा का आदेश है बुरी बात न सोचो, सद्मार्ग न छोड़ो, पाप न करो।"

(2) द्वन्द्वात्मक—जोरेस्टर धर्म में दैवीय और दानवीय दो प्रकार की शक्तियों का उल्लेख किया गया है। दैवीय शक्तियों के प्रतीक अहुर-मज्दा हैं और दानवीय शक्तियों के प्रतीक अहिरमत। इन दोनों में निरन्तर संघर्ष हुआ करता है। कभी दैवीय शक्तियों के प्रतीक जीतते हैं और कभी-कभी दानवीय शक्तियों के प्रतीक। परन्तु इस धर्म के अनुयायियों का मत है कि अन्तिम विजय अहुर-मज्दा की होगी। अहुर-मज्दा को मनुष्यों के नेतृत्व की जरूरत है और यह कार्य सम्राट ही पूरा कर सकता है।

(3) सदाचारिता—आरम्भ में जोरेस्टर का धर्म कर्मकाण्ड और बाह्याडम्बरों से रहित था। यह धर्म सदाचारिता और कर्त्तव्य-परायणता को विशेष महत्व देता था। इस धर्म के अनुसार मनुष्य को बुराइयों का परित्याग करके दानशीलता, उदारता और सत्यता को अपना कर अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये। वास्तव में जोरेस्टर का धर्म केवल सैद्धान्तिक नहीं था बल्कि व्यावहारिक था। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान कार्टर ने लिखा है, "जोरेस्टर का धर्म संस्कृति का धर्म आध्यात्मिक और नैतिक उन्नति का धर्म है, वह शक्ति एवं क्रियाशीलता का धर्म है, मितव्यता का धर्म है।"

"The religion on Zoraster is a religion of spiritual and moral progress, it is religion of energy and action, a religion, of thrift.'

—Carter.

(4) आशावादिता—इस धर्म की एक अन्य विशेषता आशावादिता थी।

यह निराशावादी धर्म नहीं था। इस धर्म के अनुसार संसार की कुल अवधि 1200 वर्ष है। 9000 वर्ष बाद जोरेस्टर का पुनः जन्म होगा और उसके पश्चात आयोश्यान्त का जन्म होगा। जो असत्य का नाश करेगा। उसकी सहायता से अहुर-मज्दा अहिरमन पर सदैव के लिए विजय प्राप्त कर लेंगे, तब संसार में सुख-शान्ति और नैतिकता का साम्राज्य स्थापित हो जायगा।

(5) **स्वर्ग और नरक की कल्पना**—जोरेस्टर धर्म के अनुयायी स्वर्ग और नरक में भी विश्वास करते हैं। "अस्तिविहाद" मृत्यु के देवता माने जाते हैं और वह व्यक्तियों को इस संसार से ले जाते हैं। उनका ऐसा विश्वास है कि मृत्यु के उपरांत मृत आत्माओं को एक पुल पार करना पड़ेगा जो कुकर्म करने वाले हैं। वे नरक के कष्ट भोगेंगे। कुछ समय पश्चात् वह भी स्वर्ग जायेंगे। परन्तु यदि उन्होंने मरने के पहले कोई भी अच्छा काम नहीं किया तो हमेशा नरक में ही रहेंगे। दुष्टों के उद्धार के लिए तीन पैगम्बर आयेंगे और वे इस धर्म का प्रचार करेंगे। 1200 वर्ष बाद सभी का उद्धार हो जायगा।

(6) **सांसारिकता**—जोरेस्टर धर्म पलायनवादी धर्म नहीं है। उसका मत था कि संसार में रहकर कुकर्म करने में स्वर्ग की प्राप्ति होती है, सत्य तो यह है कि इस धर्म के मतानुयायी मनुष्य और संसार दोनों को ही मानते हैं और इसलिए पलायन-वाद के विरोधी हैं।

(7) **शरीर और आत्मा का सम्बन्ध**—इस धर्म के अनुसार शरीर के दो भाग होते हैं—(1) शारीरिक, (2) आध्यात्मिक। आध्यात्मिक भाग तर्क; भावना, अंतःकरण, चेतना आदि का संगठित रूप है। मरने के बाद शरीर तो नष्ट हो जाता है परन्तु यह भाग जीवित रहता है।

(8) **सृजन पर विचार**—इस धर्म के मतानुयायी संसार की समस्त वस्तुओं वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी द्वारा निर्मित मानते हैं। यह चारों तत्व बहुत अधिक पवित्र हैं और उन्हें अपवित्र करने का प्रयास कभी भी नहीं करना चाहिए। इस धर्म के मतानुयायी इनको पवित्र रखने के लिए सदैव चिन्तित रहते थे। वे मुर्दे को गाड़ते या जलाते नहीं थे बल्कि उसे ऊँची जगह रख देने से पृथ्वी अपवित्र हो जायगी और अग्नि में जलाने से अग्नि अपवित्र हो जायेगी। इस धर्म पर विश्वास करने वाले यह मानते हैं कि सृष्टि चार तत्वों से बनी है और इन्हीं में विलीन हो जायेगी।

(9) **कर्मकाण्ड**—आरम्भ में इस धर्म में कर्मकाण्ड का कोई स्थान नहीं था। वे निराकार रूप से अहुर-मज्दा की आराधना करते थे। कालान्तर में इस धर्म में कर्मकाण्ड का प्रवेश हो गया और विशिष्ट धार्मिक क्रियाओं को स्थान दिया गया। शरीर और वस्त्रों आदि को शुद्ध करने के लिए मन्त्रों आदि का प्रयोग होने लगा।

इस कर्मकाण्ड की प्रवृत्ति इतनी बढ़ी कि उसने जोरेस्टर धर्म के मूल रूप में ही परिवर्तन कर दिया। जोरेस्टर का धर्म एकेश्वरवादी था। परन्तु इस धर्म के मतानुयायी अहुर-मज्दा के अलावा मिथ्रदेव (सूर्य) और अनैता देवी आदि की पूजा भी करने लगे। इस प्रकार बहुदेववाद की प्रथा पुनः चल पड़ी।

(10) **नैतिकता**—इस धर्म की सबसे बड़ी विशेषता उसकी नैतिकता है। इस धर्म के अनुसार कृषि को सबसे अच्छा पेशा समझा जाता था। जोरेस्टर का विचार

था कि सारा संसार भलाई का रूप है और बुराई का रण-क्षेत्र है हमें दूसरों से वैसे ही व्यवहार की आशा करनी चाहिए जैसा कि हम उनसे करते हैं। अवेस्ता के अनुसार सर्वश्रेष्ठ गुण उदारता है। इसके अतिरिक्त दया, वचन और कर्म की सत्यता भी आवश्यक है। यदि कोई पारसी किसी अन्य पारसी को उधार दे तो उसे सूद नहीं लेना चाहिए। अवेस्ता ने मनुष्य के तीन मुख्य कर्तव्य बताये हैं—

(1) शत्रुओं को मित्र बनाना,

(2) दुष्टों को सत्यवादी बनाना,

(3) अनपढ़ों को पढ़ाना।

धर्मग्रन्थ अवेस्ता—जरथुस्ट्र धर्म का धार्मिक ग्रन्थ अवेस्ता है। इस ग्रन्थ का ईरानी इतिहास में उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है, जितना भारत में वेदों का। अवेस्ता बहुत विशाल ग्रन्थ नहीं है न अब वह अपने मूल रूप में ही प्राप्य है। अरबी लेखक तबारी और ममूदी विवरणों के अनुसार जरथुस्ट्र की अवेस्ता 12000 पशुओं की खालों पर लिखी हुई थी। और जनुश्रुति के अनुसार इसमें 1200 अध्याय थे। संशोधित अवेस्ता भी अपने मूल रूप में नहीं प्राप्त है। यह धर्म हखाम्शी सम्राटों की छत्रछाया में खूब पनपा और डेरियस के काल में अपनी उन्नति की चरम-सीमा पर पहुंच गया था लेकिन राजधर्म होने से जहाँ अनेक लाभ थे वहीं अनेक हानियाँ भी इस धर्म को सहनी पड़ीं। यूनानी युद्धों में पारसीकों की हार के साथ-साथ इस धर्म का भी ह्रास हो गया। पार्थियन और ससानीकाल में जरथुस्ट्र धर्म का पुनरुद्धार किया गया और अन्य अनेक नई बातें भी इसमें जोड़ दी गयी। अरबों के आक्रमण से पारसियों ने अपना देश छोड़ दिया औरत में आकर बसे, लेकिन यहाँ भी अधिक उन्नति न कर सके। 18वीं शताब्दी में एक फ्रांसीसी ने अवेस्ता का अनुवाद छपवाया था। इस प्रकार जरथुस्ट्र धर्म फिर से प्रकाश में आया।

आजकल अवेस्ता को चार भागों में बाँटा गया है—

(1) **यस्न**—इसमें 72 अध्याय हैं, इसे गाथा (Gathas) कहते हैं। इसमें पुरोहितों के मन्त्र, भजन, जरथुस्ट्र के उपदेश और सिद्धान्त संकलित हैं।

(2) **विस्पेरेद (Vispered)**—इसमें 24 अध्याय हैं। इसमें देव बन्दनाएँ हैं।

(3) **वेन्दीदाद (Vendidad)**—यह धार्मिक नियमों की संहिता है।

(4) **यष्ट (Yashte)**—यह भाग देवदूतों की प्रशंसा में लिखी गयी स्तुतियों का संग्रह है। इस ग्रंथ और प्राचीन वैदिक ग्रन्थों की ऋचाओं भाषा और शब्दों में बहुत समानता है। इन चारों भागों में गाथा (यस्न) की भाषा अधिक प्राचीन है। पारसीकों का ऐसा विश्वास है कि इसमें स्वयं जरथुस्ट्र और उसके अनुयायियों द्वारा कहे हुए उपदेश हैं।

जरथुस्ट्र धर्म का प्रभाव—जरथुस्ट्र धर्म में लौकिक और पारलौकिक दोनों ही जीवनों को सुधारने वाले तथ्य समाये हुये थे। पारसियों को अपने इस धर्म पर बहुत अधिक अहंकार था। वे अपने धर्म को पालन न करने वाले लोगों को दण्ड देते थे और विदेशियों को काफिर मानते थे। इस सम्बन्ध में हेरोडोट्स ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है, पारसी अपने को संसार में सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। उनका मत है कि वे लोग

जो अपनी भौगोलिक स्थिति के फलस्वरूप, फारस के निकट हैं, अत्यधिक अच्छाई से युक्त हैं, जो देश फारस से दूर हैं वहाँ के निवासी जंगली एवं असभ्य हैं।"

ईरानियों की सांस्कृतिक उन्नति में जरथुस्ट्र धर्म ने महान् योगदान दिया। जरथुस्ट्र का धर्म एक नैतिक धर्म था और इसमें कहा गया था कि मनुष्य शुभ और अशुभ शक्तियों का संघर्ष क्षेत्र है। यह मनुष्य की इच्छा पर है कि वह शुभ कर्म कर अहुर-मज्दा का प्रिय बनना चाहता है या पाप कर्म करके अग्रमैन्यु। पाप और पुण्य की इस भावना ने पारसियों की नैतिक उन्नति में बहुत अधिक सहायता दी है। जरथुस्ट्र के धर्म के विषय में कार्टर ने लिखा है—'The Religion of Zoraster in culture of spiritual and moral progress. It is a religion of energy and in action a religion of thrift."

जरथुस्ट्र की परलोक-वाद की भावना भी पारसियों की नैतिक उन्नति में बहुत अधिक सहायक हुई। अपनी इस नैतिक भावना के फलस्वरूप यह धर्म सुदूर देशों में भी प्रचलित हुआ और विभिन्न धर्मों के अनुयायियों पर अत्यन्त व्यापक प्रभाव डाला। जरथुस्ट्र का धर्म ज्ञान पर आधारित धर्म कदाचित भारत में प्रचलित धर्म को छोड़कर किसी अन्य धर्म ने जरथुस्ट्र धर्म से पूर्व यह दावा नहीं किया था कि वह ईश्वर प्रदत्त धर्म है। कदाचित् यहूदी ने भी ईरानी सम्पर्क में आने के बाद ही यह दावा किया। अपनी नैतिकता के फलस्वरूप जरथुस्ट्र धर्म आज भी अनेक व्यक्तियों को आकर्षित किये हुये हैं।

●

11

ईरानी सभ्यता का हखाम्शी युग

(Achaemenian Age of Iranian Civilization)

प्रश्न – ईरान में हखाम्शी वंश के शासन के सूत्रपात का परिचय दीजिए। साइरस एवं केम्बिसस द्वितीय का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

अथवा

हखाम्शी कौन थे ? उनके शासन-काल की सांस्कृतिक उपलब्धियों पर प्रकाश डालिये।

अथवा

'साइरस द्वितीय ईरान की हखाम्शी वंश के शासन का वास्तविक संस्थापक था।" इस कथन का विवेचन कीजिये और उसके चरित्र का मूल्यांकन कीजिये।

ई० पू० 200 में ईरान में फार्स (Fars) नामक प्रान्त में हखाम्शी वंश का उदय हुआ, जिन्होंने एक विशाल राज्य तथा संस्कृति का विकास किया। इस वंश

का संस्थापक हखामश (Achaemene) था। हेरोडोट्स के विवरण के अनुसार ईरान में आर्यों के कई परिवार निवास कर रहे थे। जिनमें पैसारगेडाप (Pasgardape) था। पर्तिपोलिस (Persepolls) का परिवार हखाम्शी (जिसे यूनानी एकेमिनियन वंश कहते हैं) ई० पू० सातवीं शताब्दी में अधिक प्रसिद्ध हुआ। प्राचीन आर्य शासक जो पेशदादी (The early law givers) कहलाते थे, उन्हीं के पूर्वज थे।

हखाम्शी काल का आरम्भ विद्वानों ने 650 ई० पू० के लगभग माना है। हखामश के बाद उसका पुत्र तिशपिज (Tispes) हुआ। ये लोग अन्सान और फार्स प्रान्त पर एलम की अधीनता में राज्य कर रहे थे। किन्तु तिशपिज ने एलमी अधीनता को समाप्त कर मीडिया की अधीनता स्वीकार कर ली। इसके बाद इसका राज्य दो पुत्रों में बँट गया। साइरस प्रथम (Cyrus I) को अन्सार और पशुमर्थ का राज्य मिला दूसरे पुत्र अरियाम्न को फार्स का राज्य मिला। इस प्रकार हखाम्शी की दो शाखाएँ प्रचलित हो गयीं। बेतिस्तून के शिलालेख में डेरियस महान लिखता है—"मेरे पहले मेरी जाति के आठ सम्राट हो चुके हैं। मैं नवाँ सम्राट हूँ इस प्रकार हम सभी दो शाखाओं से उत्पन्न हुए हैं।"

साइरस प्रथम के पुत्र केम्बीसस प्रथम ने अपनी दूसरी शाखा पर भी विजय प्राप्त करके एक संगठित राज्य की स्थापना की। इस समय मीडिया के राज्य पर विलास-प्रिय इश्तुवेगु का राज्य था जिसने केम्बीसस की शक्ति से प्रभावित होकर अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया। इससे स्पष्ट है कि मीडियन आधिपत्य स्वीकार कर लेने पर लेम्बीसस का स्थान महत्वपूर्ण था।

कुरुष या साइरस द्वितीय और हखाम्शी साम्राज्य का वैभव—साइरस द्वितीय का शासन काल 558 ई० से 529 तक माना जाता है। जिस समय मीडिया साम्राज्य धन वैभव के चकाचौंध में डूबा हुआ था, उस समय अन्सान प्रदेश में एक लौह-पुरुष का जन्म हुआ जिसे कि साइरस महान् के नाम से जाना जाता है। वह हखाम्शी वंश का सबसे महान् सम्राट था। वह बड़ा पराक्रमी, व्यवहार-कुशल, उदार और सुन्दर था। यह नैपोलियन की भाँति बहुत अधिक महत्वाकांक्षी था और अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाने में निरन्तर प्रयत्नशील रहा।

सम्राट-कुरुष या साइरस की विजय—अपने राज्यकाल में साइरस ने बहुत से राज्यों को जीतकर अपने अधीन कर लिया। इनकी चर्चा नीचे की जा रही है—

(1) मीडिया विजय—साइरस द्वितीय ईरानी इतिहास में वही स्थान रखता है जो भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य। जब वह गद्दी पर बैठा तो उसका साम्राज्य मीडियन राजा इश्तेवेगु के अधीन था लेकिन आठ वर्ष के भीतर ही स्वयं मीडिया का सम्राट बन बैठा। ऐसा कहा जाता है कि मीडियन सम्राट इश्तवेगु के सरदार उससे अप्रसन्न हो गये और इन्होंने कुरुष को आमन्त्रित किया। कुरुष तो मौके की तलाश में था ही, उसने उनके निमन्त्रण को स्वीकार कर मीडिया पर आक्रमण कर दिया और युद्ध में विजयी होकर एकबटना को अपनी राजधानी बनाया।

(2) मीडिया और यूनानी उपनिवेशों पर विजय—मीडिया को अपने अधिकार में करने के पश्चात् कुरुष ने असीरिया के अधिकांश भाग, उरुत और एशिया

माइनर पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् उसने पर्शिया को जीतकर मीडिया के राजा क्रोयसस पर आक्रमण किया। क्रोयसस बहुत वीर सम्राट था, परन्तु कुरुष के आगे उनकी न चली। 1546 ई० पू० में सर्डिस (Sardis) का पतन हुआ और लीडिया कुरुष के अधीन हो गया। किंवदन्ती है कि अपनी पराजय से दुःखी होकर क्रोयसस ने आत्म-हत्या करने का प्रयास किया। परन्तु कुरुष ने उसे बचाकर बहुत अधिक सम्मान प्रदान किया।

क्रोयसस ने राज्य-काल में एशिया माइनर के पश्चिमी तटवर्तीय प्रदेश में यूनानियों के कई उपनिवेश थे। ये उपनिवेश क्रोयसस के अधीन थे परन्तु कुरुष के साथ युद्ध में वे उसकी सहायता न कर सके। इन उपनिवेशों ने लीडिया के पतन के पश्चात् कुरुष से लोहा लेना चाहा परन्तु पारस्परिक कलह के फलस्वरूप एक-एक करके उसका पतन होता गया।

(3) उत्तर-पूर्व और पूर्व में विजयाभियान—कुरुष ने उत्तर-पूर्व की ओर रहने वाले बर्बर जातियों पर आक्रमण करके हायरकेनिया पर विजय प्राप्त की और हखाम्शी वंश की दूसरी शाखा के भूतपूर्व नरेश अशर्म के पुत्र को वहाँ का गवर्नर बनाया। इसके पश्चात उसने ड्रेन्जियान, एराकोशिया, सार्जियन और बेक्ट्रिया पर विजय प्राप्त की। वक्षु नदी के उत्तर के मैदानों में उसने नगरों का निर्माण किया। भारत में उसको सफलता मिली अथवा नहीं, इस विजय में पर्याप्त मतभेद है। एरियन एक ओर तो उसे सिन्धु नदी तक के प्रदेश का स्वामी कहता है और दूसरी ओर उस प्रदेश में पूर्व काल में असीरियनों और मीडियनों के शासन की बात भी कहता है। अतः एरियन के मत पर विश्वास नहीं किया जा सकता और कुरुष को सिन्धु प्रदेश का स्वामी नहीं माना जा सकता। प्लिनी आदि विद्वानों का यह मत है कि उसका साम्राज्य काबुल की घाटी तक था, अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

(4) बेबिलोन और पश्चिमी प्रान्तों पर विजय—प्राचीन काल के बेबिलोन पश्चिमी एशिया का प्रसिद्ध व्यापारिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र माना जाता था। 538 ई० पू० तक इसकी संस्कृति बहुत अधिक बढ़ी-चढ़ी थी उस समय वहाँ नबोनिडस नामक राजा राज्य कर रहा था। यहूदी नबोडियस से घृणा करते थे और मर्दुक के पुजारी नबोनिडस से छुटकारा पाना चाहते थे। उन्होंने कुरुष को निमन्त्रण दिया। कुरुष बेबिलोनियनों पर आक्रमण करके उन्हें पराजित कर दिया और यहूदियों को फिलिस्तीन लौटने और येरुसलम में मन्दिर बनवाने की आज्ञा दे दी। बेबिलोन पर विजय से बेबिलोनियन साम्राज्य के सीरिया और फिनीशिया भी उसके अधिकार में आ गये।

कुरुष या साइरस की महानता—बेबिलोन का पतन एक साधारण घटना नहीं थी। वह एक नगर का पतन नहीं वरन् एक जाति, एक सभ्यता और एक संस्कृति का पतन था। यह नगर सेमेटिक जातियों के राजनीतिक उत्कर्ष का केन्द्र था। कुरुष को बेबिलोन-विजय के पश्चात् आर्यों का पश्चिमी एशिया में भी निश्चित रूप से प्रभुत्व स्थापित हो गया। 538 ई० पू० कुरुष की बेबिलोन विजय एक ऐसी घटना है, जिसने आगे के सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास में बहुत बड़ा मोड़ प्रस्तुत किया। कुरुष के युग से लेकर इस्लाम के काल तक यह नगर आर्यों के ही अधीन

10

रहा। इसका कारण यह था कि कुरुप ने बेबिलोनियन के निवासियों के हृदय पर विजय प्राप्त कर ली थी।

साइरस का मूल्यांकन--साइरस की मृत्यु 529 ई० पू० लस्सागोटी नामक एक असभ्य जाति से युद्ध करते समय हुई। साइरस एक महान् विजेता और महत्वाकांक्षी साम्राज्यवादी था। इतिहासकार इमर्सन का कथन है कि साइरस का जब राज्याभिषेक हुआ था उस समय वहाँ एक भी ऐसा व्यक्ति उपस्थित नहीं था जो साइरस के राज्याभिषेक से नाराज हो।

(अ) महान् विजेता—साइरस एक वीर और साहसी पुरुष था। जिस समय वह गद्दी पर बैठा वह मीडिया राज्य के अधीन अन्सान प्रान्त का एक राजा था। लेकिन शीघ्र ही अपने भुजबल से वह मीडिया से अपने को स्वतन्त्र कर एकछत्र शासक बन बैठा। पूर्व में काबुल तथा वक्षु नदी की उत्तरी सीमा से लेकर पश्चिम में एशिया माइनर, लीडिया और यूनानी द्वीप-समूहों तक उसका आधिपत्य स्थापित हो गया। यद्यपि उसे इन राज्य को संगठित करन का अवसर नहीं मिला था। लेकिन डेरियस जैसे महान उत्तराधिकारी के हाथो उसका स्वप्न पूरा हो गया था। साइरस ने शत्रुओं के प्रति कभी अनावश्यक कठोरता नहीं दिखाई, न उन पर कोई अनाचार ही किया।

(ब) उदार और सहिष्णु शासक—वह स्वभाव से बहुत ही उदार और सहिष्णु शासक था। उसके विस्तृत साम्राज्य में अनेक धर्मों के मानने वाले लोग रहते थे। बेबिलोन विजय के पश्चात् उसने नेबू शद्रेजार द्वारा यहूदी बन्दियों को छोड़ दिया तथा उन्हें येरुसलम में अपने मन्दिर को फिर से बनाने की आज्ञा दे दी थी। उसने बेबिलोन पहुँचकर वहाँ के देवता बेलमर्दुक की उपासना की थी। सभी जातियों के प्रति भी उसने उदारता का ही व्यवहार किया तथा क्रोयसस को आत्म-हत्या से बचा कर उसने राज्य सभा में एक महत्वपूर्ण पद प्रदान किया था।

(स) महान कूटनीतिज्ञ—साइरस एक प्रतिभाशाली शासक था। वह साम, दाम, दण्ड, भेद सभी नीतियों का पंडित था। वह यह जानता था कि केवल शस्त्र के बल पर राज्य का विस्तार तो हो सकता है लेकिन उनमें स्थायित्व नहीं आ सकता। यही कारण था कि वह अपने शत्रुओं के साथ भी आत्मीयता का व्यवहार करता था मीडियन राज्य और लीडियन तथा बेबिलोन राज्य की विजय उसकी गतिशीलता, साहस, रण-कुशलता तथा व्यवहार-कुशलता के परिचायक है। यही कारण है कि उसकी महानता के विषय में डॉ० ग्रिशमैन ने लिखा है कि—

"Cyrus presented himself Babylonian people not as a conqueror but as a liberator the legitimate successor to the crown."

इसी प्रकार उसने यूनानियों से भी उदारतापूर्वक व्यवहार किया। उन्हें पराजित करके उनसे कर वसूल किया तथा उन्हें पारसीक सेना में भी भर्ती होना पड़ा। लेकिन साइरस ने उनकी आन्तरिक, राजनीतिक अथवा धार्मिक स्वाधीनता में किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं किया। यही कारण है कि साम्राज्य विस्तार करते हुए नरसंहार अथवा अधिकारों का अपहरण का त्याग कर साइरस एक महान विजेता सिद्ध हुआ।

(द) सौन्दर्य तथा कला-प्रेमी—साइरस एक वीर योद्धा न होकर कला एवं सौन्दर्य का भी प्रेमी था। उसे सुन्दर-सुन्दर वस्तुएँ बनवाने का काफी शौक था। इस रुचि से अभिप्रेरित होकर उसने येरूशलम के मन्दिर का पुनर्निर्माण करवाया था। इसके अतिरिक्त उसने एक नया नगर बसाया था जिसका नाम "सिरा" था। यह नगर स्थापत्य कला का आश्चर्यजनक नमूना था।

(य) महान् निर्माणकर्ता—साइरस महान् विजेता होने के साथ-साथ एक निर्माणकर्ता भी था। उसने अपने साम्राज्य की पूर्वी सीमा पर सिरा (Cyra) नामक नगर बसाया था। येरूसलम के टूटे हुए मन्दिर का पुनः निर्माण कराने के लिए लेबनान और सागौन से धन्नियाँ मँगाई थीं। इसने समाधि भी संगमरमर की बनवायी थी जिस पर लेख उत्कीर्ण कराया था।

उसके गुणों के ही कारण इतिहासकारों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। क्लिमेन्ट हुआर्ट अपनी पुस्तक "प्राचीन परसियन और ईरानी सभ्यता में लिखते हैं निश्चय ही साइरस का स्थान इतिहास में बहुत ऊँचा है, परन्तु प्रमाण के अभाव में उसे उच्चतम नहीं कहा जा सकता। केवल भाटों और चारणों की रचनाओं से ही उसे शार्लमैन (Charlemagno) के समान कहानी का नायक माना जाता है।"

इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि साइरस एक योग्य सेनानायक था और उसमें एक अच्छे शासक के सभी गुण विद्यमान थे।

केम्बीसस द्वितीय

साइरस के उपरान्त उसका पुत्र केम्बीसस द्वितीय सिंहासन पर बैठा साइरस के दो पुत्र थे। बड़ा केम्बीसस और दूसरा स्मर्दिस (Smerdis) था। अपनी मृत्यु से पहले ही साइरस ने अपने विशाल राज्य का स्वामी केम्बीसस को बनाया और स्मरदिस को प्रमुख प्रान्तों का शासक बनाया। परन्तु केम्बीसस अपने पिता की भाँति योग्य और दूरदर्शी नहीं था लेकिन बहादुर था।

सिंहासन पर आसीन होते ही उसने अपने पिता के अधूरे कार्य 'मिस्र की विजय' को पूरा किया। इस समय मिश्र में राजकीय दुर्बलता और कर्मण्यता का युग था। राजनीति में राजपुरोहित भाग लेने लगे थे तथा अन्धविश्वास का साम्राज्य छाया हुआ था। मिश्र के अधीनस्थ देश लीबिया, इथोपिया और असीरिया आदि पहले ही स्वतन्त्र हो चुके थे। ऐसी ही परिस्थिति में कैम्बीसस ने 525 ई० में स्वेज को पार करके मिश्र पर अधिकार कर लिया। परन्तु उसने वहाँ के निवासियों के साथ बहुत ही निर्दयतापूर्वक व्यवहार किया तथा देवी-देवताओं की मूर्तियों को नष्ट करवा दिया। वह अपने पिता की भाँति सहिष्णु नहीं था।

गद्दी पर बैठते ही उसने भाई स्मरदिस की भी गुप्त रूप से हत्या करवा दी। बाद में उसने पत्नी और पुत्र को तथा लीबिया के सम्राट क्रोयलस को जिसे साइरस ने सम्मानित किया था मरवा डाला। एक बार आवेश में आकर प्रमुख बारह पारसीक सामन्तों को भी जीवित दफना दिया था। इसी प्रकार के असयंत और असन्तुलित कार्य उसके पागलपन को सिद्ध करते हैं।

केम्बीसस शासन के प्रति उदासीन रहता था और जनता की सुख-सुविधा

की ओर ध्यान नहीं देता था। अतः उसके अत्याचारों और कुशासन से जनता ने विद्रोह कर दिया। 522 ई० पू० में केम्बीसस ने आत्महत्या कर ली।

उसकी मृत्यु के पश्चात सात अमीरों ने मिलकर दारायवौष (Darius) को गद्दी पर बैठाया। किंवन्दती है कि गौतम नामक एक व्यक्ति, जिसकी शक्ल स्मरदिस से मिलती थी, गद्दी पर बैठ गया। किन्तु बाद में नकली स्मरदिस मार डाला गया।

केम्बीसस का मूल्यांकन—केम्बीसस को विरासत में एक विशाल राज्य प्राप्त हुआ जिसे उसने मिश्र विजय करके और बढ़ाया था। उसके राज्य की सीमा पूर्व में सिर नदी से लगकर पश्चिम में नील नदी तक और दक्षिण में फारस की खाड़ी तक फैली थी। परन्तु वह योग्य शासक नहीं था वरन् शासन-प्रबन्ध से दूर रह कर विलास में डूबा रहता था। आज रोलिन्स ने उसके चरित्र के विषय में लिखा है, "वह अपने पिता की भाँति बहादुर, कार्य-कुशल और शक्तिशाली था। परन्तु उसमें अपने पिता की चतुराई, बुद्धिमानी और अवसर के अनुकूल कार्य करने की कमी थी।'

प्रश्न—"दारायवौष या डेरियस प्रथम हखाम्शी युग का महानतम सम्राट था, विवेचना कीजिये।

अथवा

दारा महान् की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा

'दारा महान' 'दारा महान' था। आप इससे कहाँ तक सहमत हैं? तर्कपूर्ण व्याख्या करें।

उत्तर—डेरियस की गणना हखाम्शी काल के महानतम सम्राटों में की जाती है। वह 521 ई० पू० में सिंहासनारूढ़ हुआ। डेरियस का महत्व जितना अधिक एक महान् विजेता के रूप में है उससे कहीं अधिक उसका महत्व एक कुशल शासन-प्रबन्धक के रूप में है। कहा जाता है कि कम्बूजीय द्वितीय की मृत्यु के बाद गौतम नामक व्यक्ति के हाथ शासन की बागडोर आ गयी परन्तु शीघ्र ही गौतम की हत्या कर दी गयी और अमीरों ने डेरियस को सम्राट बनाया।

डेरियस का युद्ध—जिस समय डेरिस सिंहासनारूढ़ हुआ उस समय मिश्र, लीडिया, सुसियाना मीडिया, असीरियन आदि में असन्तोष की भावना व्याप्त थी। मिश्र और लीडिया के स्थानीय शासकों ने डेरिस को अपना सम्राट मानने से इन्कार कर दिया। इसके साथ ही सुसियाना, बेबिलोनिया मीडिया और असीरिया में भी विद्रोह होने लगे। वीर डेरियस ने इन सभी विद्रोहों को कुचल दिया और अनेक व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया। कहा जाता है कि अकेले बेबिलोनिया में ही उसने 5000 व्यक्तियों को मरवा दिया। यही कारण है कि उसके विषय में एक विद्वान ने लिखा है, 'वह रक्त और लोहे का पुरुष था।'

512 ई० पू० में उसने थ्रेस और मेसीडोन पर विजय प्राप्त की और 510 ई० पू० में उसने भारत के पंजाब और सिंध प्रान्तों को अपने अधीन कर लिया। डेरियस रूस की ओर बढ़ा और फास्फोरस की खाड़ी तक पहुँच गया।

490 ई० पू० में डेरियस मरेथान के युद्ध में बुरी तरह पराजित हुआ। इस युद्ध में पराजय के पश्चात् डेरियस को वापस लौटना पड़ा। 486 ई० पू० में मिश्र में विद्रोह हुआ परन्तु इसको दबाने के पहले डेरियस की मृत्यु हो गई।

डेरियस की शासन-व्यवस्था – डेरियस का महत्व एक विजेता के रूप में उतना अधिक नहीं है जितना अधिक एक कुशल शासन-प्रबन्ध के रूप में। उसका साम्राज्य अत्यधिक विशाल था और फलस्वरूप उसने उसे 20 प्रान्तों में बाँटकर प्रत्येक प्रान्त में अपना एक गवर्नर नियुक्त कर दिया। गवर्नरों के कार्य की देख रेख के लिए वह गुप्तचरों की नियुक्ति भी करता था। डेरियस ने न्याय और कानून व्यवस्था को सुधारने का घोर प्रयास किया। उनका दरबार ही देश का सर्वोच्च न्यायालय था और उसके साथ ही देश भर में अनेक न्यायालयों की स्थापना की गई थी। अपराधियों को भी अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाता और उसको शासन काल में कानून वक्ता भी होते थे। जो न्यायाधीश अन्याय करता था उसकी खाल खिचवा ली जाती थी। राज-विद्रोह, स्त्री-अपहरण, हत्या, भूल से सम्राट के सिंहासन पर बैठना आदि जघन्य अपराध समझे जाते थे और इन अपराधों को करने वालों को मौत की सजा दी जाती थी और चमड़ी उधड़वा ली जाती थी। दो पत्थरों के बीच अपराधी को रखकर उसका सर पीस दिया जाता था। पत्थर मार-मार कर हत्या कर दी जाती थी।

सम्राट डेरियस ने सेना का भी अत्यन्त उत्तम प्रबन्ध किया था। सेना दो प्रकार की होती थी - एक प्रकार की सेना स्थायी सेना कहलाती थी और दूसरी प्रकार की सेना संकटकाल की सेना होती थी। स्थायी सेना में बसे हुए सभी जातियों के लोग होते थे। इस प्रकार के सैनिकों की संख्या लगभग 1,80,000 थी। इन सैनिकों में एकता का अभाव था। वाह्य आक्रमणों के समय राज्य की ओर से सैनिकों की अनिवार्य भर्ती होती थी। 25 वर्ष की अवस्था से, लेकर 50 वर्ष की अवस्था तक के सभी रण-निपुण सेना में भर्ती कर लिए जाते थे।

धनुष, भाला, तलवार, चाकू आदि सैनिकों के मुख्य अस्त्र थे। सैनिक कवच और लोहे की टोपियों का उपयोग भी करते थे। डेरियस ने शाही अंगरक्षकों का भी प्रबन्ध किया था। ये अंगरक्षक अत्यन्त वीर और साहसी होते थे, इनमें लगभग 2000 घुड़सवार सैनिक होते थे, जिनका कर्त्तव्य युद्ध के समय सम्राट की रक्षा करना होता था।

सम्राट डेरियस ने सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिए अपनी सेना में कवियों आदि को भी स्थान दिया था। सैनिकों के मनोरंजन के लिए रखैलें, वेश्याएँ और हिजड़े आदि भी युद्धभूमि में जाते थे।

डेरियस ने अपने समस्त साम्राज्य में गुप्तचरों का जाल बिछा दिया था। ये गुप्तचर राज्य की प्रत्येक गतिविधि की सूचना डेरियस को देते थे और डेरियस अपराधियों को कठोर दण्ड देता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि डेरियस ने एक सुदृढ़ शासन-व्यवस्था की नींव डाली थी। कालान्तर में अनेक सम्राट डेरियस की शासन-व्यवस्था से प्रभावित हुए। और उन्होंने उसकी शासन-व्यवस्था अपनाने का प्रयास किया।

डेरियस का धर्म—डेरियस जरथुस्ट्र धर्म का अनुयायी था और इस धर्म के प्रचार में उसने महान् योगदान दिया। यद्यपि वह स्वयं जरथुस्ट्र धर्म को मानता था परन्तु उसने किसी को भी इस धर्म को मानने के लिए बाध्य नहीं किया। अपराधियों के लिए डेरियस जितना अधिक कठोर था, धार्मिक व्यक्तियों के लिए उतना ही उदार। उसके शासनकाल में जरथुस्ट्र के एकेश्वरवाद को महत्व प्रदान किया गया और जनता के बीच अन्ध-विश्वासों को दूर कर दिया गया।

डेरियस का मूल्यांकन-डेरियस हखाम्शी युग के अत्यन्त प्रतिभाशाली सम्राटों में था। हखाम्शी युग में साइरस द्वितीय और डेरियस प्रथम यही दो ऐसे सम्राट हैं जिनका नाम ईरानी इतिहास में अन्यन्त गौरव के साथ लिया जाता है। डेरियस हमारे सम्मुख एक साम्राज्य विस्तारक के रूप में तो आता है, परन्तु साम्राज्य विस्तारक से अधिक इसका महत्व कुशल शासन-प्रबन्ध के रूप में है। वह एक बहुमुखी प्रतिभवान व्यक्ति था और उसने शासन में जैसे का तैसा सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की। विरोधियों के लिये वह अत्यधिक कठोर था और अपराधियों को कठोर दण्ड देता था, परन्तु साधारण जनता के लिए वह अत्यधिक उदार था। कला से उसे विशेष प्रेम था और उसे अनेक मकबरे बनवाने का श्रेय प्राप्त है। उसके विषय में जार्ज रॉलिन्सन ने लिखा है—फारस के राजाओं में वही बहुगुणी, कथा-साहित्य का प्रेमी आदि गुणों से युक्त था। यह पूर्वीय क्षितिज में चमकते हुए सितारे की भाँति है।

"of all the Persian princess he is the only one who can be called many died. He was organizer, general statement administrator, Persia would probably have sunk as rapidly as she rose, and would be known to us only as one of the many meter power which have shot athwast the horizon of the east" —Ralinson.

प्रश्न—'डेरियस की मृत्यु के बाद हखाम्सी साम्राज्य निरन्तर पतन की ओर बढ़ता गया।' विवेचना कीजिये और पतन के कारणों का उल्लेख कीजिये।

अथवा

हखाम्शी साम्राज्य के पतन के कारणों की संक्षेप में चर्चा करें।

डेरियस की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र क्षटार्ष गद्दी पर बैठा। वह बहुत सुन्दर और विलासी था। उसने 484 ई० पू० में मिस्र और 483 ई० पू० में बेबिलोन के विद्रोहों का दमन किया। इसके पश्चात वह अपने पिता डेरियस की मेरोथोन की पराजय का बदला लेने के लिए एक विशाल सेना लेकर चला। उसकी सेना में हेरोडोटस के मतानुसार 26 लाख 31 हजार सैनिक थे और इतनी ही संख्या में व्यापारी, इन्जीनियर, सेवक और वेश्याएँ तथा अन्य कर्मचारी थे। उनकी सेना में सभी जातियों का सम्मिश्रण था। उसने अयोनियनों, मिश्रियों और फिनशियों की सहायता से एक शक्तिशाली बेड़ा भी बनवाया था किन्तु विशाल सेना होने पर भी वह साल्मिज, प्लेटाई और माइकेल के युद्धों में पराजित हुआ। उसके अंग-रक्षक अर्तबेनुस ने 425 ई० पू० में उसकी हत्या कर दी।

क्षयार्ष की मृत्यु के पश्चात् उसके छोटे पुत्र अर्तक्जूवर्सीज ने 466 ई० पू०

से 425 ई० पू० तक राज्य किया उसका। राज्यकाल हत्याओं और प्रतिहत्याओं का युग माना जाता है। इस वंश में डेरियस द्वितीय के छोटे पुत्र कुरुष कनीयस में शासन की योग्यता थी। परन्तु उसके बड़े भाई ने उसे युद्ध में पराजित कर मरवा डाला। अर्तक्जमीज द्वितीय का यह कार्य ऐसा था जिसके फलस्वरूप ही हखाम्शी वंश का नाश हुआ। उसकी मृत्यु के पश्चात् 358 ई० पू० में अर्तक्जर्सीज तृतीय गद्दी पर बैठा और अपने गद्दी पर बैठते ही अपने सम्बन्धियों की हत्या करवा दी। अन्त में अनेक हत्याओं और प्रतिहत्याओं के उपरान्त उसी वंश के राजकुमार डेरियस द्वितीय ने 336 ई० पू० में गद्दी को हथिया लिया। उसे पराजित करके सिकन्दर ने हखाम्शी वंश का नाश किया। इस प्रकार हखाम्शी वंश जो बहुत समय तक ईरान में राज्य करता रहा, के साम्राज्य का अन्त सिकन्दर महान् के हाथों हुआ।

एक इतिहासकार ने ठीक ही लिखा है, 'साइरस और दारायवोषं ने फारस को बनाया, जेरक्सजिन ने उसे चलाया और उत्तराधिकारियों ने नष्ट कर दिया।"

"Cyrus and Daruis created Persia, Zerxes inherited it and his successors destroyed it."

हखाम्शी साम्राज्य की अवनति के कारण

(1) **विभिन्नता**—विशाल पारसीक साम्राज्य में विभिन्न राज्य, जाति, आकृति भाषा, आचार-विचार सभ्यता और संस्कृति के लोग थे। वे अपने को 'विदेशी' ही समझते थे और केन्द्र के दुर्बल होते ही अपनी स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्न करने लगे थे।

(2) **दुर्बल सम्राट**—इस विशाल राज्य के संगठन का आधार शस्त्र बल था। साइरस और डेरियस के बाद कोई इतना वीर शासक न हुआ जो इन्हें एक सूत्र में बाँधे रहता।

(3) **असंगठित सेना और अनुशासनहीनता**—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इन विभिन्न राज्यों और प्रदेशों के लोगों की युद्ध-प्रणाली भी भिन्न थी। आवश्यकता पड़ने पर अधिकांश सेना अनिवार्य भर्ती से आती थी। जिसमें अपनी सम्राट और देश के प्रति भक्ति और अनुशासन की कमी होती थी। यही कारण है कि यूनानियों की एक छोटी-सी संगठित सेना ने जसकसीज की विशाल ईरानी सेना को हरा दिया था और जब सिकन्दर महान की द्रुतगामी और संगठित सेना को दारायबोष तृतीय पर 3300 ई० पू० में आक्रमण किया तो उसकी सेना सामना न कर सकी।

(4) **उत्तराधिकार के लिए संघर्ष**—ज़रकसीज के पश्चात् उत्तराधिकार के लिये हत्या और षड्यन्त्रों का जाल बिछ गया। निरन्तर गृह-युद्धों में देश के वीर योद्धा भी समाप्त हो गये और शत्रुओं को पनपने का मौका मिल गया। जो सैनिक शेष बचे भी डरपोक और चापलूस थे जो केवल अपनी ही चिन्ता करते थे। दारायबोय की जो सेना सिकन्दर से लड़ने के लिये भेजी गयी थी वह केवल भीड़ थी, जिससे राष्ट्रीय गौरव की रक्षा करने की अपेक्षा अपने प्राणों की रक्षा की अधिक चिन्ता था।

(5) **अत्याचारी प्रान्तीय शासन**—केन्द्रीय शासकों के दुर्बल हो जाने से

प्रान्तीय शासकों पर से अंकुश हट गया और जनता के प्रति अत्याचार का व्यवहार करने लगे। बहुत से प्रान्तीय शासन स्वाधीन शासकों की भाँति रहने लगे और केन्द्र को कर तथा उपहार भेजते रहे। परिणाम यह हुआ कि जनता पारसीक साम्राज्य के विरुद्ध हो गयी।

(6) नैतिक पतन—पारसीक समाज जो नैतिकता का प्रतीक था, वहाँ के शासन अब कठोर जीवन को छोड़ सुरा सुन्दरी में डूब गये। इस समय फारस देश सबसे समृद्धिशाली देश था। अतः अब वहाँ विलासिता का साम्राज्य हो गया। इस प्रकार साम्राज्य की वागडोर ढीली पड़ गयी और पूरे साम्राज्य में विद्रोह की भावना और अव्यवस्था फैल गयी।

प्रश्न—हखाम्शी शासन-व्यवस्था का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

अथवा

हखाम्शी सम्राटों द्वारा विकसित शासन-व्यवस्था का वर्णन कीजिए।

हखाम्शी साम्राज्य की शासन-व्यवस्था बड़ी दृढ़ थी। इस साम्राज्य की स्थापना विश्व साम्राज्य की स्थापना का प्रत्यक्षीकरण था। हखाम्शी साम्राज्य के अन्तर्गत ईरान, वेबिलोनिया, मीडिया, फिनीशिया, फिलिस्तीन, सीरिया, मिस्र, एशिया, माइनर में भारतीय और यूनानी संस्कृति का निचोड़ देखने को मिलता है। केवल चीन को छोड़कर विश्व के समस्त सांस्कृतिक देशों का कुछ भाग इसमें अवश्य सम्मिलित था। यहाँ का शासन दो विभागों में विभक्त था—केन्द्रीय तथा प्रान्तीय।

(क) सम्राट—फारस के साम्राज्य का सबसे बड़ा पदाधिकारी सम्राट होता था। वह सर्वोच्च सत्ता-सम्पन्न होता था। उसका प्रत्येक शब्द कानून था। वह बिना किसी कारण के किसी को भी दण्ड दे सकता था और किसी को भी उच्च पद पर आसीन कर सकता था। उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने की शक्ति किसी में न थी। यदि वह किसी को मरवा डालता तो सबको उसकी प्रशंसा करनी पड़ती थी। उसके अधिकार बहुत विस्तृत थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक लोकमत का संगठित रूप देखने को नहीं मिला था। राजा ही देश का सर्वोच्च सेनापति और न्यायाधीश होता था। यद्यपि राजा सर्वोच्च सत्ता-सम्पन्न था परन्तु फिर भी उसके ऊपर कुछ अंकुश थे।

(1) उसे अपने विधि-निषेधों, कौटुम्बिक प्रथाओं और रीतियों का पालन करना पड़ता था।

(2) अपने द्वारा दिये गये वचनों का पालन उसे अवश्य करना पड़ता था। पारसीक सभ्यता को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया गया है।

(3) राजकीय कार्यों को पूर्ण करने में उसे राज्य सामन्तों से परामर्श लेना पड़ता था। यह सामन्त प्रमुख वंशों के होते थे। और देश में इनका बहुत अधिक मान होता था।

यदि किंचित गहनता से विचार किया जाय तो राजा पर लगाये गये इन अंकुशों का कोई विशेष महत्व न था। क्योंकि राजा जब चाहता सामन्तों के परामर्श को अस्वीकार कर सकता था। जितने भी अंकुश थे सब न्यायप्रिय राजाओं के लिए ही थे, अर्तईजर्क्सीज तृतीय जैसे अत्याचारी राजाओं के लिए कोई अंकुश नहीं था।

(ख) राज सभा—इस वंश के शासकों ने एक विशाल राज-सभा की आयोजना की थी। इस राज-सभा के आयोजन का मुख्य उद्देश्य शासन सम्बन्धी समस्याओं पर विचार-विमर्श करना था। राज-सभा का सबसे अधिक आकर्षक, व्यक्ति सम्राट ही होता था। उसकी वेश-भूषा बहुत सुन्दर होती थी। वह कुण्डल, बाजूबन्द, स्वर्ण-मेखला आदि आभूषणों से सुशोभित होता था। उसकी राज-सभा में सामन्तों, अंगरक्षकों, गुप्तचरों, प्रतिहारों तथा दूतों आदि को राजसभा की सदस्यता प्राप्त थी। इसी राज-सभा का खर्च राजकोष से दिया जाता था। परन्तु यह सभा कुछ विशेष अवसरों पर ही होती थी। राज-सभा के दो रूप थे—व्यावहारिक तथा आदर्श।

(ग) सामन्त समुदाय—फारस की शासन-व्यवस्था का आधार सामन्तवादी था। राज्य में तीन सामन्त वंश मुख्य थे। ये सामन्त राजा को परामर्श दिया करते थे। साधारण रूप से राजा इनका परामर्श मानता था परन्तु वह इनके परामर्श को मानने या न मानने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र था। इन सामन्तों को विशेषाधिकार प्रदान किये गये थे। वे बड़े-बड़े भूमि-खण्डों के स्वामी थे और छोटे राजाओं की भाँति अपने-अपने भूखण्ड का शासन करते थे। इन सामन्तों को कर लगाने और न्याय करने का अधिकार प्राप्त था। सामन्तों के पास अपनी सेनाएँ भी होती थीं।

(घ) सैन्य-व्यवस्था—फारसी साम्राज्य का मूलाधार उसकी सेना थी। सेना का केन्द्र-बिन्दु सम्राट था। राजा की रक्षा के लिए दो हजार पदाति, दो हजार घुड़सवार सैनिक थे। यह सब राजा के अंगरक्षक थे। इनके अतिरिक्त दस हजार मीडो और ईरानियों का 'अमर दल" था जो किसी भी समय युद्ध करने को तैयार रहता था। इस प्रकार फारस की सेना के दो दल थे—

(1) अंगरक्षक दल,
(2) अमर दल।

युद्ध के अवसर पर और आवश्यकता पड़ने पर राजा प्रान्तीय राजाओं की सेना भी बुला सकता था। इस अवसर पर राज्य के 15 वर्ष की आयु तक के प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्य सैनिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। यदि कोई इस नियम का उल्लंघन करता तो मृत्यु दण्ड का भागी होता था। डेरियस के राज्य-काल में एक वृद्ध ने अपने दो पुत्रों को सेना में भर्ती कर दिया परन्तु तीसरे पुत्र को सेना में भर्ती न करने के लिए डेरियस से प्रार्थना की, डेरियस ने तीनों को मौत के घाट उतरवा दिया। इसी प्रकार जरक्सीज के शासन-काल में अपने चार पुत्रों को सेना में भर्ती करने के पश्चात् एक वृद्ध ने अपने एक पुत्र को घर पर ही रहने दिया। फलस्वरूप उसके पुत्र के दो टुकड़े कटवा कर सैनिकों के मार्ग पर रखा दिया गया। इस प्रकार के युद्ध के अवसर पर राजा के लिए 20 लाख सैनिकों को जमा कर लेना मुश्किल कार्य नहीं था। यद्यपि हखाम्शी नरेशों के पास विशाल सेना थी परन्तु फिर भी वह अपेक्षाकृत सबल नहीं था। इसके दो कारण थे—

(i) कठोरता का व्यवहार—सेना में भर्ती करते समय बड़ी कठोरता का व्यवहार किया जाता था। इसके फलस्वरूप सैनिकों का उत्साह समाप्त हो जाता था।

(ii) अनुशासन की कमी—हखाम्शी सैनिकों में एकता और अनुशासन की

भावना नहीं थी। वह भारत से लेकर यूरोप तक के विस्तृत प्रदेशों में युद्ध करता था। सेना में भिन्न-भिन्न प्रान्तों और जातियों के सैनिक रहते थे। वे विभिन्न भाषाएँ बोलते थे और उनके रीति-रिवाज भी भिन्न-भिन्न थे। उनकी वेश-भूषा, अस्त्र-शस्त्र और लड़ने का ढंग भी अलग-अलग था। फलस्वरूप उनमें एकता और अनुशासन की भावना नहीं के बराबर थी। जैसे सेनापति या राजा के मरने की अफवाह फैलती थी, सारे सैनिक युद्धभूमि से भागने लगते थे। मेराथीन प्लेटाई-आइसस तथा अवेला के युद्धों में उनकी पराजय और यूनानियों की विजय का यही कारण था।

पारसीकों के पास केवल विशाल स्थल सेना ही नहीं थी बल्कि उनके पास विशाल जलपोत भी थे। यह जलपोत युद्ध और व्यापार दोनों ही के काम में आते थे। जलपोत का एक दोष यह था कि वे बहुत मन्द गति वाले थें यही कारण था कि सालमीज के युद्ध में यूनानियों के छोटे तथा तीव्रगामी जलपोतों का सामना न कर सके।

(ङ) कानून एवं न्याय—पारसी राजा को अपने राष्ट्रीय देवता अहुर-मज्दा का प्रतिनिधि मानते थे। अतएव उनकी आज्ञा देवाज्ञा मानी जाती थी। सम्राट सारे देश का सर्वोच्च न्यायाधीश द्वारा (Chief Justice) होता था। और उसका राज-दरबार ही उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) था। राज्य का प्रत्येक व्यक्ति दया पर निर्भर था।

राजा के नीचे एक न्यायालय और होता था जिसमें सात-न्यायाधीश होते थे। यह न्यायालय उच्च न्यायालय (High Court) था। विभिन्न राज्यों में स्थानीय न्यायालय होते थे। न्यायालयों को केवल दण्ड ही देने का अधिकार नहीं था बल्कि पुरस्कार भी देते थे। खास मौकों पर जमानत की प्रथा (Bail System) को भी लागू किया जाता था। न्यायालय न्याय के लिए पंच (Arbitrator) भी नियुक्त कर सकता था। उस युग में भी शपथ ग्रहण की प्रथमा प्रचलित थी। कुछ दिनों पश्चात् कानूनवक्ता (Speakers of Law) भी होने लग गये जिनका कार्य आधुनिक वकीलों जैसा होता था। पैरवी अधिकतर वकीलों द्वारा ही की जाती थी। गम्भीर अभियोगों के लिए जमानत की प्रथा न थी। प्रत्येक मुकदमें के निर्णय के लिए समय निर्धारित किया जाता था।

आरम्भ में न्यायाधीश का पद पुरोहित वर्ग को ही प्राप्त होता था, परन्तु कालान्तर में अन्य वर्गों के व्यक्तियों को भी इस पद पर आसीन किया गया, महिलायें भी न्यायाधीश बनायी जा सकती थीं।

फारस की न्याय-व्यवस्था बहुत अधिक कठोर थी। छोटे-छोटे अपराधों के लिए कोड़े लगवाये जाते थे। कभी-कभी जुर्माना भी किया जाता था। राजद्रोह सबसे भयंकर अपराध माना जाता था। राजद्रोहियों को पकड़कर उनके हाथों और सिर को एक लम्बे लट्ठे से बाँध कर राज्यसभा में प्रस्तुत कर उन्हें उन राज्यों में भेज दिया जाता था जहाँ उन्होंने द्रोह किया था और वहाँ उनकी हत्या कर दी जाती थी। हत्या और बलात्कार आदि के लिए भी मृत्युदण्ड मिलता था। कभी-कभी छोटे-छोटे अपराधों पर भी मृत्युदण्ड दिया जाता था। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है—"एक बार सिसैम्नोज नाम के एक न्यायाधीश ने जान-बूझकर गलत न्याय

किया । उसके इस कार्य के लिए केम्बीसस ने उसे मृत्युदण्ड दिया । मृत्यु के पश्चात् उसकी चमड़ी को उतरवाकर उसी कुर्सी पर जड़वा दिया जिस पर बैठकर उसने गलत न्याय किया था । उसके पुत्र को न्यायाधीश बनाया और उसे उसकी कुर्सी पर बैठाया गया जिस पर उसके पिता की चमड़ी थी ।"

मृत्यु-दण्ड देने की प्रथाएँ बड़ी कठोर थीं, मृत्यु-दण्ड इन विधियों से दिया जाता था—(1) चमड़ी उतरवा कर (2) विष देकर, (3) फाँसी देकर, (4) पत्थर मार कर, (5) पत्थरों के बीच दबाकर, (6) जमीन में गाड़कर, (7) गरम राख में अपराधी को फेंक कर, (8) अपराधी को नावों में बांधकर मुँह में दूध और शहद लपेट कर जिससे मक्खियाँ उसके मुँह पर भिन-भिनायें और उसके प्राण निकल जायें।

(घ) गुप्तचर विभाग – सम्राट का गुप्तचर विभाग बहुत अच्छा था । इन्हें सम्राट का कान और आँख माना जाता था । पूरे साम्राज्य में इनका जाल बिछा हुआ था। समय-समय पर ये निरीक्षक किसी भी प्रान्त के किसी भी आफिसर या क्षत्रपों के कार्यों की जाँच कर सकते थे । उन्हीं की जाँच के आधार पर सम्राट प्रान्तीय अधिकारियों को पुरस्कृत अथवा दण्डित कर सकते थे ।

(छ) कर-संग्रह—ईरानी सम्राटों ने अपने विशाल राज्य से बहुत अधिक धन एकत्र किया । विभिन्न प्रान्तों और क्षेत्रों में कर की मात्रा और बहुत भिन्न थी । बलूचिस्तान का कर सबसे कम 170 टैलेण्ट सोना और भारत का सबसे अधिक स्वर्ण जो 4,580 टैलेण्ट भार का होता था और पूरे साम्राज्य की आय का एक तिहाई भाग होता था । बेबिलोनिया से 100 टैलेण्ट सोना आता था । इसके अतिरिक्त प्रान्तों से क्षत्रप लोग कर भेज सकते थे जो कि गल्ला, गुलाम, भेड़, खच्चर, बछड़े; शिकारी कुत्ते और सोने चूरे के रूप में होता था । हबश (अफ्रीका से ही तीसरे वर्ष सोना, हाथी दाँत, आबनूस और पाँच बच्चे भेजे जाते थे । चालसीज से हर पाँचवें वर्ष 160 लड़के और 100 लड़कियाँ, अरब से 10) हण्डरवेट (पाँच टन) लोबान आता था । इसकी कुल वार्षिक आय 4,000,000 पौण्ड थी ।

सम्राट द्वारा के लिए कहा जाता है कि वह पहले से प्रान्तों की आय के विषय में मालूम कर लेता था । और वहाँ की पैदावार के अनुसार ही कर लगाता था । प्रान्तों से आने वाली आय का आधा भाग केन्द्र को भेज दिया जाता था तथा आधा भाग क्षत्रपों के खर्च के लिए रोक लिया जाता था । छोटे कर्मचारी जनता से अतिरिक्त धन वसूलते थे ।

(ज) ईरानी शासकों के पास अपार धन एकत्र था । दारा प्रथम ने एशिया माईनर के सिक्कों के आधार पर प्रथम बार सोने के सिक्के ढलवाये जिसमें एक ओर राजा जमीन पर घुटना टेक कर धनुष बाण चलाता हुआ दिखाया गया है । ईरानी कोष में कीमती धातु (सोना) ईंटों के रूप में रहती थीं । जब सिकन्दर ने यहाँ आक्रमण किया था तो उसे 4,00,000 टेलेण्ट सोना ईंटों की शक्ल में और 9000 सोने के सिक्के के रूप में मिलता था ।

दारा ने शुद्ध सोने के सिक्के ढलवाये जो "डेरिक" (Deric) कहलाये । इसके अतिरिक्त चाँदी के सिक्के ढलवाये गये जो "शेकिल" (Sickel) कहलाते थे । यह सोने के सिक्के का बीसवाँ भाग होता था ।

काँसे के सिक्के भी ढलवाये गये। इन सभी सिक्कों के अग्र भाग पर राजा की मूर्ति और पृष्ठ भाग पर एक गहरा चौकोर निशान होता था। इन सिक्कों पर कोई तिथि नहीं दी गई है; फिर भी राजा की मूर्ति और लिपि के आधार पर विद्वानों ने इसे 516 ई० पू० के आस-पास माना है।

(ऋ) प्रान्तीय शासन—हखाम्शी नरेशों ने अपनी शासन-व्यवस्था के लिए प्रान्तीय प्रणाली को अपनाया था। समस्त राज्य को प्रान्तों में विभाजित किया गया था। इन प्रान्तों की संख्या 20 से 28 तक होती थी। प्रत्येक प्रान्त के लिए कर निश्चित कर दिया गया था। यह कर प्रान्तों को केन्द्रीय सरकार को अवश्य ही देना होता था। मिस्र का कर 770 टेलेण्ट, वेबिलोनिया का 1000 टेलेण्ट और ब्लूचिस्तान का 170 टेलेण्ट स्वर्ण था।

प्रान्तों में विद्रोह न हो इसलिए हखाम्शी नरेशों ने कई उपाय अपनाये थे। उनमें कुछ का विवेचन किया जा रहा है—

(1) उन्होंने असीरियन सम्राटों की विजित जातियों पर अत्याचार की नीति का परित्याग कर दिया। उनसे प्रेम-व्यवहार कर उनकी सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयास किया। कुरुष द्वितीय लीडिया के क्रॉयसस को केवल आत्म-हत्या करने से ही नहीं बचाया बल्कि अपने राज्य में उसे उच्च पद पर आसीन भी किया। उसने बेबिलो-निया के निवासियों से भी बड़ी उदारता का व्यवहार किया और यहूदियों को अपने देश लौट जाने की अनुमति प्रदान की। यह साम्राज्य विस्तार और निर्माण का अपने ढंग का पहला कदम था।

(2) हखाम्श सम्राट डेरियल ने "भेद करो राज्य करो" (Divide and Rule) की नीति को अपनाया। उनके परवर्ती सम्राटों ने भी इसी नीति का अनुसरण किया। प्रत्येक राज्य में एक क्षत्रप, एक सेनापति एक सेक्रेटरी की नियुक्ति की जाती थी। क्षत्रप का कार्य कर वसूल करना, आवश्यकता के समय सैनिक सहायता देना और राज्य में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखना था। क्षत्रप के अधीन बहुत से कर्मचारी रहते थे परन्तु सेना की व्यवस्था करने वाला सेनापति और आय-व्यय का विवरण रखने वाला सेक्रेटरी उसके अधीन नहीं होता था। इस प्रकार उनकी शक्तियों को बाँट दिया गया था। जिससे वह एक होकर विद्रोह न कर सकें।

(3) विभिन्न अवसरों पर राज्यों में केन्द्र द्वारा निरीक्षकों को भेजा जाता था ये निरीक्षक सम्राट को उस प्रांत के प्रशासन सम्बन्धी समस्त सूचनाएँ देते थे। इसीलिए इनको सम्राट के नेत्र और कान कहा जाता था। ये प्रान्त में जाकर वहाँ सब प्रकार का निरीक्षण कर, प्रान्त के समस्त कार्यों की सूचना सम्राट को देते थे। उनकी सूचना के आधार पर सम्राट राज्य के कर्मचारियों को दण्ड और पुरस्कार देता था।

(4) हखाम्शी नरेशों ने विभिन्न प्रान्तों की राजधानी से जोड़ने वाली सड़क का निर्माण करवाया। इन सड़कों द्वारा प्रान्तों को सैनिक सहायता, रसद और संदेश आदि सुगमता से भेजे जाते थे। सड़कों पर स्थान-स्थान पर चौकियाँ भी बनवा दी गयी थीं। डेरियस ने नील नदी को लालसागर में मिलाकर जल-यातायात के लिए भी एक बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया।

इसमें किंचित मात्र भी संदेह नहीं कि हखाम्शी नरेशों की शासन व्यवस्था बड़ी सुदृढ़ थी। इतनी अच्छी शासन-व्यवस्था रोमन साम्राज्य की स्थापना के पहले कहीं भी देखने को नहीं मिलती। इनकी शासन-व्यवस्था से प्रभावित होकर प्रसिद्ध विद्वान जेम्स (James) ने लिखा है—"वे निर्दयी परन्तु बहादुर थे। अपनी व्यवस्था के पूर्ण ज्ञाता थे उनका शासन-प्रबन्ध अति सुदृढ़ था और इस प्रबन्ध का श्रेय डेरियस महान को है।"

"They were cruel but brave. They weres fully aware of the conditions of their time. Their administration was very sound and credit of this type of administration goes to Darius the Great."

—James.

प्रश्न—हखाम्शी युग में ईरान की सामाजिक और आर्थिक प्रगति का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

अथवा

प्राचीन फारस (ईरान) के समाज का वर्णन कीजिए।

सामाजिक दशा—ईरानी अधिकतर सुन्दर और बलिष्ठ होते थे। वे वस्त्रों और आभूषणों के बहुत अधिक शौकीन होते थे। पुरुष दाढ़ी और मूँछ रखते थे और कालान्तर में सिर में विग धारण करते थे। स्त्रियों और पुरुषों के वस्त्रों में विशेष अन्तर नहीं था। पारसीक समाज की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं—

(1) **कुटुम्ब प्रणाली**—समाज में कुटुम्ब को पवित्र माना जाता था। जिसके जितने अधिक पुत्र होते थे वह उतना ही भाग्यवान समझा जाता था। सम्राट भी अधिक पुत्र रखने वाले पिता को इनाम देता था। प्राण-हत्या अपराध समझा जाता था। विवाह का पवित्र सम्बन्ध माना जाता था और अविवाहित जीवन को अच्छा नहीं समझा जाता था। विवाह, माता-पिता द्वारा सम्पादित किये जाते थे और वयस्क विवाह की प्रथा को अपनाया गया था। कहीं-कहीं पर पिता-पुत्र, भाई-बहन आदि के पारस्परिक विवाह के उल्लेख भी मिलते हैं। समाज में बहु-विवाह और रखैल रखने की प्रथा भी प्रचलित थी, परन्तु धर्मानुसार एक विवाह को अच्छा समझा जाता था। इस जीवन को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया जाता था। घर बसाना और सुखमय जीवन व्यतीत करना जीवन का अत्यावश्यक अंग समझा जाता था। पारिवारिक जीवन बहुत सुखमय माना जाता था।

(2) **रहन-सहन एवं खान-पान**—पारसियों का रहन-सहन बहुत सुन्दर था। वे बड़े उदार, सच्चरित्र, स्पष्ट वक्ता और अतिथियों का सत्कार करने वाले थे। आचार-व्यवहार में बड़े कुशल थे। समान पद के पारसी जब एक-दूसरे से मिलते थे तो एक दूसरे को गले लगाते थे और ओठों का चुम्बन करते थे। बड़ों के प्रति श्रद्धा का भाव प्रकट किया जाता था। खुली सड़कों पर कोई चीज खाना, थूकना और नाक साफ करने को वे बुरा समझते थे। वे दिन में एक बार भोजन करते थे और किसी मादक वस्तु को ग्रहण नहीं करते थे। उनके यहाँ उपवास को कोई महत्व नहीं प्रदान किया जाता था।

उनका पहनावा बहुत सुन्दर था। उनमें शृंगार-प्रसाधन भी बहुत लोक-प्रिय थे और समाज एक विशिष्ट वर्ग-सौंदर्य विशेषज्ञ के रूप में दिखाई देने लगा था।

ये लोक स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान देते थे। इनका विश्वास था कि शरीर के स्वच्छ होने पर ही देवदूत उसमें प्रवेश करते हैं। प्रत्येक धार्मिक व सामाजिक उत्सव के अवसर पर वे नहाकर, नाखून और बालों को काटकर, सफेद कपड़े पहनकर इकट्ठा होते थे।

वे अपने घरों में जानवर पालते थे। जानवरों में कुत्तों को विशेष महत्व दिया गया था। अवेस्ता में कुत्ते को गरम खाना देने वाले को कठिन दण्ड दिया गया है। मैथुन-रत जोड़े को मारने वाले को 1400 कोड़े लगवाये जाते थे। कुत्ते के पश्चात बैल और गाय को विशेष महत्व प्राप्त था। घरों में चिड़ियाँ, मुर्गे और ऊदबिलाव पाले जाते थे।

(3) स्त्रियों की दशा – जोरेस्टर के समय में स्त्रियों की दशा बहुत अच्छी थी उनकी पर्याप्त स्वतन्त्रता थी। यद्यपि कुलीन-वर्ग में रखैल रखने की प्रथा थी और यह रखैलें युद्ध तक जाती थीं परन्तु वेश्यावृत्ति को मान्यता नहीं प्राप्त थी और इनकी संख्या कभी-कभी 360 तक पहुँच जाती थी। परन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि समाज में स्त्रियों का आदर नहीं था। परिवार में तो स्त्रियों का महत्व था ही साथ ही जरथुस्ट्र के समय पर्दे की प्रथा भी नहीं थी। स्त्रियाँ सम्पत्ति की मालकिन समझी जाती थीं और उन्हें पति की ओर से समस्त कार्य करने का अधिकार प्राप्त था।

डेरियस के समय में भी स्त्रियों की दशा सन्तोषजनक थी। उस समय तक स्त्रियों को पर्याप्त अधिकार प्राप्त था। उनको सार्वजनिक जीवन में आने की छूट बन्द कर दी गयी और पर्दे की प्रथा का इतनी कड़ाई से पालन किया जाने लगा कि स्त्रियों को अपने पिता और भाई से मिलने का अधिकार नहीं दिया गया। यही कारण है कि न तो पार्सी अभिलेखों में कहीं स्त्रियों का नाम मिलता है और न उनकी कला कृतियों में स्त्रियों के चित्र मिलते हैं।

स्त्री को माता के रूप में अधिक गौरव प्रदान किया गया था। जो माता जितने अधिक पुत्रों को जन्म देने वाली होती थी उसको उतना ही आदर मिलता था। कदाचित इसका कारण यह था कि इस जाति के निरन्तर संघर्ष और युद्ध करते रहने के कारण देश में अधिक पुरुषों की आवश्यकता हुई। पुत्रियों की अपेक्षा पुत्रों को जन्म देना अधिक उत्तम माना जाता था, किन्तु भ्रूण-हत्या को वे घोर पाप मानते थे। भ्रूण-हत्या करने वाले को मृत्यु-दण्ड तक दिया जा सकता था। 5 वर्ष की आयु तक बालक माता के संरक्षण में रहता था और उसके पश्चात् 7 वर्ष की आयु तक पिता के संरक्षण में इसके पश्चात पाठशाला में उसका विद्यार्थी जीवन प्रारम्भ होता था।

विधवा विवाह की प्रथा इस जाति में प्रचलित नहीं थी और विधवा स्त्री को समाज में अच्छे निगाह से नहीं देखा जाता था।

(4) आमोद-प्रमोद—उच्च वर्ग वालों का मुख्य मनोरंजन आखेट था। सम्राट एवं राज्य-कर्मचारियों के लिए युद्ध और शिकार दो ही कार्य मुख्य समझे

जाते थ। शिकार के लिए शिकारी कुत्ते भी होते थे। अक्सर बड़े-बड़े उद्यानों के लिए जानवर पाले जाते थे।

ताश, पाश, खेलना, चित्र खींचना और लकड़ी पर खुदाई का काम करना, भी मनोरंजन के साधन थे। उच्च वर्ग के लोगों के मनोरंजन का साधन रखैल भी थीं। सम्राट के राजमहल में तो ऐसी रखैलें होती थीं जिन्हें साल में एक ही वार सम्राट के साथ रात्रि-यापन करने का अवसर मिलता था।

अस्त्र-शस्त्र—आम पारसीक अपने साथ अस्त्र-शस्त्र रखता था उसके मुख्य अस्त्र-शस्त्र जालीदार ढाल, नीचे लटका हुआ तीरकश, छोटे बल्लम और नरकुल के बने तीर-धनुष थे। उसके दाहिने कन्धे पर छूरा लटकता था।

(5) धन्धे—अधिकांश लोग खेती करते थे। उसके धर्मग्रन्थों में कृषि कार्य को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया गया है। इसको ही सर्वोत्तम पेशा माना जाता था और ऐसा विश्वास था कि कृषि कार्य से देवता अहुर-मज्द प्रसन्न होते थे।

अधिकतर लोग अपनी स्वयं की खेती करते थे परन्तु मिली-जुली भी खेती करते थे। कृषि-योग्य भूमि अधिकतर जमींदारों के पास थी। वे किसान, मजदूरों से अपने खेत जुतवाते थे। इसके अतिरिक्त वे इस कार्य के लिए विदेशी गुलामों को भी रखते थे। किसानों का जमीन पर कोई अधिकार नहीं था। उनकी मेहनत का पुरस्कृत उपज के एक भाग के रूप में प्राप्त होता था। खेती के लिए लकड़ी के हलों का प्रयोग किया जाता था जिसमें धातु का फाल होता था।

खेती की मुख्य उपज गेहूँ और जौ थी इसके अतिरिक्त पारसी माँस का भी भक्षण करते थे। सिंचाई के लिए नहरों द्वारा दूर-दूर के पहाड़ों से पानी लाया जाता था। यद्यपि समाज में शराब को बुरा समझा जाता था परन्तु फिर भी गोष्ठियों में बैठकर आकण्ठ शराब पिया जाता था। ऐसा कहा जाता है कि सम्राट साइरस स्वयं अपनी सेना में शराब का वितरण करते थे।

आर्थिक दशा—यद्यपि ईरानियों ने बहुत अधिक युद्ध किये परन्तु उनकी आर्थिक दशा अच्छी थी। जैसे कि पहले बतलाया जा चुका है उसका मुख्य कार्य खेती था। वे गेहूँ और जौ की खेती करते थे। भूमि अधिकतर सामन्तों के हाथ में ही थी। उद्योग-धन्धे एवं व्यापार अधिकतर बेबिलोनियन, फिनीशियन और यहूदी आदि विदेशी जातियों के लिए छोड़ दिये गये थे।

पहले लेन-देन का कार्य, गल्ला एवं मवेशियों के द्वारा होता था। किसी भी प्रकार की मुद्रा का प्रयोग नहीं होता था। उन्होंने लीडिया से मुद्रा-प्रणाली का ज्ञान प्राप्त किया और डेरियस महान ने "डेरिक" नाम की मुद्राएँ चलाई। डेरिक" का अर्थ होता है—सोने का टुकड़ा। तीन हजार सोने की "डेरिक" सोने के एक टेलेन्ट के बराबर होती थी। सोने की डेरिक का मूल्य 25 रुपया और चाँदी की मुद्रा से 1·35 गुना अधिक था।

डेरियस के इन सिक्कों का प्रचलन सिन्धु नदी के प्रदेश में भी हुआ और इन्हीं के द्वारा आधुनिक मुद्रा-प्रणाली का आरम्भ माना जाता है।

इस वंश के राजाओं ने अपनी आर्थिक व्यवस्था को सुधारने के लिए अपने

अधीन राजाओं से कर भी लिये। कहा जाता है कि डेरियस महान का साम्राज्य आर्थिक दृष्टि से बहुत अच्छा था। उसके काल में राजकोष सदैव भरा रहा।

प्रश्न—प्राचीन काल में ईरान की सांस्कृतिक उन्नति का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

अथवा

पोर्सोपोलिस और पेसरगेड पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

अथवा

प्राचीन फारस की कला और संस्कृति की विवेचना कीजिए।

अति प्राचीन काल में ही ईरान ने सांस्कृतिक क्षेत्र में उन्नति की थी। यह उन्नति कला और धर्म के क्षेत्र में विशेष रूप से थी। साहित्य और विज्ञान में ईरानियों की विशेष अभिरुचि न थी। यहाँ हम उनकी सांस्कृतिक उन्नति पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं—

(1) शिक्षा—पारसीक समाज में युद्ध-शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया था। उनका जीवन लड़ने-मरने में बीतता था। अतएव पुस्तकों की शिक्षा की अपेक्षा उन्हें युद्ध की शिक्षा की अधिक आवश्यकता थी। युवकों को धनुष-बाण चलाने, घुड़सवारी करने, बर्छी, भाले का प्रयोग करने आदि की शिक्षा उचित रूप से दी जाती थी। वह विद्यार्थी जो धर्म एवं कानून आदि पढ़ते थे उनके लिए भी सैनिक शिक्षा अनिवार्य थी। इस प्रकार युद्ध की अधिकता के कारण शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था, इसलिए पारसियों में शिक्षा का प्रचार कम हुआ। शिक्षा अधिकतर उच्च वर्ग के लोगों तक ही सीमित थी। प्राचीन खातों में हस्ताक्षर न होकर मुहर होती थी। अतः उनके अनपढ़ होने का पता नहीं चलता। अधिकतर शिक्षा 14 वर्ष की आयु तक समाप्त कर दी जाती थी। सात वर्ष की आयु में बालक को पुरोहित के घर पढ़ने के लिए भेजा जाता था। यहाँ शारीरिक श्रम पर बहुत महत्व दिया जाता था। शिष्य को एत्रक या हविष्ट तथा गुरु को ऐत्रक पति कहा जाता था। गुरु पद के लिए वही योग्य माना जाता था जो सर्वगुण सम्पन्न हो।

शिक्षा अधिकतर धार्मिक ही होती थी। अवेस्ता और उस पर लिखे भाष्य, धर्म, कानून, चिकित्साशास्त्र के मुख्य विषय थे। बालकों को जेन्द अवेस्ता पूरी तरह से याद करा दी जाती थी। शिक्षा का स्वरूप मौखिक था। विद्यालय एकान्त में बनाये जाते थे।

अधिकतर व्यक्तियों को युद्ध-विद्या की ही शिक्षा दी जाती थी। जिनमें घुड़सवारी, बर्छी, भाले, धनुष-तीर आदि का प्रयोग करना सीखते थे। कुछ विद्यार्थियों को शासन-प्रबन्ध की भी शिक्षा दी जाती थी। साहित्य और कला की अपेक्षा युद्ध-विद्या और कठोरता से जीवन व्यतीत करने की शिक्षा दी जाती थी।

(2) साहित्य—युद्ध में संलग्न रहने के कारण पारसीकों में साहित्य का विकास हो सका। केवल सामन्त वर्ग ही शिक्षित था किन्तु साहित्य के विकास में उनका कोई योग नहीं था। कुछ कहानियों और गीतों की रचना की गयी जो धार्मिक होती थी।

(3) भाषा और लिपि—इस काल में तीन प्रकार की भाषाएँ प्रचलित थीं—

(क) प्राचीन फारसी;
(ख) बेबिलोनिया,
(ग) वंशनाइट अथवा सूसियन।

ईरानी श्रीमन्त प्राचीन का सहयोग करते थे जेष्ठ इन्हीं से श्रेष्ठ और पहलवी भाषाएँ उत्पन्न हुईं। जेन्द का प्रयोग "अवेस्ता" की रचना में किया गया और पहलवी से आधुनिक फारसी का जन्म हुआ। ईरानी के साथ बेबिलोनियन और सूसियन भाषाएँ भी बोली जाती थीं।

भाषाओं के लिखने में कीलाक्षर (Cuneifrom) लिपि का प्रयोग किया जाता था। यह लिपि बेबिलोनियन से प्राप्त हुई थी परन्तु जहाँ बेबिलोनियन की लिपि में 300 अक्षर थे, इस लिपि में उनकी संख्या केवल 36 कर दी गयी और धीरे-धीरे चित्राक्षर लिपि की जगह वर्णमाला का प्रयोग होने लगा। इस विधि के अलावा ईरानियों ने ऐरेमियन लिपि को भी अपनाया था।

(4) विज्ञान—वैज्ञानिक क्षेत्र में इन लोगों ने कोई विशेष उन्नति नहीं की। यह लोग आरम्भ में बहुत अधिक अन्धविश्वासी थे। उनका कहना था कि दानवीय शक्तियों के द्वारा 9999 रोग उत्पन्न होते थे जिनका निदान जन्तर-मन्तर के द्वारा ही किया जा सकता है और यह जन्तर-मन्तर पुरोहित ही कर सकता है। परन्तु धीरे-धीरे चिकित्सा-शास्त्र का विकास फारस में हुआ और आर्टक्जेरीज द्वितीय के समय तक चिकित्सा-शास्त्र का पर्याप्त विकास हो चुका था। इस युग तक निम्नलिखित सुधार हो चुके थे—

(1) डाक्टरों की फीस निर्धारित हो चुकी थी।

(2) नवीन डाक्टरों के लिए 2/3 वर्ष प्रशिक्षण करना आवश्यक था और वे विदेशियों की चिकित्सा नहीं कर सकते थे।

(3) समाज में चिकित्सक समूह संगठित हो चुके थे एवं

(4) पुरोहित वर्ग को बहुत मान्यता प्राप्त थी अतः उसकी चिकित्सा नि.शुल्क की जाती थी।

(5) धर्म—इस युग में तीन प्रकार के धर्म चल रहे थे। पहला हखाम्शी सम्राट जरथुस्ट्र धर्म के अनुयायी थे। जरथुस्ट्र धर्म की स्थापना दारा महान् से कई सदियों पहले हुई थी। इस काल में अहुरमज्दा देवता थे तथा अन्य देवताओं के अस्तित्व को भी स्वीकृत किया गया था। विशेषतः अमेशस्पेन्तों को पूर्ण देवताओं के रूप में पूजा जाने लगा था। इस काल में अहुर-मज्दा, मिथु और अनहित त्रिवेदों की पूजा लोकप्रिय हो गयी थी। मिथुवाद में सूर्य देवताओं का प्रमुख सहायक माना गया।

कालान्तर में सूर्यदेव की उपासना पर महत्व दिया गया और 25 दिसम्बर प्रमुख पर्व माना गया। इसी काल में अहुर-मज्दा की विरोधी शक्ति अग्रमैन्यु (अहिरमन) की कल्पना अधिक स्पष्ट हो गयी। इस प्रकार यह वर्ग एकेश्वरवादी

11

के साथ-साथ द्वैतवादी भी माना जाता है। इस काल में पारसी धर्म ने यहूदी धर्म को भी प्रभावित किया। जरथुस्ट्र (राजधर्म) के विषय में शिलालेखों से मालूम होता है।

दूसरा धर्म साधारण जनता का धर्म था। जिसके विषय में अधिक नहीं मालूम हो सका। तीसरा धर्म मार्गी (Mariehareisur) लोगों का था। यह धर्म एलम के लोगों का भी था। इस धर्म पर सेमेटिक धर्म का प्रभाव पड़ा था।

पारसीक कला

पारसीक कला की विशेषताएँ—पारसीक कला में विभिन्न कलाओं का सम्मिश्रण देखने को मिलता है। ईरानी काफी शौकीन और सुन्दर वस्तुओं को पसन्द करने वाले थे। उसके मकान बहुत सुन्दर होते थे। वे अपने शरीर पर बहुमूल्य वस्तुओं और आभूषणों को पहनते थे तथा अपने घरों को फर्नीचर, रंग, बिरंगे पर्दों, दरियों और तरह-तरह के बर्तनों से सजाते थे। वे फलदान का प्रयोग भी करते थे। आभूषणों का प्रयोग स्त्री और पुरुष दोनों ही करते थे। उनके आभूषण उनकी कला के सुन्दर नमूने हैं। मुख्य आभूषण थे—टायरा, कर्णफल और पायजेब-इन आभूषणों के निर्माण के लिये वह दूर देशों से नीलम और अन्य पत्थर मँगाते थे। सामन्त लोगों की अँगूठियाँ "टरकोप" पत्थर की बनी होती थी जो फारस की खानों से प्राप्त होता था। उनके आभूषणों पर कुछ सुन्दर और कुछ भद्दी आकृतियाँ प्राप्त होती हैं।

फ़ारस में विभिन्न सभ्यताओं का प्रभाव देखने को मिलता है। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(1) वहाँ की समाधियों पर लीडिया की समाधियों की छाप है।

(2) पर्सीपोलिस और सूसा के भवनों का आधार मिश्र की कला है।

(3) कृत्रिम चबूतरों और सीढ़ियों पर असीरिया की छाप है।

(4) ईंटों का प्रयोग मेसोपोटामिया की प्राचीन परम्परा की भाँति है।

(5) स्तम्भों के शीशे के नीचे के भाग का अलंकरण यूनानी प्रभाव से रहित नहीं कहा जा सकता।

अतः हम कह सकते हैं कि विभिन्न कलाओं का सम्मिश्रित रूप ही ईरान की राष्ट्रीय सम्पत्ति बन गया। पारसीक कला असाम्प्रदायिक कला है। वह कला धर्म के आश्रय में न पनप कर राजाओं के आश्रय में पनपी है। प्रसिद्ध विद्वान हुआर्ट ने इस कला का वर्णन करते हुए लिखा है। "पारसीक कला एक सम्मिश्रण पूर्ण (Composite) कला थी। उसका उद्भव राजा की कल्पना से हुआ था—उस कल्पना में, जिसने साम्राज्य की भाँति ही, असीरिया, मिश्र और एशियायी यूनान में प्राप्त अपने को प्रभावित करने वाली प्रत्येक कला शैली को एक कृत्रिम सबल एकता के सूत्र में संगठित कर दिया था। वह विशालता के अनुरागी सर्वशक्तिमान सम्राट की अशक्ति का प्रतिरूप थी।

ईरानी कला का सुन्दरतम रूप उसकी वास्तु-कला में निहित है। साइरस डेरियस महान् और अन्य हखाम्शी सम्राटों ने अनेक महलों और समाधियों का निर्माण करवाया जो अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है।

पेसरगेड (Pasargade)—ईरानी कला मे मन्दिरों आदि का निर्माण न होकर राजमहलों और समाधियों आदि का निर्माण हुआ था। पेसरगेड हखाम्शियों के प्रान्त में पैंसे (पारसीस) की राजधानी थी। यहाँ सम्राट साइरस की एक समाधि प्राप्त हुई थी। सात चबूतरों पर 140 फुट चौड़ा और 36 फुट ऊँचा एक भवन था जिसको छोटे-छोटे धान के टुकड़ों और पत्थर से बनाया गया। ऐसा विश्वास है कि यूनानी कारीगरों द्वारा निर्माण किया गया था। इसके सब ओर ऊँचे-ऊँचे खम्भे थे। जो अब नष्ट हो चुके हैं। फारस के लोग प्राचीन काल में इसे 'मशशद-ई-महार-सुलेमान' के नाम से पुकारते थे।

इसके अतिरिक्त 300 फुट लम्बा एक चबूतरा भी मिला जो पत्थर का बना हुआ है एवं जिसमें धातु के टुकड़ा का भी प्रयोग हुआ है। यह "तख्ते-सुलेमान" के नाम से पुकारा जाता है।

साइरस की समाधि के समीप एक स्तम्भ बना हुआ है जिस पर एक पंखा वाली मूर्ति बनी हुई है। यह "सम्राट साइरस की पंखा वाली मूर्ति" के नाम से प्रसिद्ध है। इस मूर्ति में विभिन्न कलाओं का सम्मिश्रण परिलक्षित होता है। मूर्ति के मुकुट और सिर पर मिश्र की कला, पोशाक और पंखों पर असीरियन कला और चेहरे पर भारतीय कला की नाप है। ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन इतिहासकारों द्वारा इस मूर्ति के नीचे "मैं कुरुष हखाम्शी राजा हूँ" लिखा हुआ पाया गया था। परन्तु अब वह मिट गया है।

पर्सीपोलस—पर्सीपोलस के खण्डहर भी ईरानी कला की सुन्दरता का गुणगान कर रहे है। यह साम्राज्य की राजधानी थी अतएव इस युग के सभी प्रमुख शासकों ने यहाँ अपने महलों का निर्माण कराया। इसमें सबसे प्रसिद्ध भवन, "तख्ते'-जम द" है जो चूने और पत्थर से बनाया गया था। इसके दोनों ओर सीढ़ियाँ बनी हैं जो इतनी चौड़ी है कि उन पर घुड़सवार आसानी से चल सकते थे। इसकी निर्माणकला पर भी असीरियन कला का प्रभाव प्रतीत होता है। सीढ़ियों को मिलने वाले स्थान पर अन्दर घुसने का रास्ता है जिसके दोनों ओर पंख वाले बैलों की मूर्तियाँ बनी हैं। बैलों के सिर मनुष्य जैसे हैं। इन बैलों पर तीन भाषाओं में लिखा है "मैं जेरिक्सीज हूँ, महान् ब्रह्माण्ड का सम्राट, डेरियस का पुत्र, सम्राट हखाम्शी।"

सम्राट जेरक्सीज के एक महल का क्षेत्रफल 150 वर्ग फुट है। इस महल में 62 खम्भे हैं। हाल के सभी खम्भे नीले संगमरमर या पत्थर के हुए हैं। इन खम्भों में से 13 खम्भे आज प्राप्त हो रहे हैं। खम्भों के नीचे के भाग पर उल्टे कमल और घण्टे की आकृति बनी है और शीशे पर दो बैलों की मूर्तियाँ हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत के मौर्य युगीन स्तम्भों पर यहाँ की कला की छाप है। इस कक्ष के पीछे एक और कक्ष है जिसके द्वार-मण्डप पर बने चित्र बहुत सजीव और सुन्दर हैं।

जेरक्सीज के महलों के पश्चात् सम्राट डेरियस के महल परिलक्षित होते हैं। जारक्सस की 'चेहिल-मीनार" के पूर्व में 100 खम्भों वाला एक विशाल हाल है। कहा जाता है कि जब सिकन्दर ने ईरान पर आक्रमण किया था उसने इस हाल में बैठकर भोजन किया था। हाल के उत्तर के एक पोर्टिको में एक मनुष्य की मूर्ति

बनी हुई हैं। जो ईरानी कला का निश्चित रूप हमारे सामने रखती है। यहाँ पर डेरियस महान् की मूर्ति मिली है जिसमें उसे सिंहासन पर बैठा हुआ दिखाया गया है।

सूसा और एकबटना—हखाम्शी राजाओं ने एकबटना में जो महल बनवाये थे वे काठ के बने हुए थे। अतः पूर्णरूप रूप से वे विलुप्त हो गये हैं। सूसा सम्राट जारक्सस द्वितीय ने जो महल बनवाये उनके अवशेष अब भी प्राप्त होते हैं। सूसा का सम्राट जारक्सस का महल सुन्दर था। इस महल में दो चित्र बने हुए थे। जिनमें पहला चित्र बहुत प्रसिद्ध है। यह चित्र 5 फुट ऊँचा है जिसमें सम्राट के अमर सैनिकों को चित्रित किया गया है। यह सैनिक दरबारियों के रूप में एक कतार में खड़े हुए चित्रित किये गये थे। दूसरा चित्र "Firez of the Achers" भी अति सुन्दर है। इस चित्र में शिकार के लिये तैयार सिंहों का चित्रण किया गया है। दोनों ही चित्र पेरिस संग्रहालय में अब भी देखे जा सकते हैं।

मकबरे—डेरियस महान् और उसके उत्तराधिकारियों ने पर्वतों को काटकर अनेक मकबरे बनवाये। इन मकबरों में कुरुष द्वितीय और डेरियस महान् द्वारा बनवाये हुए मकबरे अधिक प्रसिद्ध हैं। डेरियस महान का मकबरा 60 फुट लम्बा और 20 फुट चौड़ा है। इस मकबरे में एक सिंहासन है जिस पर डेरियस महान् धनुष-बाण लिये बैठा है। वह अपना बायाँ हाथ अहुर-मज्दा के नमस्कार के लिए ऊपर उठाये हैं। इन मकबरों की कला में मिश्र की कला की छाप स्पष्ट प्रतीत होती है।

मुहरों की खुदाई (Glyptic Art)—इस कला में भी पारसी अधिक पटु थे। इस युग में तीन मुहरों का प्रयोग बहुत अधिक होता था आज भी उनकी कला ज्यों की त्यों बनी है। ईरान की बनी हुई मुहरें आज भी बहुत सुन्दर मानी जाती हैं।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि सोने के आभूषण बनवाने का शौक भी हखाम्शी सम्राटों को था। इन आभूषणों में नीलम का भी प्रयोग होता था। इस कला के कुछ नमूने प्राप्त हुए हैं। जिनमें से मुख्य है। पारसी रथ का एक नमूना 'चाँदी का एक चक्र और का एक पात्र' चाँदी का चक्र तो देखते ही बनता है। इस चक्र पर सोने की पत्तर चढ़ी हुई है और उसके चारों किनारों पर शिकारियों के चित्र बने हुए हैं। सोने के पात्र की मूठ बहुत सुन्दर है और उस पर शेर का मस्तक अंकित किया गया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हखाम्शी सम्राटों का युग ईरानी कला के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण युग था।

12

शुंग वंश के शासन में चीन की सभ्यता
(Chinese Civilization during the Shung Dynasty)

प्रश्न—शुंग-काल में चीन की सांस्कृतिक उन्नति पर प्रकाश डालिए।

अथवा

चीन के शुंग काल पर संक्षिप्त परिचय दीजिए।

अथवा

चीन के सांस्कृतिक विकास में शुंग काल का क्या महत्व है ?

अथवा

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये—

(अ) चू-सी

(ब) नियोकन्फ्यूशियन मत।

संसार के अति प्राचीन सभ्य देशों में चीन का विशेष स्थान है। इतिहासकारों ने यह सिद्ध कर दिया है कि चीन की सभ्यता सुमेरियन, मिश्री और भारतीय सभ्यताओं के बराबर प्राचीन नहीं है, किन्तु विश्व की सभ्यताओं में चीन को विशिष्टता प्राप्त है। ट्रीट ने चीन के राजनीतिक इतिहास को तीन भागों में विभाजित किया है—

(1) 2852 ई० पू० से लेकर 206 ई० पू० तक (साम्राज्य विस्तार का युग)।

(2) 206 ई० पू० से लेकर 1644 तक (तातारेंज से संघर्ष का काल)

(3) 1644 से आधुनिक काल तक (योरोपीय जातियों से सामंजस्य का युग)

साम्राज्य विस्तार के युग में चीन का पर्याप्त सांस्कृतिक विकास हुआ। साम्राज्य विस्तार के युग के बाद 206 ई० के पूर्व में चीन में हन वंश के शासन की स्थापना हुई। 220 ई० तक वहाँ हन वंश का शासन रहा। इसके बाद प्राचीन चीन के इतिहास में तंग काल का अपना योगदान है। इस युग में चीन का सर्वांगीण विकास हुआ। तंग वंश के शासन के अवशेषों पर चीन में शुंग वंश का शासन स्थापित हुआ। यहाँ इस वंश के शासन के सांस्कृतिक उत्थान पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

तंग वंश के पतन के उपरान्त लगभग 50 वर्ष चीन में घोर अव्यवस्था और अराजकता रही। इस काल में समस्त साम्राज्य 5 भागों में विभक्त हो गया और

सभी राज्यों में दुरावस्था का वातावरण रहा। इतिहासकारों ने इसी कारण इस काल को राजनीतिक दुर्बलता का युग कहा है। जिस महान व्यक्ति ने चीन को इस दुरावस्था से उबारा, उसका नाम चाओ, कुअंग विन है। इसे ताइत्सु भी कहते हैं : ताइत्सु या ताई-सु ने शुंग वंश की नींव डाली। चीनी इतिहासकार इस युग में चीन के इतिहास को द्वितीय स्वर्ण युग कहते हैं क्योंकि इस युग में प्रशासन, सामाजिक व्यवस्था, संस्कृति, साहित्य और कला सभी क्षेत्रों में महान उन्नति हुई।

ताइत्सु का शासन—ताइत्सु ने 960 ई० से लेकर 976 ई० तक राज्य किया। इसका साम्राज्य तंग और हन वंश के सम्राटों की तुलना में अधिक बड़ा नहीं था परन्तु इसने शासन कार्यों में महत्वपूर्ण सुधार किये। शासकीय क्षेत्रों में कन्फ्यूशियस के अनुयायियों की नियुक्ति की गई और प्रतियोगिता परीक्षाओं को स्थान दिया गया। उसने ऐसे नियम बनाये जिससे अमीर लोग गरीबों का शोषण न कर सकें तथा देश समाजवाद की ओर अग्रसर हो सके। जिस वंश की इसने नींव डाली उस वंश का राज्य लगभग 200 तक चीन में रहा। इसे उत्तरी शुंग वंश कहते हैं।

वांग आन-शी—वांग आन-शी उत्तरी शुंग-वंश का सर्वश्रेष्ठ राजा माना जाता है। वह 1021 ई० में गद्दी पर बैठा। पहले यह सम्राट शेन-शुंग का मुख्य सलाहकार था। इसका व्यक्तित्व अत्यन्त महान और विचार उदार थे। इसने जनता में नव-ज्योति लाने के लिए कई महान कार्य किये। इसका विचार था कि राज्य को व्यापार, कृषि और उद्योगों को स्वयं करना चाहिए जिससे श्रमिकों की उन्नति हो सके और धन कुबेर उनका शोषण न कर सके। इसी के कारण शुंग युग महान युग कहा गया है।

उत्तर शुंग-काल का अन्त—उत्तर शुंग काल का अन्त 1122 ई० में तातारों के आक्रमण के कारण हुआ। इस वंश का एक राजकुमार भाग कर दक्षिण चला गया जहाँ उसने दक्षिण शुंग वंश की नींव डाली और लीन यान को (वर्तमान हांगचाऊ) अपनी राजधानी बनाया। इसके चीनी सेनापति यू यून वेन ने सर्वप्रथम तातारों के विरुद्ध युद्ध में बारूद का प्रयोग किया।

दक्षिणी शुंग वंश का अन्त 1279 ई० में हुआ। इस काल का अन्तिम सम्राट हुई शुंग था जिसने राजधानी में एक कला की संस्था की स्थापना की थी। बर्बर-तातार जातियों के नेता द्वारा कैद हो जाने पर सम्राट हुई शुंग का अन्तिम काल कारागार में ही बीता। सम्राट के पतन के उपरान्त उसकी राजधानी पीयेन लियाग में यद्यपि विकास कार्य रुक गया परन्तु लीन यान में लगातार विकास कार्य होता रहा। शुंग सम्राटों के युग में चीनी सभ्यता और संस्कृति में जिन दिशाओं में उन्नति हुई उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

शासन सुधार

शुंग काल में शासन सम्बन्धी निम्नलिखित सुधार हुये। लाटुरेट के अनुसार सुधार के निम्नलिखित अंग थे—

(1) **बजट निर्माण**—राज्य की भलाई के लिए यह निश्चय किया गया कि

बजट बनाने के लिये एक आयोग हो जिससे वार्षिक व्यय में अधिक से अधिक बचत हो सके।

(2) कृषि और मजदूरों का सुधार—पहले खेती करने के लिये किसानों की नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती थी। सम्राट वाग ने इस प्रथा को बन्द किया और महाजनों के चंगुल से किसानों को बचाकर राज्य की ओर से कम सूद पर रुपया देना आरम्भ किया। कृषि के लिये बीज और औजार भी दिये जाते थे। जिनका मूल्य उपज बेचने के उपरान्त किसान चुका देते थे। बाढ़ नियन्त्रण के लिये भी कई योजनायें तैयार की गईं। मूल्य नियन्त्रण के लिये प्रत्येक जिले में आयोग बनाये गये जिससे जनता को विशेष लाभ पहुँचा। भूमि को बराबर हिस्सों में विभाजित किया जाता था। सम्पत्ति कर की व्यवस्था इसी युग में हुई।

(3) सेना में पुनर्गठन—सिपाही और साधारण, दो भागों में सेना का विभाजन किया गया। देश की सुरक्षा का भार सिपाहियों पर और शान्ति व्यवस्था का भार साधारण व्यक्तियों पर रक्खा गया। आवश्यकता पड़ने पर बड़े परिवारों के व्यक्ति की नियुक्ति सैनिक कार्य के लिये की जा सकती थी। घोड़ों की सेना को दृढ़ बनाने के लिये कई नवीन योजनायें बनाई गईं।

(4) राजकीय परीक्षायें—राजकीय परीक्षाओं में प्राचीन-ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक किया गया।

(5) व्यापार का राष्ट्रीयकरण—सरकार ने व्यापारों को अपने हाथ में ले लिया। उपज खरीद ली जाती थी जिसमें से कुछ अंश स्थानीय प्रयोग के लिये अलग कर दिया जाता और बाकी उपज विभिन्न क्षेत्रों को भेज दी जाती थी।

(6) पेन्शन—वृद्धों, गरीबों और बेकार व्यक्तियों के लिये सरकार द्वारा पेन्शन दी जाती थी।

शिक्षा सम्बन्धी सुधार

उत्तरी शुंग काल में शिक्षा और परीक्षा के प्रबन्ध में महान परिवर्तन किये गये। शिक्षा का ध्येय यह था कि बालक वास्तविक घटनाओं की जानकारी प्राप्त कर सके। केवल शब्दाडम्बर को मान्यता न दे। कन्फ्यूशियन के सिद्धान्तों का अधिक से अधिक प्रयोग व्यक्ति अपने जीवन में करे इस ओर भी विशेष ध्यान दिया गया। बालकों को प्रारम्भिक इतिहास, भूगोल, और अर्थशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी, परन्तु परीक्षाओं में इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाते थे जिनसे कंठाग्र करने की प्रथा को समाप्त किया जा सके।

व्यापार-नीति में सुधार

शुंग-काल में विदेशों के साथ व्यापार में विशेष उन्नति हुई। शायद इसके पूर्व कभी इतनी नहीं हुई थी। इस उन्नति का पहला कारण तो यह था कि चीन में जहाजों के निर्माण की कला पहले से अधिक विकसित हो गई थी। दूसरा कारण यह था कि चीनी नागरिकों ने सुदूर समुद्र में दिशाओं का पता लगाने के लिए एक विशेष प्रकार के यन्त्र की खोज कर ली थी। व्यापार में विकास होने के कारण चीन के बन्दरगाहों की मान्यता बढ़ गई। सबसे पहले दक्षिण पूर्व तथा भारत जाने वाले

समुद्री मार्गों पर चीन का अधिकार स्थापित हुआ। केन्टन और चुंगचाऊ के बन्दरगाहों पर आयात और निर्यात काफी मात्रा में होता था। इसी कारण व्यापार को नियन्त्रित करने के लिए राज्य की ओर से पदाधिकारी नियुक्त किये गये और कुछ वस्तुओं पर राज्य का विशेषाधिकार घोषित किया गया। राजकीय वस्तुओं की बिक्री वही व्यापारी कर सकते थे जिनको राज्य की ओर से मान्यता प्राप्त की। शुंग सम्राटों ने विदेशों से आने वाले व्यापारियों को भी बहुत सी सुविधायें दी थीं। जो विदेशी व्यापारी चीन के बन्दरगाहों में रहते थे उनके निजी झगड़ों को निपटाने के लिए उनके देश के ही कानून लगाये जाते थे। अधिकतर अरब वाले चीन से अधिक व्यापार करते थे। कुछ अरब के सौदागर चीन में ही बस गये थे और महिलाओं से भी विवाह कर लिया था। विदेश से आये हुए व्यापारियों में यहूदियों की भी यथेष्ट संख्या थी। शुंग सम्राटों ने विदेशों में अपने राजदूत भेजकर व्यापारियों को चीन आने का निमन्त्रण दिया था।

जापान और चीन में भी काफी मात्रा में व्यापार होता था। जैन सम्प्रदाय के जापानी अपने मत के केन्द्रों के दर्शन करने के लिए चीन आया करते थे। धार्मिक और सांस्कृतिक कारणों से भी चीन और जापान का घना सम्बन्ध था। सुमात्रा, जावा, एशिया माइनर और चम्पा आदि देशों ने व्यापारिक सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए चीन में दूत-मण्डल भेजे थे। चीनी व्यापारी मिश्र, रोम, सिसली और यूनान आदि सुदूर देशों में जाते थे जिसके कारण उन्हें भूगोल का अच्छा ज्ञान हो गया था। चीन से निर्यात होने वाली वस्तुयें प्रायः शीशा, सोना, चीनी, मिट्टी के बर्तन, चाँदी आदि थे। पर्याप्त संख्या में चीनी व्यापारियों के बाहर जाने के कारण चीनी मुद्रायें भी निर्यात होती रहीं। यही कारण है कि जंजीबार, सिंगापुर आदि सुदूर देशों में चीनी मुद्रायें पड़ी हुई हैं। मुद्राओं के निर्यात को रोकने के लिए चीन ने आमोद-प्रमोद की सामग्री पर कर बढ़ा दिया था। शुंग नरेशों के ही काल में चीन में नोटों का भी चलन आरम्भ हो गया था। चाय का प्रयोग और बहुतांश में अफीम का प्रयोग भी शुंग काल की देन है।

साहित्य

शुंग काल में कई प्रकार के ग्रन्थों की रचना हुई। चीन का सम्पूर्ण इतिहास, तुंग-तिह नामक ग्रन्थ की रचना, ऐतिहासिक व्यक्तियों के जीवन चरित्र का वर्णन और बहुत से प्राचीन ग्रन्थों का नवीन संस्करण इस युग में हुआ। प्राचीन लेखकों पर भी कई आलोचनात्मक ग्रन्थ इस युग में लिखे गये। विश्व कोष की रचना का कार्य भी इसी युग में आरम्भ हुआ। गद्य साहित्य का तो जन्म ही शुंग युग में माना जाता है। बहुत से विद्वान कहते हैं कि शुंग काल के ग्रन्थों में विशेष कर गद्य ग्रन्थों में बहुत सी अशुद्धियाँ हैं। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि इन ग्रन्थों में विलक्षण इतिहास सम्बन्धी सामग्री छिपी हुई है। इस समय का काव्य प्राचीनता की बेड़ियों से जकड़ा हुआ है। परन्तु काव्य में विशेष प्रतिभा और आन्तरिक भावनाओं का समावेश दृष्टिगत होता है। फूलों और फलों की विभिन्न जातियों पर भी कितने ही वैज्ञानिकों ने लेख लिखे हैं।

कला

शुंग युग में कला के क्षेत्र में भी काफी उन्नति हुई क्योंकि कला को कुछ राजकीय संरक्षण भी प्राप्त था। हुइ सुअंग नामक सम्राट ने चित्रकला और सुलेख कला की शिक्षा के लिए पाठशालायें खोल रक्खी थीं। इस वंश के अन्य सम्राटों ने भी कला के विकास की परम्परा को अपनाया। शाओ युंग (Shao Youug) को तो अपने देश और देश की कला पर इतना गर्व था कि उसने कहा था—मैं सुखी हूँ क्योंकि मैं मनुष्य हूँ पशु नहीं, पुरुष हूँ स्त्री नहीं, चीनी हूँ। असभ्य नहीं और संसार के महान आश्चर्यजनक नगर लियोग में रहता हूँ।

"I am happy because I am a human and not an animal a male, and not a female; chinese and not a barbarin; and because i live in Loyang, the most wonderful city in all the world."

"वास्तुकला के सृजन में चीनी मिट्टी का प्रयोग बहुत अधिक होता था। बौद्ध धर्म से सम्बन्धित होने के कारण इस युग में मूर्तिकला की सन्तोषजनक उन्नति नहीं हुई। परन्तु चित्रकारी के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। चित्रकारों द्वारा प्रस्तुत वनस्थलियों और प्राकृतिक स्थानों के चित्र सफलतापूर्वक बनाये गये हैं। पशु-पक्षियों और फूल-पत्तियों के चित्र भी अत्यन्त सुन्दर प्राप्त हुये हैं। इस सम्बन्ध में लाटुरेट ने लिखा है—"शुंग लोगों के समान चित्रकला का शायद कोई दृश्य संसार में दृष्टि-गोचर नहीं हुआ है।"

"Probably no landscape painting equal to the Sung had ever appeard anywhere in the world." — Latourette.

चित्रकारी में प्राय: एक ही रंग का प्रयोग होता था। कई प्रसिद्ध चित्रकार इस समय चीन में थे। इनमें से कुछ का वर्णन किया जा रहा है—

(1) कुओ धुंश – इसकी ख्याति पर्वतों के दृश्य चित्रण करने में थी।

(2) कुओ सी—इसने चित्रकला के बारे में एक ग्रन्थ लिखा था। उसके द्वारा की हुई चित्रकारी के अंश मन्दिरों और राजमहलों की दीवारों पर मिलते थे।

(3) मिलेई—इसने चित्रकला की नई पद्धति का रूप स्पष्ट किया और अपने विषय में समकालीन कलाकारों के मध्य उसका सर्वश्रेष्ठ स्थान था।

(4) सिया कुइ—इसने भी समुद्र से सम्बन्ध रखने वाले जैसे ज्वारभाटे आदि के चित्र बनाये हैं।

(5) लि लुंग मियेने—चित्रकार होने के अतिरिक्त यह एक सफल कवि और गद्यकार भी था। इसने चित्रकला में बहुत ख्याति प्राप्त की।

वास्तुकला के क्षेत्र में इस युग की काफी उन्नति हुई। कहा जाता है कि 1103 ई० में इस कला पर आठ सुन्दर ग्रन्थ लिखे गये परन्तु इनमें वर्णित नमूने काठ के बने होने के कारण नष्ट हो गये।

विभिन्न धातुओं की कला इस युग में प्रचलित थी ऐसा कहा जाता है कि इस युग में लाख के बने हुए खिलौना आदि भारत और अरब देशों को भेजे जाते थे। जेड पत्थर के द्वारा भी इस युग में कई चीजों का निर्माण किया गया है। शुंग

काल में कांसे के बड़े-बड़े बर्तन भी बनाये गये। इनमें शराब के बर्तन और कढ़ाव मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त कांसे के हथियार, आइने, ढोलक और अन्य सुन्दर वस्तुयें बनायी गयीं। कांसे की बनी हुयी सुन्दरतम वस्तुओं में एक धूपदान है जो भैंस की तरह का बना हुआ है और जिस पर प्रसिद्ध दार्शनिक लाओत्से बैठा हुआ है।

धर्म एवं दर्शन

धर्म एवं दर्शन की दृष्टि से भी शुंग काल का विशेष महत्व है। चूंकि यह साहित्यिक और कलात्मक उन्नति का काल था, अतः इसमें धर्म एवं दर्शन की उन्नति होना स्वाभाविक था।

चीन में आरम्भ में ही कन्फ्यूशियस विचारधारा प्रचलित थी। जब महायान बौद्ध धर्म ने चीन में प्रवेश किया तो बहुत से चीनी बौद्ध धर्मानुयायी हो गये। शुंग का काल नियोकन्फ्यूशियन मत के प्रसार के लिये प्रसिद्ध है। वास्तव में यह धर्म ताओवाद और बौद्ध धर्म का सम्मिलित रूप था। इस मत का आरम्भ तंग काल में हो चुका था। शाओ यंग और चेग हाओ आदि दार्शनिक इस दिशा में पहले ही कदम उठा चुके थे। परन्तु इस मत को निश्चित रूप देने वाला चु सी नाम का एक शुंगकालीन व्यक्ति नहीं था।

चु-सी-चु-सी बौद्ध धर्म एवं कन्फयूशियस मत से प्रभावित था। उसने इन दोनों का समन्वय अपनी विलक्षण बुद्धि के द्वारा बड़ी सुगमता से किया। इसका जन्म 1130 ई० में हुआ। अपने आरम्भिक जीवन से ही यह धर्म एवं दर्शन में विशेष रुचि रखता था। चु-सी के धर्म की निम्नलिखित विशेषतायें थीं—

(1) चु सी बौद्धों की भाँति ध्यान में विश्वास करता था। निओकन्फयूशियस मत पर विश्वास करने वाले उसके चारों ओर एकत्रित रहते थे। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उसके धर्म ने भी बौद्धों के विहार जीवन को मान्यता प्रदान की थी।

(2) निओ-कन्फ्यूशियस मत के अनुयायी अचानक ही ज्ञान की प्राप्ति में विश्वास करते थे।

(3) इस मत के अनुयायियों का कहना था कि सम्पूर्ण प्रकृति को तर्क द्वारा ही समझा जा सकता है और यह कार्य तभी हो सकता है जब हम प्रकृति को सूक्ष्म रूप से देखने का प्रयास करें। इस मत के अनुयायी की सत्य प्राप्ति के लिए अध्ययन को विशेष महत्व देते थे।

(4) चु सी का मत था कि यह संसार ली और ची नामक दो तत्वों का बना हुआ है। ली भौतिक तत्व और ची आध्यात्मिक तत्व का द्योतक है।

(5) इस धर्म के मतानुयायियों के अनुसार ब्रह्म अनन्त एवं सर्वव्यापी है। चु सी ने उस ब्रह्म को ताई ची के नाम से पुकारा है। उसका कहना था कि ताई ची ने यिन और यंग दो तत्वों को बनाया है। यिन नारी तत्व है और युग पुरुष तत्व। इन तत्वों ने भी सृष्टि-रचना में मदद की है। इनके संयोग से आग, पृथ्वी, जल आदि बने हैं।

(6) इस मत के अनुयायी नैतिकता को विशेष महत्व देते थे।

(7) इस मत के अनुयायी विराग में विश्वास करते थे। इस दृष्टि से कन्फ-युशियस मत के विरोधी थे।

चू-सी के अतिरिक्त इस युग में एक और महान दार्शनिक हुआ जिसका नाम वाग-यांग-मींग था। यह महायान बौद्ध धर्म को मानने वाला था। इसका मत था कि आत्मचिंतन और आत्मज्ञान ही व्यक्ति के जीवन को सुधार सकता है। वह कहता था कि प्रकृति में कोई खराबी नहीं है। बुराई मनुष्य के मन में होती है और यदि मनुष्य अपना मन शुद्ध कर ले तो प्रकृति की सभी वस्तुयें शुद्ध प्रतीत होंगी। इन दोनों दार्शनिकों में चु-सी के विचारों का प्रभाव चीनी जनता पर अधिक पड़ा और उसके बहुत से अनुयायी हो गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शुंगकाल दर्शन, साहित्य, कला आदि समस्त दृष्टियों में एक युगान्तकारी काल था। चीनी इतिहासकारों ने इस काल की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस काल में चीना सभ्यता और संस्कृति का प्रसार सुदूर देशों में हुआ और एशिया की विभिन्न संस्कृतियों पर चीनी संस्कृति की छाप पड़ी।

●

13

हड़प्पा सभ्यता
(Harappa Civilization)

प्रश्न—हड़प्पा संस्कृति के निर्माता कौन थे। उनकी सभ्यता पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

सिन्धु घाटी की सभ्यता के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?

अथवा

हड़प्पा सभ्यता के नगर निर्माण और वास्तुकला का संक्षिप्त परिचय दीजिये और हड़प्पा सभ्यता और वैदिक सभ्यता के अन्तर को स्पष्ट कीजिये।

हड़प्पा सभ्यता संसार की प्राचीन और गौरवमयी सभ्यताओं में अपना अलग स्थान रखती है। इस सभ्यता को सिन्धु घाटी की सभ्यता के नाम से पुकारा जाता है। अब से लगभग 75 वर्ष पूर्व इस सभ्यता का हमें लेश मात्र भी ज्ञान न था और यह सभ्यता खण्डहरों में दबी हुई थी परन्तु पुरातत्ववेत्ताओं के अनवरत परिश्रम के फलस्वरूप उसका उद्धार हुआ। इस सभ्यता की खोज निकालन का श्रेय श्री राखलदास बनर्जी और राय बहादुर श्री दयाराम साहनी को है जिन्होंने 1921-22 ई० में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई करवाकर इस महत्वपूर्ण कार्य को

सम्पन्न किया। तत्पश्चात् सर जान मार्शल के निरीक्षण में, जो "आर्केलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया" के डाइरेक्टर जनरल थे, खुदाई का कार्य प्रारम्भ हुआ और इस खुदाई के फलस्वरूप ही हड़प्पा सभ्यता पर प्रकाश पड़ा।

सभ्यता के ज्ञान के साधन
(Sources of the Civilization)

हड़प्पा सभ्यता का ज्ञान हमें सिन्धु नदी की घाटी में की गई खुदाई से प्राप्त सामग्री के द्वारा होती है। जिन स्थानों पर खुदाई की गई थी, वह है—

(क) हड़प्पा—यह स्थान पश्चिमी पंजाब के मांटगोमरी जिले में हड़प्पा के नाम से जाना जाता है। यह लाहौर से 109 मील की दूरी पर स्थित था। प्राचीन काल में यह एक अत्यन्त भव्य नगर था। इसकी खुदाई में बहुत सी सामग्री प्राप्त हुई है। यह सामग्री भी सिन्धु घाटी की सभ्यता की जानकारी में बहुत अधिक सहायक सिद्ध हुई हुई है।

(ख) मोहनजोदड़ो—यह स्थान सिन्धु के लरकाना जिले में सिन्धु नदी तथा नर नहर के मध्य एक पतली पट्टी पर स्थित है। यह कराची से लगभग 200 मील दूर है। मोहनजोदड़ो का अर्थ होता है—"मुरदों की समाधि"। मोहनजोदड़ो को सिन्धु का नखलिस्तान कहा जाता है। इस नगर की खुदाई में पानी के तल से सात तहें प्राप्त होती हैं जिनसे यह अनुमान लगाया जाता है कि यह नगर सात बार बसाया गया है। इस स्थान पर अनेक ऐसी वस्तुयें प्राप्त हुई हैं जिनसे हड़प्पा सभ्यता के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है।

(ग) अन्य स्थान—हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी खुदाई की गई। इन स्थानों पर हड़प्पा की सभ्यता के विषय में जानकारी प्राप्त हुई है। कराची जिले में अमरी नामक स्थान पर अम्बाला सिन्धु में चैन्हुदड़ों और बिलोचिस्तान के कलात राज्य में नाल नामक स्थान में हुई खुदाई में भी हड़प्पा सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुये हैं।

हड़प्पा सभ्यता का काल
(Period of Harappa Civilization)

हड़प्पा सभ्यता के काल के विषय में पर्याप्त मतभेद हैं। विभिन्न इतिहासकार उसका समय 2500 ई० पू० से 5000 ई० पू० तक निश्चित करते हैं। सर जान मार्शल इसे 5000 वर्ष ई० पू० की सभ्यता मानते हैं। हरिदत्त वेदालंकार इसका समय 3000 वर्ष ई० पू० मानते हैं। डा० राधाकुमुद मुकर्जी और श्री अर्नेस्ट मैके इस सभ्यता का समय 3250 से 2750 ई० पू० ठहराते हैं।

हड़प्पा सभ्यता की विशेषतायें
(Features of Harappa Civilization)

हड़प्पा सभ्यता की निम्नलिखित विशेषतायें थीं—

नागरिक सभ्यता—विशाल नगरों से यह स्पष्ट है कि यह सभ्यता नगर प्रधान सभ्यता थी और इन नगरों का विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध था।

(2) समष्टिवादी सभ्यता—खुदाई में विशाल स्नानागारों तथा सभा भवनों के भग्नावशेष इस बात के द्योतक हैं कि उस काल के लोग सामूहिक जीवन व्यतीत करते थे। किसी भी राजा या राजमहल का कोई चिह्न नहीं मिलता है।

(3) कांस्यकालीन सभ्यता—कांस का प्रयोग इस काल में अधिक हुआ। अत: हम इसे कांस्यकालीन सभ्यता मान सकते हैं।

(4) शान्ति प्रधान सभ्यता—खुदाई में कहीं भी कवच, तलवार एवं अन्य युद्ध-सामग्री नहीं उपलब्ध हुई है। अत: यह प्रतीत होता है कि इस काल के लोग सामरिक प्रवृत्ति के न होकर शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करना अधिक पसन्द करते थे। भाला, कुल्हाड़ी, धनुषबाण आदि आखेट सामग्री उस काल के लोगों का आखेट के प्रति प्रेम ही प्रदर्शित करती है।

हड़प्पा के निवासी
(Citizens of Harappa Civilization)

(अ) आर्य—कुछ विद्वानों के मतानुसार यह आर्य जाति की सभ्यता है परन्तु जान मार्शल जैसे विद्वान ने इस बात का खंडन करते हुये कहा है कि हड़प्पा की सभ्यता आर्यों की सभ्यता से भिन्न है। अत: यह आर्य नहीं थे।

(ब) सुमेरियन—गार्डन चाइल्ड के अनुसार हड़प्पा सभ्यता के निवासी सुमेरियन थे परन्तु इसके समर्थन में कोई निश्चित प्रमाण न होने से यह बात भी ठीक नहीं प्रतीत होती।

(स) द्राविड़—राखालदास बनर्जी के अनुसार यहाँ के निवासी द्राविड़ जाति के थे। इनके मत के समर्थकों का कथन है कि एक समय ऐसा था जब द्रविड़ पंजाब सिन्ध, बलुचिस्तान तथा भारत के अन्य भागों में फैले हुये थे। भारत के पश्चिमी क्षेत्र में ब्राहुई भाषा बोली जाती थी, जो द्राविड़ भाषा से मिलती है। अत: भाषा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये लोग द्रविड़ थे। परन्तु सांस्कृतिक और शारीरिक वैषम्य होने के फलस्वरूप यह मत भी ठीक नहीं प्रतीत होता है।

(द) मिश्रित जाति—डा० गुहा तथा अन्य विद्वानों ने हड़प्पा से प्राप्त अधिकांश अस्थि पंजरों, मूर्तियों आदि के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि इस समय के लोग एक जाति के न होकर विभिन्न जातियों के थे। ऐसा प्रतीत होता है कि व्यापार, नौकरी तथा अन्य प्रलोभन से आकर्षित होकर विभिन्न जातियों के लोग इन नगरों में आकर बस गये थे। इन विद्वानों के अनुसार सिन्धु प्रदेश में अधिकतर भूमध्यसागरीय, प्रोटोअस्ट्रालायड, मंगोलियन तथा अल्पाइन जाति के लोग निवास करते थे। अल्पाइन और भूमध्यसागरीय जाति के लोग अधिक सभ्य और सुसंगत प्रतीत होते थे ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हीं जातियों ने हड़प्पा के निर्माण में भी योग दिया होगा। इस प्रकार हड़प्पा घाटी के निवासियों को मिश्रित जाति का कहना तर्कसंगत प्रतीत होता है और विभिन्न जातियों का यहाँ आना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है क्योंकि हड़प्पा व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। इस सम्बन्ध में मार्शल (Marshall) ने लिखा है :

"Place in Sind with harbours and coasts, it became the meeting ground of widely divergent types of humanity."

परन्तु वास्तविकता क्या है, यह तो अन्धकार के गर्त में है। श्री हरिदत्त वेदालंकार ठीक ही लिखते हैं :

"सिन्धु-सभ्यता एक उल्का तारे के भाँति प्रतीत होती है जो सहसा अज्ञात प्रदेश से प्रकट होकर कुछ समय के लिये खूब चमकता है। इसका उद्‌गम अनिश्चित है और अन्त के सम्बन्ध में यहाँ कल्पना है कि बाढ़ और आक्रान्ता इसके आकस्मिक अवसान के प्रधान कारण थे। यह निश्चित नहीं कि ये आक्रमणकारी आर्य थे या अन्य कोई जाति। वैदिक आर्यों से इसका क्या सम्बन्ध था, यह भी बड़ा जटिल प्रश्न है। मोहनजोदड़ो की लिपि पढ़े जाने के बाद ही इन समस्याओं का समाधान होगा।"

हड़प्पा सभ्यता के निर्माणकर्ता चाहे किसी भी जाति के रहे हों परन्तु इनमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं कि यह सभ्यता अत्यन्त उच्चकोटि की थी। श्री पद्मिनी सेन गुप्त ने स्पष्ट किया है:

"The race that dwelt in the Indus Valley therefore was a highly civilized and cultured people. Whatever they will continually be identified with the Dravidan and the race which was found in India when the Aryans came, for the time they inhabited the made happy and healthy homes for, themselves and organised a settled society with a sound administration."

नगर निर्माण विधि एवं वास्तुकला
(Town Planning and Architecture)

नगर योजना (Town Planning)—सिन्धु देश के नगर हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, चन्दहुदड़ो, मोहमजूदड़ो आदि थे। ये सभी नगर नदियों के तट पर स्थित थे। मोहनजोदड़ो सिन्धु नदी के तट पर था। अब भी यह नगर सिन्धु नदी से होता है कि सिन्धु नदी में दो बाढ़ अवश्य आई होगी।

विनाश के पश्चात जब भी मोहनजोदड़ो दुबारा बसाया गया तो पुराने ध्वंसावशेष के ऊपर ही उसका निर्माण हुआ। हड़प्पा जो आज रावी नदी से 6 मील दक्षिण की ओर बसा हुआ है, किसी समय रावी नदी के तट पर ही बसा था नदी में बाढ़ आने से नगर की रक्षा के निमित्त इसके पश्चिम में एक बांध बनाया गया था। पुरातत्ववेत्ताओं के असुसार ये सभी नगर नदी में बाढ़ आने के कारण ही नष्ट हो गये थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हड़प्पा की सभ्यता में सभी नगरों का निर्माण ध्वंसावशेषों पर हुआ था।

हड़प्पा की सभ्यता एक उच्च कोटि की सभ्यता थी। यहाँ की सड़कें यह सिद्ध करती हैं कि नगर-व्यवस्था अत्यन्त उच्च कोटि की थी। सड़कें पूर्व से पश्चिम की ओर उत्तर से दक्षिण की ओर जाती थीं। सड़कों की चौड़ाई भी काफी थी। मोहनजोदड़ो की सबसे मुख्य सड़क की चौड़ाई 33 फुट थी। यह नगर के बीच से

उत्तर से दक्षिण की ओर जाती थी। इससे भी चौड़ी एक सड़क इसको काटती हुई पश्चिम से पूर्व की ओर जाती थी। अन्य सड़कें 9 फुट से 12 फुट तक चौड़ी थीं। गलियाँ लगभग 4 फुट चौड़ी होती थीं। सड़कें कच्ची बनी हुई प्रतीत होती हैं। केवल उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाली सड़क थोड़ी बहुत पक्की प्रतीत होती है। सड़कें एक दूसरे को समकोण बनाती हुई काटती थीं।

सड़कों के किनारे नालियाँ होती थीं। घरों की नालियाँ बाहर जाकर सड़कों की नालियों से मिल जाती थीं। सडकों और नालियों की व्यवस्था का वर्णन करते हुये Gardan Childe ने लिखा है :

"Many are well-planned streets, and a magnificient system of drains, regularly cleared out, reflects the vigilance of some regular municipal government Its authority was strong enough to secure the observance of town-planning bye-laws and the maintenace of the approved lines of streets and lanes over several reconstructions rendered necessary by floods."

नालियों को ढंकने के लिये बड़ी ईंटों और पत्थरों का प्रयोग किया गया था। ये नालियाँ पक्की होती थीं। इनकी जुड़ाई के लिये मिट्टी, चूने तथा जिप्सम का प्रयोग किया जाता था। छोटी-छोटी नालियाँ बड़ी नालियों में मिल जाती थीं। इन नालियों में कूड़ा जमा हो जाता था। इस प्रकार यहाँ की सड़कों व नालियों की व्यवस्था अत्यन्त उच्च-कोटि की थी। सड़कों के किनारे कूड़ा-करकट एकत्र करने के लिये कुछ गड्ढे बने होते थे। इसके अतिरिक्त मिट्टी के पात्र और पीपे भी रखे होते थे, जिनमें कूड़ा-करकट इकट्ठा किया जाता था। इससे सड़कें गन्दगी नहीं हो पाती थीं।

वास्तुकला (Architecture)—नगर के प्रत्येक खण्ड में एक निश्चित योजना के अनुसार भवनों का निर्माण होता था। छोटे भवन की नाम 3×26 होती थी। इनमें 4 – 5 कमरे होते थे। छोटे भवनों की दुगुनी नाप वाले बड़े-बड़े भवन होते थे। इनमें अधिक-से-अधिक 30 कमरे होते थे। मोहनजोदड़ो के भवन हड़प्पा की अपेक्षा अधिक विशाल थे। स्थल रूप से ध्वंसावशेषों को विद्वानों ने तीन काल में बाँटा है—(1) प्राचीनतम, (2) मध्य, (3) नवीनतम। प्राचीनतम और मध्य काल में नवीनतम की अपेक्षा अधिक व्यवस्थित शासन था। इन दो कालों के भवन तो निश्चित योजना के आधार पर बने लगते हैं परन्तु नवीनतम काल में प्रतीत होता है कि लोग निश्चित योजनाओं के बजाय मनमाने ढंग से भवन बनाने लगे थे। कुछ भवनों के द्वारा सड़क का बहुत सा भाग घेर लिया था तो कहीं पर ठीक सड़क पर कुम्हारों के भट्टे बने मिले हैं। भवन सड़क के किनारे लाइन से न होकर इधर-उधर बने हुये हैं। इसके अतिरिक्त इस काल में पहले की अपेक्षा कुछ छोटे भवन भी बनने लगे थे। इस काल के भवनों में ईंटों का संगठन व उनकी जुड़ाई भी ठीक नहीं है। इस प्रकार तृतीय काल में भवन-निर्माण प्रणाली का पतन दिखाई देता है।

उत्कृष्ट वास्तुकला के दर्शन प्रथम दो कालों में होते हैं। सिन्धु के निवासी जिस समय कच्ची और पक्की ईंटों का प्रयोग करते थे उस समय तक मिस्रवासी इन

ईंटों से बिल्कुल अनभिज्ञ थे और मेसोपोटामिया के लोग बहुत कम ईंटों का प्रयोग करते थे। सिन्धु प्रदेश में ईंटें बालुकामय मिट्टी से बनती थीं। उनके काटने के लिये किसी तेज औजार का जो आरे के समान होता था, प्रयोग किया जाता था। काटकर उन्हें धूप में सुखाया जाता था और भट्ठी में पकाकर पक्की ईंटों का रूप दिया जाता था। पक्की ईंटों की नाप $11'' \times 5\frac{1}{2}'' \times 3\frac{3}{4}''$ अथवा $5\frac{1}{2}'' \times 2\frac{1}{4}'' \times 2\frac{3}{4}''$ थी। इससे बड़ी ईंटें भी होती थी। कच्ची ईंटें प्रायः $18'' \times 7\frac{1}{2}'' \times 3\frac{1}{10}''$ होती थीं।

सर्वप्रथम भवनों की नींव डाली जाती थी। नींव कच्ची टूटी फूटी ईंटों से भरी जाती थी। कुछ मकान चबूतरों पर भी बनते थे जिनसे सीलन व बाढ़ उन्हें नुकसान न पहुँचा सके। दीवार बनाने के लिये कच्ची-पक्की दोनों प्रकार की ईंटों का प्रयोग किया जाता था। दो मंजिल के मकानों की नींव अधिक गहरी बनाई जाती थी। मौके के अनुसार दीवान पर प्लास्टर होता था। प्लास्टर मिट्टी तथा जिप्सम का होता था। ईंटों को चुनने में मिट्टी के गारे का प्रयोग होता था। फर्श तथा छतों में कच्ची व पक्की दोनों ईंटों का प्रयोग होता था। छत से पानी निकलने के लिये मिट्टी या लकड़ी के परनाले होते थे जो छत से नीचे आकर सड़क की नालियों में मिल जाते थे। मकान के अन्दर भी नालियां होती थीं जो बाहर सड़क की नालियों में मिलती थीं। साधारणतया अच्छे मकान में आंगन, पाकशाला, स्नानागार, शौचगृह और कुयें होते थे।

स्नानागारों में फर्श पक्की ईंटों के बनते थे। स्नानागारों के बगल में शौचगृह होता था। अधिकतर घरों में कुयें होते थे। ये कुयें अपनी ईंटों की सुन्दर चुनाई के लिये प्रसिद्ध हैं। सभ्यता के नवीनतम काल में कुओं आदि का निर्माण अधिक नहीं हुआ था। इस काल में पुराने कुओं की मरम्मत से ही काम लिया जाता था। कुओं की आकृति अण्डाकार होती थी और उनके चारों ओर दीवाल बनी रहती थी। पानी रस्सी द्वारा घिर्री की सहायता से भरा जाता था। कुछ कुओं के भीतर सीढ़ियाँ बनीं होती थीं जिसके द्वारा उनके अन्दर घुसकर सफाई करी जा सके। इस प्रदेश के भवनों में खिड़कियाँ और दरवाजे गली की ओर खुलते थे। छत और दूसरी मंजिल पर जाने के लिये पक्की ईंटों की सीढ़ियाँ होती थीं। ध्वंसावशेषों में प्राप्त सीढ़ियों से सिद्ध होता है कि सीढ़ियाँ छोटी होती थीं। लकड़ी की सीढ़ियों का भी प्रयोग होता था। दरवाजे, खिड़कियाँ व उनकी चौखट लकड़ी की ही होती थी। दरवाजे के सामने पर्दे के लिये लकड़ी की एक दीवार भी खड़ी कर दी जाती थी।

खुदाई में राजकीय व सार्वजनिक इमारतों के भी ध्वंसावशेष मिले हैं। हड़प्पा में एक इमारत थी जिसका आकार समानान्तर चर्तुभुज जैसा था। यह उत्तर से दक्षिण की ओर लगभग 460 गज लम्बी और पूर्व से पश्चिम की ओर 215 गज चौड़ी थी। इसकी ऊँचाई 45-50 फिट थी। इसके अन्दर का भाग 20-25 फीट ऊंची कच्ची ईंटों की पीठिका पर बना था। इस इमारत की बाहरी दीवार सम्भवतः तीनों कालों में बनी हुई प्रतीत होती है। इमारत के अन्दर जाने के लिये दीवार के दक्षिणी सिरे पर एक जीना था। दीवार में फाटक व मीनारें भी थीं।

हड़प्पा की इस इमारत के पास और भी भवन अवश्य होंगे। कुछ भाण्डा-

गारों के अवशेष मिले हैं जो छह-छह की पंक्तियों में निर्मित किये गये प्रतीत होते हैं। इर भाण्डागारों की लम्बाई 50 फुट और चौड़ाई 20 फुट थी। नदी से इनका प्रवेश द्वार था। सम्भवत: इन भाण्डागारों की सामिग्री नदी की ओर से आती थी। राज्य की ओर से अन्न आदि का संग्रह यहां होता होगा और आवश्यकतानुसार जनता को दिया जाता होगा। ये भाण्डागार ही उस समय के राजकोष का काम करते थे। अन्न पीसने के लिये कुछ लोग चबूतरों के अवशेष मिले हैं। जिनके बीच के एक छेद है और शायद इसी छेद में लकड़ी लगी होती होगी। एक चपूतरे के छेद के अन्दर गेहूँ और जौ के कुछ दाने मिले हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि गेहूँ और जौ पीसा जाता होगा। ये चबूतरे भाण्डागारों से 100 गज की. दूरी पर मिले हैं।

इनके अतिरिक्त श्रमिक भवन भी मिले हैं जिनके निकट कुछ भट्ठियां मिली हैं, जो इस बात की परिचायक हैं कि यहाँ धातुयें गलाई जाती होंगी।

हड़प्पा की भाँति मोहनजोदड़ो में भी एक गढ़ी का निर्माण हुआ था। इसके अन्दर एक स्नानकुण्ड की लम्बाई 39 फीट, चौड़ाई 13 फीट, और गहराई 8 फीट थी। अन्दर आने के लिये उत्तर-दक्षिण की ओर ईंटों की सीढ़ियाँ बनी थीं। इस स्नानगार की दीवारें अत्यन्त सुदृढ़ बनी थीं। कुण्ड के फर्श पर खड़ी ईंट इतनी कुशलता से लगाई गई थीं कि उनमें कहीं भी दरार न रहे आये। कुण्ड की दीवारों पर जिप्सम और गिरिपुष्पक का प्लास्टर किया गया था।

इस कुण्ड के फर्श का ढाल-पश्चिम की ओर रखा गया था ताकि पानी आसानी से निकल जाये। फर्श में नालियाँ भी बनी थीं। इनसे इनकी सफाई होती होगी। ये नालियाँ कुण्ड के बाहर की बड़ी नालियों से मिल जाती थीं।

इस कुण्ड के चारों ओर बरामदे बने हुए थे। बरामदों के पीछे छोटे बड़े तमाम कमरे बने थे। एक कुआँ भी प्राप्त हुआ है। सम्भवत: इसी कुएँ से तालाब में पानी भरा जाता था। कमरों में छोटी-छोटी नालियाँ बनी थीं। कमरों के ऊपर दूसरी मंजिल पर भी कमरे बने हुए थे। ऊपर जाने के लिए नीचे के कमरों के पास ही सीढ़ी बनी हुई थी।

उत्सव और पर्वों आदि पर इस कुण्ड में लोग नहाने आते थे। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि वर्तमान हिन्दू-धर्म के समान सिन्धु प्रदेश के धर्म में भी पर्वों पर स्नान करने का महत्व था।

स्नान-कुण्ड के अतिरिक्त दो भवनों के ध्वंसावशेष और मिले हैं। एक भवन 180 फिट लम्बा और 75 फिट चौड़ा था। ह्वीलर के अनुसार यह एक विशाल कुण्ठागार था। दूसरा भवन 230 फीट लम्बा और 78 फिट चौड़ा था। मैके के अनुसार इस भवन में राज्य के राज्यपाल रहते होंगे।

सामाजिक स्थिति
(Social Condition)

(क) समाज का संगठन—ध्वंसावशेषों से यह पता चलता है कि समाज को उस समय चार वर्गों में विभक्त किया गया था—विद्वान, योद्धा, व्यवसायी तथा

12

श्रमजीवी। विद्वानों के अन्तर्गत पुजारी, वैद्य तथा ज्योतिषी आते थे। जनता की रक्षा का पूरा भार योद्धा वर्ग के ऊपर होता था। तीसरे वर्ग में व्यापारी तथा अन्य उद्योग-धन्धों के व्यक्ति आते थे। वर्ग में साधारण नौकर तथा श्रमजीवी आते थे। इसी वर्ग में किसान, मछुए, टोकरी बनाने वाले तथा चमड़े का कार्य करने वाले आते थे।

(ख) भोजन—यह लोग अधिकतर गेहूँ खाते थे। जौ भी खाते थे। जौ तथा गेहूँ दोनों ही वस्तुएँ उत्खनन में प्राप्त हुई हैं। वे चावल का प्रयोग भी करते थे। कुछ खजूर के बीज भी प्राप्त हुए हैं। कुछ अधजली अस्थियाँ तथा छिलके मिले हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि यह लोग मांस मछली आदि भी खाते थे। फल, अण्डे तथा दूध का प्रयोग भी यह लोग करते थे। इन लोगों का भोजन स्वच्छ तथा स्वास्थ्यवर्धक होता था।

(ग) वस्त्र—सिन्धु घाटी के निवासी सूती तथा ऊनी दोनों प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग करते थे। वस्त्रों का स्वरूप किस प्रकार का था इस सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है। सम्भवतः इनके वस्त्र साधारण ही होते थे। अन्वेषकों को एक पुरुष मूर्ति प्राप्त हुई है जिसमें वह शाल ओढ़े हुए हैं। उस मूर्ति को देखने से पता चलता है कि शाल बायें कन्धे के ऊपर से और दाहिनी आँख से बांधा जाता था। धोती की तरह का एक वस्त्र शरीर के निम्न भाग पर पहना जाता था। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि शरीर को ढकने के लिये दो प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था एक निम्न भाग को ढकने के लिये और दूसरा ऊपरी हिस्से को ढकने के लिये। स्त्रियों के लिये एक विशेष प्रकार का वस्त्र होता था। यह सिर के पीछे की ओर पंखे की तरह उठा रहता था।

(घ) श्रृंगार—स्त्री व पुरुष ही श्रृंगार करते थे। दाढ़ी तथा मूँछे रखते थे। परन्तु कुछ लोग मूँछ मुड़वाये भी रहते थे। पुरुष छोटे व बड़े दोनों ही प्रकार के बाल रखते थे। बालकों को पीछे करके कंघी भी करते थे। जिन लोगों के बाल बड़े होते थे वे चोटी बाँधे रखते थे। स्त्रियाँ सिर पर वस्त्र बाँधे रखती थीं, अतः उनके बालों के विषय में कुछ विशेष जानकारी नहीं है।

(ङ) गहने—सिन्धु घाटी के स्त्री व पुरुष दोनों को ही गहनों से प्रेम था। हार, भुजबन्द, कंगन तथा अँगूठी आदि गहने अधिक प्रचलित थे। स्त्रियाँ कुछ विशेष गहनों से अपने शरीर को सजाये थीं। उनमें से मुख्य हैं करधनी, नथनी, बाली, पायजेब आदि। सभी गहने विभिन्न धातुओं और जवाहरातों के बनते थे। धनवानों के गहने चांदी, हाथी दांत और अन्य कीमती पत्थरों के होते थे। खुदाई में पीतल के दर्पण व हाथी दांत की कंघियों के भी कुछ अवशेष मिले हैं। श्रृंगार की अन्य वस्तुयें भी होती हैं।

(च) मनोरंजन के साधन—पुरुषों के मनोरंजन का मुख्य साधन शिकार था। ऐसे अनेक चित्र मिले हैं जिनमें पुरुषों को शिकार करते हुए दिखाया है। एक चित्र में एक पुरुष को बारहसिंगे का शिकार करते हुए चित्रित किया गया है। इसी प्रकार चीते, गैंडे, और जंगली सुअरों के चित्र भी मिले हैं। इन समस्त चित्रों से यह स्पष्ट होता है कि शिकार ही इनके आमोद-प्रमोद का मुख्य साधन था। इन लोगों को

चिड़िया उड़ाने का भी शौक था। मछली पकड़ना तो इनका नित्य का धन्धा था। बच्चे मिट्टी के खिलौने बनाकर उनसे खेलते थे। कुछ ऐसे चित्र भी प्राप्त हुए हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि मुर्गी, वैल तथा कबूतरों को लड़ाकर वे अपना मनोरंजन करते थे। बच्चों के लिये मिट्टी की गाड़ियाँ तथा अन्य खिलौने बनाये जाते थे। कुछ भोपुओं और चिड़ियों के चित्र भी प्राप्त हुए हैं। संगीत में भी उनकी विशेष रुचि थी। जुआँ और शतरंज भी मनोरंजन के मुख्य साधन थे। श्री पदमिनी सेन गुप्त ने लिखा है :

"Gambling was obviously a favourite amusement and various kinds of dice have been found as well as counters somewhat resembling halma pieces or chessmen."

(छ) स्त्रियों की दशा—सिन्धु घाटी की स्त्रियों की दशा अच्छी थी। पर्दे का प्रथा नहीं थी। समाज में स्त्रियों का सम्मान होता था। स्त्री का मुख्य कार्य शिशु पालन ही था। धार्मिक अनुष्ठानों में स्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान होता था। लोग मातृदेवी की पूजा करते थे जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि स्त्री को माता के रूप में मानकर उसका सम्मान होता था।

(ज) आने-जाने के साधन—हड़प्पा सभ्यता के युग में बैलगाड़ी ही मुख्य सवारी थी। हड़प्पा की खुदाई में ताँबे का एक वाहन भी प्राप्त हुआ था जो देखने में आजकल के इक्के के समान है।

(झ) मृतक व्यवस्था—हड़प्पा के लोग मृतक संस्कार भी करते थे। मोहन-जोदड़ों की खुदाई में कहीं भी किसी कब्रिस्तान का कोई चिन्ह नहीं प्राप्त हुआ है जिससे यह स्पष्ट होता है कि यहाँ के लोग शव को जलाते थे। हड़प्पा में अवश्य ही एक कब्रिस्तान मिला है जिससे अनुमान लगाया जाता है कि ये लोग मृतक को जलाकर उसकी अस्थियों को एक कलश में बन्द करके दफना देते थे। सर जान मार्शल के अनुसार मृतक संस्कार के लिये तीन तरीके प्रयोग में लाये जाते थे—

(1) सारे शरीर को पृथ्वी में गाड़ दिया जाता था।

(2) दाह कर्म करके राख के अवशेषों को पृथ्वी में गाड़ दिया जाता था।

(3) शव को जानवरों को खाने के लिये डाल दिया जाता था और बाद में बची हुई हड्डियों को गाड़ दिया जाता था।

मार्शल का यह भी मत है कि अधिकतर दूसरी विधि ही काम में लाई जाती थी।

(ट) दवाइयाँ—इस युग में दवाइयों का प्रयोग किस रूप में होता था इस विषय में अधिक जानकारी नहीं है। मछली की हड्डियों और हिरन की सींग दवाई के रूप में प्रयुक्त होती थी। ऐसा अनुमान है कि मूँगा नीम की पत्ती और शिलाजीत जैसी कोई चीज दवा के काम आती थी।

आर्थिक जीवन
(Economic Life)

सिन्धु घाटी के लोगों के सामाजिक जीवन के अध्ययन से यह ज्ञात हो जाता

है कि यहाँ के निवासियों की आर्थिक दशा कितनी अच्छी थी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसे विशाल नगर वहाँ के निवासियों की आर्थिक दशा के परिचायक हैं। निम्नलिखित व्यवसायों एवं पेशों से उनके आर्थिक जीवन का और भी ज्ञान प्राप्त होता है।

(क) कृषि—ये लोग खेती करते थे। खेती इनका मुख्य धन्धा था। गेहूँ, जौ, खजूर आदि वस्तुयें ये लोग उत्पन्न करते थे। कपास की खेती भी होती थी अन्न को इकट्ठा करने के लिये अन्नागार होते थे जिनके पासे में ही अन्न की पीसने की व्यवस्था रहती थी।

(ख) पशुपालन—ये लोग अपने जीवकोपार्जन के लिये पशु भी पालते थे। मुहरों पर जो चित्र बने मिलते हैं उनसे यह प्रतीत होता है कि गाय, बैल, भैंस आदि इस काल के मुख्य पशु रहे होंगे। इसके अतिरिक्त बकरी, सुअर, कुत्ते, हाथी आदि भी ये लोग पालते थे। इस पालतू पशुओं के अतिरिक्त भालू, चीता, गैंडा, बन्दर, खरगोश आदि पशुओं से भी यह लोग परिचित थे। ऊँट और घोड़े का कोई भी चिह्न नहीं मिलता है।

(ग) आखेट—यहाँ के लोग आखेट-प्रेमी थे। वे लोग मांसाहारी भी थे, अतः पशुओं का शिकार व्यापक रूप से करते थे। वे मांस, मछली, अण्डे आदि का सेवन भी करते थे। अतः उनका व्यवसाय मछली पकड़ना भी था। पशुओं के शिकार से अर्थोपार्जन भी करते थे। पशुओं के बाल, खाल तथा अस्थियों से विभिन्न प्रकार की वस्तुयें बनायी जाती थी तथा उनका व्यापार होता था।

(घ) कातना-बुनना—इस युग में कताई-बुनाई भी होती थी। खुदाई में बहुत से तकुये और सूत की नलियाँ प्राप्त हुई हैं जो इस बात की परिचायक हैं कि कताई साधारण जनता में प्रचलित थी। धनी लोगों की नलियों कीमती और चमकीली मिट्टी की बनी हुई होती थीं तथा साधारण लोगों की सादी मिट्टी व सीपी की। कुछ ऐसे वस्त्र भी प्राप्त हुये हैं जिनसे विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इन वस्त्रों की रूई मोटे तार वाली आधुनिक भारतीय रूई से मिलती हुई होगी। इसकी भीतरी रचना मरोड़दार होती थी। ऊन का प्रयोग ये लोग गरम कपड़े बनाने के लिये करते थे तथा अन्य वस्त्र रूई के बनाये जाते थे।

(ङ) मिट्टी के बर्तन आदि बनाना—सिन्धु घाटी के लोग शिल्प कला मं बड़े पटु थे। खुदाई में मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुये हैं। ये बर्तन कुम्हार चाक द्वारा बनाते थे और फिर उन पर चित्रकारी करते थे। अनेक आकृतियाँ इन बर्तनों पर मिलती हैं। पहले चाक पर बर्तन बनाया जाता था फिर उस पर एक प्रकार का लेप किया जाता था जिससे उस पर चमक आ जाती थी, तत्पश्चात उस पर चित्रकारी करके भट्टी में पका लिया जाता था। ये बर्तन बड़े ही चमकीले व सुन्दर होते थे।

मिट्टी के अतिरिक्त पाषाण व अन्य धातुओं के भी बर्तन बनाये जाते थे।

(च) धातु और खनिज पदार्थ—उस समय जिन धातुओं का प्रयोग किया जाता था उन्हें देखकर उस समय की आर्थिक दशा का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। उस समय सोना, चाँदी, कासे तथा शीशे का प्रयोग किया जाता था। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त हुये बर्तन उस काल के धन-धान्य पूर्ण होने के परिचायक हैं। ताम्र

और कांस्य के अधिक बर्तन उपलब्ध हुये हैं। उनके आकार और सुन्दरता को देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। यह सभ्यता पाषाण-काल के बाद की है। साधारणतः जनता अधिकतर ताम्र और कांस्य का प्रयोग ही करती थी। कुछ कुल्हाड़ियाँ, ताँबे के बने औजार और आरी मिली हैं। कुछ पत्थर काटने की छेनी भी मिली हैं। इस प्रकार धातुओं की वस्तुयें बनाकर लोग जीविकोपार्जन करते थे।

(छ) घरेलू वस्तुयें—ये लोग अन्य घरेलू वस्तुयें बनाकर उनका व्यवसाय करते थे। कुर्सियाँ, तिपाइयाँ और चौकियाँ भी मिली हैं। कुछ मिट्टी के बने हुये दीपक प्राप्त हुये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग मोमबत्ती या अन्य किसी ऐसी ही वस्तु का प्रयोग करते हैं।

(ज) व्यापार—उस समय सिन्धु प्रदेश का विदेशों से व्यापारिक सम्बन्ध था। मोहनजोदड़ों और हड़प्पा में बहुत-सी ऐसी वस्तुयें मिली हैं जो वहाँ नहीं पैदा होती थीं। अतः वे विदेशों से आयी होंगी। सोना, चाँदी, ताँबा आदि यहाँ नहीं होता था वरन् विदेशों से ही आता था। विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि ये वस्तुयें ईरान व अफगानिस्तान से आती थीं। मूँगा, मोती, लकड़ी कीमती पत्थर आदि भी विदेशों से आते थे। कपड़े का व्यापार अत्यन्त उन्नत दशा में था। एक मुद्रा पर सूती कपड़े का निशान भी प्राप्त हुआ है आने-जाने के लिये स्थल और जल दोनों ही मार्गों का प्रयोग किया जाता था। स्थल मार्ग के लिये बैलगाड़ी व इक्के आदि थे। हड़प्पा की खुदाई में एक छोटा इक्का भी मिला है। कुछ जहाजों व नावों के चित्र प्राप्त हुये हैं जिनसे अनुमान लगाया जाता है कि जलमार्गों के लिये जहाजों व नावों का प्रयोग किया जाता था।

हड़प्पा की सभ्यता की बहुत सी वस्तुएँ विदेशों में पाई गई हैं। सुमेरिया की कुछ मुद्राएँ हैं जो यह प्रकट करती हैं कि सुमेरिया से भी सिन्ध का व्यापारिक सम्बन्ध था। पश्चिम एशिया के देशों से भी यहाँ के निवासियों के व्यापारिक सम्बन्ध थे। इस प्रकार यहाँ व्यापार अत्यन्त उन्नत दशा में था।

(झ) नाप-तौल के साधन—इस युग के नाप-तौल के पैमाने भी विद्वानों ने खोज निकाले हैं। खुदाई में तराजू भी मिली है जिससे स्पष्ट है कि तौलने के लिये तराजू का प्रयोग किया जाता था। इसके साथ बाँटों का इस्तेमाल होता था। हड़प्पा व मोहनजोदड़ो में बहुत से बाँट मिले हैं। कुछ बाँट तो इतने बड़े थे कि रस्सी में बाँधकर उठाये जाते थे। छोटे बाँट भी मिले हैं जिससे अनुमान लगाया जाता है कि इन छोटे बाँटों का प्रयोग जौहरी करते थे। सीपी का बना हुआ फुट का एक खण्ड प्राप्त हुआ है। जो शायद लम्बाई नापने के लिये काम में लाया जाता था। इस प्रकार नाप-तौल के सभी साधनों को देखते हुये हम कह सकते हैं कि इनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी।

धर्म
(Religion)

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त होने वाली मुहरें तथा अन्य चित्र वहाँ के लोगों के धार्मिक विश्वासों का भी परिचय देते हैं। खुदाई में अनेक ऐसी मूर्तियाँ

मिली हैं जिनसे इनके धार्मिक जीवन का भली-भाँति पता चलता है। इनके धर्म और धार्मिक विश्वासों के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं।

बहुदेववाद—यहाँ के लोग अनेक देवी, देवताओं की आराधना करते हैं। विद्वानों के अनुसार दो मुख्य शक्तियों की पूजा की जाती थी—परम पुरुष और परम नारी।

मातृ-पूजा—हड़प्पा के लोग मातृ-पूजा भी करते थे। कुछ ऐसी मूर्तियाँ मिली हैं जिसमें एक ऐसी नारी का चित्र है जो अर्धनग्न है। उसकी कमर के चारों ओर एक मेखला है और सिर पर एक विशेष वस्त्र है। इसे देखकर यह आभास होता है कि इसी को परम नारी के रूप में मानकर पूजा की जाती थी। मार्शल ने इसे महादेव का रूप माना है। यह सत्य भी है क्योंकि माता की आराधना बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। हड़प्पा में एक लम्बी मोहर प्राप्त हुई है जिसमें पृथ्वी या मातृ देवी का चित्र है, जिसकी योनि से एक अंकुर निकल रहा है और पास में छुरी लिये हुये एक पुरुष और एक हाथ ऊपर उठाये हुये एक स्त्री खड़ी है जो सम्भवतः देवी को बलि चढ़ाने के लिये लाई गई थी। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ के लोग सृष्टि का आरम्भ नारी शक्ति द्वारा मानते थे।

मूर्ति-पूजा—यद्यपि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में किसी भी मस्जिद का भग्नावशेष नहीं मिला है परन्तु यह अनुमान लगाया जाता है कि हड़प्पा के लोग मूर्ति-पूजक थे। उत्खनन में अनेक लिंग-मूर्तियाँ और योनि मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। विद्वानों के मतानुसार सिन्धु घाटी के लोग सृष्टिकारिणी शक्ति के रूप में इनकी पूजा करते थे।

देवी-देवताओं का मानवीकरण— विश्व की अन्य जातियों की भाँति इन लोगों ने भी अपने देवी-देवताओं को मनुष्य के रूप में देखा। मुहरों और मूर्तियों में मनुष्य की आकृति चित्रित है। यह इस बात का प्रमाण है कि ये लोग मनुष्य के गुणों को देवी-देवताओं पर आरोपित कर उनकी पूजा करते थे। इस प्रकार इन लोगों ने देवताओं और मनुष्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया था।

शिवोपासना—हड़प्पा की खुदाई में एक ऐसी मुहर प्राप्त हुई है जिस पर बने हुये चित्र में शिव की मूर्ति का आभास होता है। यह मूर्ति एक सिंहासन पर विराजमान है और योग-मुद्रा में दिखाई गई है। इसके दाएँ एक हाथी और व्याघ्र, तथा बाईं ओर एक बारहसिंगा और भैंस है। सिंहासन के नीचे दो हरिण है। इस मूर्ति के सिर पर भी दो सींग प्रदर्शित किये गये हैं। सर जान मार्शल ने कुछ ऐसे तथ्य प्रस्तुत किये हैं जिनसे यह पता चलता कि यह मूर्ति शिवजी की है। वे तथ्य निम्नलिखित हैं—

(1) शिव अन्तर्यामी एवं त्रिकालदर्शी हैं। संसार की कोई भी वस्तु उनसे छिपी हुई नहीं है। शिव की इसी शक्ति को प्रदर्शित करने के लिये सिन्धु घाटी के लोगों ने उनके त्रिमुखी होने की कल्पना की है।

(2) हड़प्पा से प्राप्त मुहर में देवता की मूर्ति के साथ पशुओं के चित्र भी अंकित हैं और शिवजी भी पशुपति हैं।

(3) शिवजी जिस त्रिशूल को धारण किये हैं उसी त्रिशूल के समान अंग,

मुहर में देवता के शीश पर दिखाया गया है। अतः यह अनुमान लगाया गया है कि शायद इसी से त्रिशूल की परम्परा का उदय हुआ है।

(4) मूर्ति में देवता योग-मुद्रा में चित्रित किये गये हैं और शिवजी की योग-साधना को हिन्दू धर्म में विशेष महत्व दिया गया है।

इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान इसे चतुर्भुजी देवता का प्रतिरूप मानते हैं। रमा प्रसाद चन्दा के विचार में यह ब्रह्मा, विष्णु और शिव की चतुर्भुजी प्रतिमाओं का पूर्व रूप है।

पशु-पूजा—मुहरों पर पशुओं के चित्र मिले हैं। पत्थर और मिट्टी की मूर्तियों से यह कल्पना की गई है कि ये लोग पशुओं की भी पूजा करते थे। पूजित पशुओं का विद्वानों ने तीन भागों में बाँटा हैं—

(1) पौराणिक पशु जिनके मानवीय और पाशविक दोनों ही रूप दिखाई देते हैं।

(2) विलक्षण पशु, जो यद्यपि पौराणिक नहीं हैं परन्तु फिर भी असाधारण हैं, जैसे एक शृंगी पशु।

(3) साधारण पशु, जैसे हाथी, बाहरसिंगा, व्याघ्र, हरिण, भैंस आदि।

जल-पूजा—नदियों को अति प्राचीन काल से पवित्र माना गया है। सिन्धु प्रदेश के उत्खनन में जो जलकुण्ड मिला उसी से यह अनुमान लगाया गया है कि सिन्धु प्रदेश के लोग जल-पूजा भी करते होंगे।

पादप-पूजा—वृक्षों के चित्रों से यह पता चलता है, कि ये लोग वृक्षों की भी पूजा करते थे। पीपल, नीम आदि वृक्षों को बहुत माना जाता था। एक चित्र में एक देवता वृक्षों के मध्य में खड़ा है और उसके सन्निकट ही एक उपासक विनीत भाव से खड़ा है। शायद वह पीपल का ही वृक्ष है। पीपल के वृक्ष की पूजा हिन्दुओं में अब भी होती है।

सूर्य व अग्नि की पूजा—सिन्धु प्रदेश के लोग अग्नि का भी पूजा करते थे। कुछ ऐसी वस्तुयें मिली हैं जिनसे यह पता चलता है कि इस युग में अग्निशालायें भी थीं। वहाँ अग्नि देवता को बलि भी दी जाती थी। कुछ मुहरों पर स्वस्तिका तथा चक्र बना हुआ है जिससे यह अनुमान लगाया गया है कि यहाँ के लोग सूर्य के उपासक हैं।

प्रजनन-शक्ति की आराधना—शिव की उपासना में योनि तथा लिंग की पूजा का विशेष महत्व है जिससे यह अनुमान लगाया गया है कि यहाँ के लोग योनि तथा लिंग की प्रतियाँ बनाकर प्रकृति की प्रजनन शक्ति की भी पूजा करते थे। कुछ ऐसे पत्थर प्राप्त हुये हैं जो योनि तथा शिव लिंग के प्रतीक हैं। इस प्रकार ये लोग प्रजनन शक्ति के भी उपासक थे। यह बात भी हिन्दू धर्म में काफी मिलती है।

अनुष्ठान—हिन्दू धर्म की तरह कुछ विद्वानों ने सिन्धु घाटी के लोगों को धर्म अनुष्ठानमूलक भी बताया है। उनका कथन है कि विशाल स्नानागार और और उसके समीप के अन्य स्नानागारों से यह प्रकट होता है कि सिन्धु प्रदेश में समय-समय पर धार्मिक समारोह व विशाल पर्व आदि होते होंगे और लोग एकत्र होते

पर्वों पर स्नान करने के लिये यहाँ आते होंगे। कुछ विद्वानों के अनुसार वृत्ताकार पाषाण-खण्ड शायद वेदी स्तम्भ या यज्ञ स्तम्भ थे जिनके समीप सिन्धु के निवासी किसी प्रकार की धार्मिक क्रियायें सम्पन्न करते थे। इस प्रकार धार्मिक रूढ़ियों और अनुष्ठानों का पर्याप्त विकास इस काल में था। रमेशचन्द्र मजूमदार के अनुसार सिन्धु निवासियों के धर्म एवं आर्यों के बाद के हिन्दू धर्म में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन्होंने लिखा है :

"We must therefore hold that there is an organic relationship between that ancient culture of Indus—Valley and in Hinduism of today."

अन्ध-विश्वास—सिन्धु प्रदेश में कुछ मोहरें तथा ताबीज मिले हैं जिनसे यह अनुमान लगाया गया है कि इनके धर्म अन्ध विश्वास भी था। ये ताबीज आदि अनिष्ठ-निवारण व कल्याण के लिये प्रयोग में लाते थे।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू धर्म की अनेक विशेषतायें सिन्धु घाटी के लोगों में पायी जाती थीं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि सिन्धु के निवासियों का धर्म का पूर्व रूप था हिन्दू धर्म पर इनके धर्म की गहरी छाप है। हिन्दू धर्म के पुनर्जन्म के सिद्धान्त के चिन्ह भी प्राप्त हुये हैं। सिन्धु निवासियों का धर्म और आर्यों के बाद के हिन्दू धर्म में भी गहरा सम्बन्ध दिखलाई पड़ता है।

कला
(Art)

हड़प्पा के निवासी विभिन्न कलाओं के ज्ञाता थे। जो सामग्री प्राप्त हुई है वह वहाँ के लोगों के कला-प्रेम की स्पष्ट परिचायक है। वहाँ के निवासियों को निम्नलिखित कलाओं का विशेष ज्ञान था—

मूर्ति-निर्माण कला—इस काल में मूर्तियाँ पत्थरों, भूरी तथा पोली चट्टानों और सेलखड़ी से काटकर बनाई जाती थीं। पत्थर और कांसे की समूची और कोरी मूर्तियों से कला की सजीवता प्रगट होती है। दाहिने पाँव पर खड़ी हुई एक नर्तकी की मूर्ति बड़ी सजीव और सुन्दर है। इन मूर्तियों की प्रमुख विशेषतायें यह थीं कि इनमें गाल और हड्डियों के स्पष्ट दर्शन होते थे। गर्दन छोटी, मोटी और मजबूत होती थी और आँखें पतली तथा तिरछी होती थीं। हड़प्पा होने वाला लाल पत्थर की मूर्ति में माँस पेसियों का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। इस प्रकार की कला यूनानी कला से उत्कृष्ट कला कही जा सकती है। यूनानी कला में साज-सज्जा तो बहुत है परन्तु वह सूक्ष्मता नहीं जो इस कला में पाई जाती है। यूनानी कलाकार स्थूलता की ओर अधिक ध्यान देते हैं और हड़प्पा के कलाकार सूक्ष्मता की ओर। हृदयगत भावों को चित्रित करने में हड़प्पा के कलाकार बहुत पटु थे। एक नारी की नृत्य करती मूर्ति में गति और भाव दोनों ही प्रकट हो रहे हैं। इसकी नृत्य मुद्रा त्रिभंगी है।

चित्रकला—चित्रकला इस काल में उन्नति के शिखर पर थी। मुहरों की चित्रकारी अत्यन्त सजीव है। मुहरों पर साँडों और भैंसों की चित्रकारी उनकी इस